भूमिका ।

प्यारे पाठक !

वर्त्तमान पुस्तक स्वर्गीय बाबू दामोदर मुखोपाध्याय कृत 'मृण्मयी' नामक बंगला उपन्यास का अनुवाद मात्र है। 'मृण्मयी' बाबू बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय की 'कपालकुण्डला' की पूर्त्ति है। 'कपालकुण्डला' के अन्त में बङ्किम बाबू ने लिखा है:— "अनन्त गङ्गा प्रवाह में, वसन्त-वायु-विक्षिप्त वीचिमाला से आन्दोलित होते २ कपालकुण्डला और नवकुमार कहां गये ? " इस वाक्य को पढ़ कर अवश्य ही पढ़नेवालों को यह जानने की अभिलाषा होती है कि उन का आगे क्या हुआ ? इसी कौतूहल को निवारण करने के लिए दामोदर बाबू ने यह पुस्तक लिखी थी, परन्तु अद्यावधि इस का हिन्दी अनुवाद न होने के कारण 'हिन्दी-कपालकुण्डला' के पाठकों का कौतूहल निवारित नहीं हो सका था। अतएव अपने कई मित्रों के अनुरोध से मृण्मयी का अनुवाद कर हम आप लोगों की भेंट करते हैं। अनुवाद कैसा हुआ है यह आप लोगों की विवेचना पर छोड़ देते हैं, कारण इस बारे में मुंह खोलने के हम अधिकारी नहीं हैं, पर इतना अवश्य कहेंगे कि यथासाध्य सरल अनुवाद करने की हम ने चेष्टा की है। अस्तु, यदि आप लोगों ने इस पुस्तक को पसन्द किया और खड्गविलास प्रेसाध्यक्ष महाराजकुमार बाबू रामरणविजय सिंह जी का हमारे साथ ऐसा ही बर्ताव रहा तो हम दामोदर बाबू के और २ उपन्यासों का अनुवाद भी अवश्य ही आप लोगों की भेंट करेंगे।

मिश्रटोला—आरा, ता: २८। ७। १९०८

भवदीय,
श्री ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा।

समर्पण।

"पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिताहिं परमंतपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व्वदेवताः॥"

श्री १०८ स्वर्गीय पं० शार्ङ्गधर शर्मा—
पितृदेव!

बुद्धिमानों ने यथार्थ ही कहा है, "पिता ही धर्म्म, पिता ही स्वर्ग, और पिता ही परम तप हैं; एवम् पिता के प्रीत होने पर सभी देवता प्रसन्न होते हैं" इसी महावाक्य को स्मरण कर, सानन्द चित्त से, अतीव आदर के साथ आप की पवित्र आत्मा को अपने द्वारा अनुवादित यह 'मृण्मयी' समर्पण करता हूं। धार्म्मिकों की उक्ति है कि जो वस्तु प्रीति-प्रफुल्ल चित्त से देवता अथवा पितृगण को अर्पित होती है वह उन्हें अवश्य प्राप्त होती है। इसी पर विश्वास कर यह पुस्तक मैंने आप को समर्पण की है अतएव इस में कुछ अन्याय नहीं हुआ। आशा है आप को मृण्मयी स्वीकार होगी।

आप का आज्ञानुगामी आत्मज,

ईश्वरीप्रसाद शर्मा,

आरा।

श्रीः ।

अवतरणिका ।

" नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण । "

—मेघदूतम् ।

चैती वायु से टकराती हुई गंगा की विशाल तरङ्गों से आन्दोलित होकर एक खण्ड तट-मृत्तिका, अपने ऊपर खड़ी कपालकुण्डला के साथ नदी के जल में गिर पड़ी। पास ही खड़े नवकुमार पत्नी को ऐसी अचिन्त्य-पूर्व विपद् से कातर हो गङ्गा-प्रवाह में कूद पड़े । भागीरथी के पवित्र सलिल में डूबे हुए उन युवक-युवती के अदृष्ट में इस के बाद क्या घटा सो 'कपाल कुण्डला' की पाठकपाठिकाएं नहीं जानतीं। अनुसन्धान द्वारा हम लोगों ने प्रमाण पाया है कि भीषण वामाचारी कापालिक थोड़ी देर तक उन के आने की प्रतीक्षा से ठहर कर, अन्त में आप भी गंगा-प्रवाह में कूद पड़ा और कुछ ही देर में नवकुमार को मृत-प्राय देह तीर पर उठा लाया। बहुद्रव्य-गुणज्ञ कापालिक के यत्न से नवकुमार की देह में पुनः जीवन सञ्चारित हुआ। किन्तु उस समय कपालकुण्डला का और कोई पता न लगा। उसी शोकावह घटना को बनविहारिणी, सुख-बोध-विहीना कापा-लिनी के जीवन का अन्त जानकर सब लोग क्षुब्ध-मन से शान्त हो रहे। किन्तु हम लोगों ने उस के बाद भी सविशेष अनुसन्धान कर कपालकुण्डला के विषय में और भी अनेक बातें जानी हैं। कौतूहलपरवश पाठकगण इस ग्रन्थ में प्रवेश करने पर उन्हें जान सकेंगे।

———

मृण्मयी

प्रथम खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

तटिनी के तीर पर ।

विना सीता देव्या किमिवहि न दुःखं रघुपतेः ।
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ॥

(उत्तर रामचरित)

बङ्गला सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के पहले, जिस समय सुविख्यात नीति कुशल सम्राट् अकबर के बेटे, जहांगीर, बादशाह थे, उसी समय फागुन के महीने में एक दिन सन्ध्या के कुछ पहले सप्तग्राम के नीचे २ बहने वाली नदी के तीर पर एक युवक गाल पर हाथ धरे चिन्ता में मग्न हो बैठे थे। दिन भर अपनी जलती हुई किरणों से सारे संसार को तपाकर सूर्य्य भगवान् पश्चिम की ओर चले जा रहे हैं। सायंकाल पहुंचा ही चाहता है। जिस जगह युवक चिन्तामग्न हो बैठे हैं, सप्तग्राम का वह अंश घने जंगलों से भरा है। इधर से मनुष्यों का आना जाना बहुत कम होता है। युवक एक मन से एकान्त में बैठे हैं। उन की दृष्टि सम भाव से एक ओर जा पहुंची है। ऐसी जगह, ऐसे समय, युवक बैठ कर क्या सोच रहे हैं ? सन्ध्या हुई देख कर पास के जङ्गल में पक्षीगण कूजन कर जो सुन्दर स्वर की दृष्टि कर रहे हैं, युवक के कान क्या उसी ओर लगे हुए हैं ? नहीं। पैर के निकट शैलसुता भागीरथी तरङ्गों के उठने से उच्छलिता हो रही हैं। युवक

क्या एक टक से वही देख रहे हैं? सो नहीं। पास ही [illegible] शृगाल-दल सन्ध्या का आगम देखकर अपनी अपनी मांद से बाहर हो उछल कूद कर परस्पर एक दूसरे को देह चाट रहे हैं। युवक क्या वही दृश्य देख रहे हैं?—सो भी नहीं। नदी के जल में स्वामी के निकट समागम के समय लाज से कभी आगे कभी पीछे पैर धरने वाली नयी बहुओं के समान गंगा प्रवाह में गिरी हुई लताएँ कभी दूर जाकर और कभी लौट आकर अपूर्व्व शोभा दिखला रही हैं, वे क्या उसी को देख रहे हैं? नहीं। डरे हुए कछुए आदि जलजन्तु सन्ध्या की वायु सेवन करने के लिये क्षण ही क्षण जल के बाहर आ दूसरे ही क्षण अतल जल में अदृश्य होते हैं, क्या उन्हों ने उसी के देखने में नज़र गड़ा रखी है? नहीं। यह सब भी नहीं है। युवक दारुण चिन्ता सागर में डूबते उतराते हैं। उन को किस बात की इतनी चिन्ता है सो तो उन के सिवा दूसरा कह नहीं सकता। युवक के चौड़े ललाट से पसीने की बूंदें टपक रही हैं एवं उज्ज्वल लोचनों से आंसू की एकाध बूंद चुपचाप ढरक पड़ती है। वे प्रकृति के बिछाये हुए तृण के आसन पर सम भाव से बैठे हैं। आंखों में पलक नहीं हैं। उन के बायें हाथ पर कपोल पड़ा है और दहिना हाथ हृदय से लगा है। सारा शरीर स्पन्दहीन है। रह रह कर एक सुदीर्घ निःश्वास उन के सजीवत्व का समर्थन करता है। उन को उस अवस्था में देखने से बोध होता था मानों कोई सुगठित देव-मूर्त्ति नदी-तट पर रखी हो।

सहसा वृक्षों के बीच से निकल कर एक मोहिनी रमणी-मूर्त्ति धीरे २ युवक की ओर आने लगी। इस विजन बन में वैसी असामान्या सुन्दरी का आना देख कर, उस को बन-देवी के सिवाय और कुछ समझना असम्भव है। सुन्दरी, मन्द मन्द पैर रखती हुई, युवक के पास आकर उन की बग़ल में बैठ गयी। युवक की दृष्टि युवती पर पड़ी। उन की दृष्टि से विरक्ति और घृणा प्रगट होती थी। सुन्दरी युवती चुपचाप रही। बहुत देर के बाद युवक ने कहा, "पद्मावती! यहां कहां?"

युवती बोली, "नवकुमार! दुर्भागिनी पत्नी को और कितने दिन तक कष्ट दोगे?"

नवकुमार ने उत्तर दिया, "बार २ यह बात कह कर तुम मुझे विरक्त न करो। तुम्हें क्या मैं कष्ट देता हूं ?

पद्मा०—नाथ! क्या तुम मुझे कष्ट नहीं देते ? मैं तुम्हारी धर्म्मपत्नी हूं—तुम ने मुझे त्याग दिया है क्या मेरे सारे कष्टों का कारण यह नहीं है ?

नवकुमार विरक्त हो बोले, "मैं सो सब नहीं जानता। तुम ने क्यों यहां तक मेरा पीछा किया ?"

पद्मा०—तुम प्रति दिन यहां आते हो, यह स्थान हम लोगों के बात-चीत करने लायक बहुत अच्छा है यही सोच बहुत अनुसन्धान और कष्ट के पीछे यहां आयी हूं। मुझे अब और न सताओ।

यह बात कहते २ युवती की आंखों में आंसू भर आये। युवक उसे नहीं देख सके। उन्हों ने कहा, "तुम मेरी विवाहिता पत्नी हो यह बात मैं स्वीकार करता हूं, किन्तु अब तुम को ग्रहण नहीं कर सकता। यह कौन नहीं जानता कि तुम मुसल्मानिन हो ?"

इस बात से युवती ने वस्त्र के आंचर से अपने नयन ढंक लिये। यह रो दी। नवकुमार ने यह जान लिया कि यह रोती है। युवती ने अनेक क्षण के बाद आंखों के आंसू पोंछ उत्तर दिया, "प्राणेश्वर! मैं मुसल्मानिन हूं सही, किन्तु मैं मुसल्मानिन होऊं या जो कुछ होऊं पर हूं तो तुम्हारी ही पत्नी, तुम्हारी ही दासी। स्वामी रमणियों की गति, स्वामी ही मुक्ति, स्वामी ही पालक और स्वामी ही शिक्षक हैं। नाथ! स्वामी के संग रहना स्त्रियों के सब सुखों का मूल है। पर इस हतभागिनी ने तो वह शिक्षा पायी ही नहीं। तुम से उन सब धर्म्मनीतियों की शिक्षा पाने के पूर्व ही दई-मारे देव ने मुझे तुम्हारे पवित्र संसर्ग से छुड़ा दिया, मुझ को वे सब ज्ञान लाभ नहीं हुए। निर्बोध अबला से जो कुछ अपराध होना सम्भव है प्राणेश्वर! मैं उन सभी अपराधों की अपराधिनी हूं, यदि उन सब अज्ञान क्षत पापों का और प्रायश्चित्त नहीं है, तो मैं तुम्हारे चरणों के तले जीवन त्याग कर इस पाप-पङ्किल देह को विसर्जित करूंगी। मैं ने अब स्वामी का सुख जाना है। अब और उस को छोड़ूंगी नहीं। अज्ञानान्धकार के मारे

राह भूल कर मैं ने नाना प्रकार के पाप मार्गों में परिभ्रमण किया है सही, किन्तु हृदयेश ! सहसा मेरे हृदय में ज्ञानालोक ने प्रवेश किया है ; मेरा चित्त अनुताप से दग्ध हो रहा है, इस समय यदि तुम फिर मुझे पत्नी-भाव से ग्रहण करो, तो मैं कुछ थोड़ा सा चित्त में आनन्द लाभ कर सकती हूं। जीवितेश ! तुम्हारे चरणों के सिवाय मेरी और कोई गति नहीं। मैं तुम्हारे चरणों को छाती से लगा अपनी यह पाप-कलुषित देह पवित्र करूंगी।

इतना कह कर पद्मावती ने पुन: आंखें बन्द कर लीं। नवकुमार ने सब बातें सुनीं। वे चुप हो रहे। अनन्तर अपने उछलते हुए मन के वेग को कुछ रोक कर बोले, "पद्मावती ! मैं नराधम हूं। मैं ने संसार में जैसा पाप किया है उस का किसी तरह प्रायश्चित्त हो ही नहीं सकता। मैं,निरपराधा, संसार-बोध-विहीना, साध्वी पत्नी 'मृण्मयी' के अकालमृत्यु का प्रधान कारण हूं। यह दुःख मेरे मन से कभी भी दूर नहीं होगा। इस तुच्छ पापी जीवन के शेष पर्यन्त उस निदारुण शोक के साथ हमारा सम्बन्ध रहेगा। मैं और सुख नहीं चाहता, मैं यही चाहता हूं कि मेरे प्राण मृण्मयी के रूप का ध्यान करते करते इस नर कुल-कलङ्क के तनपिञ्जर को त्याग करें। मातर्गङ्गे ! तुम ने भविष्यत्‌ज्ञान-विहीना निरपराधा मृण्मयी को गोद में ले लिया है; इस अभागे को और क्यों कष्ट देती हो ? मुझे भी चरणों में स्थान दे कर संसार की यन्त्रणा से मेरा निस्तार करो।" यह बात कहते २ नवकुमार की आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे होश संभाल कर बोले, "पद्मावती ! संसार हमारे लिए इस समय विष सा हो गया है। अब मुझे किसी वस्तु की चाह नहीं है। एक मृण्मयी के बिना मेरे लिए संसार अन्धकार और मेरे तन मन शून्य हो रहे हैं। पद्मावती ! मेरे लिए तुम और व्यर्थ कष्ट मत उठाओ। तुम जिस अवस्था में थी, उसी अवस्था में जाकर सुख से रहो। क्यों वृथा आशा का अनुसरण कर क्लेश भोग करती हो ? तुम्हारे यवनी होने से मुझे उतनी कुछ आपत्ति नहीं है, किन्तु अब मैं संसारी नहीं होऊंगा। मैं ने इसी तरह जीवन बिताना ही स्थिर कर लिया है। मैं और किसी रमणी को

अपने दूषित जीवन की सहचरी बनाकर कष्ट देना नहीं चाहता। पद्मावती! तुम मेरे संसर्ग से केवल कष्ट ही पावोगी—मेरी आशा त्याग करो।"

यह वाक्य सुनते ही पद्मावती के मुँह की आब उतर गयी। उन्हों ने एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर कहा, "नाथ! तुम मुझे व्यर्थ ही प्रबोध देते हो। मैं ने तुम से पहले ही कहा है, प्राण जाँय सो भी स्वीकार है, तुम्हारे संसर्ग से दुःखिनी होऊं सो भी स्वीकार है; तथापि मैं तुम्हारी ही हूं, तुम मुझे त्याग करोगे तौभी मैं तुम्हें न छोड़ूंगी।"

नवकुमार ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। तनिक चिन्तित हो कर बोले, "पद्मावती! अँधियाला हो आया है, घर जाओ, इस विषय की विवेचना पीछे होगी।"

इतना कह स्वयं एक लम्बी सांस ले उठे। पद्मा ने कहा, "प्राणेश्वर! दासी की एक बात रखो। कल एक बार मेरे डेरे पर आओ।"

नव०—उस के लिए मैं इस समय प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। अब तक दोनों, बाह्य-ज्ञान-विस्मृत हो कथा वार्त्ता में लगे थे, सुतरां वन-भूमि जो घोर अँधियारी से आच्छन्न हो गयी थी सो उन्हों ने नहीं देखा। सहसा दोनों को चैतन्य हुआ।

पद्मा ने कहा,—"नाथ! मुझे भूलना नहीं, तुम्हारे श्रीचरणों में यही प्रार्थना है।"

इतना कहने के बाद वे दोनों अपने २ डेरे पर जाने के लिए अग्रसर हुए और क्षण ही भर में घोर तमसाच्छन्न वन में अदृश्य हो गये।

——:0:——

द्वितीय परिच्छेद ।

कृतनिश्चित होने पर ।

———————"lucky joys
And golden times, and happy news of price."

Shakespeare.

पूर्वोल्लिखित वन को अतिक्रम करने ही पर एक पुराना दोतल्ला मकान दीख पड़ता है। यही नवकुमार का वास-गृह है। गृह वन से सटा हुआ है। अन्दर का आँगन खूब चौड़ा है। उसके बीच में एक बड़ा आम का पेड़ है। दो पहर के समय इस पेड़ के साये में बैठी दो स्त्रियाँ कथोपकथन कर रही हैं। उन में एक रूप-यौवन-सम्पन्ना वङ्गाङ्गना है उस की पहिनाव पोशाक देशवाली रमणियों की तरह है। दूसरी पहिनाव पोशाक से मुसल्मानिन जान पड़ती है। उस की वयस पहली की अपेक्षा अधिक है। युवती नवकुमार की वहिन हैं; उन का नाम श्यामासुन्दरी हैं। दूसरी का नाम पेश्मन है—यह पद्मावती की बांदी है। श्यामा ने पूछा, "पेश्मन! क्या तुम सच कह रही हो? पद्मावती सचमुच क्या यहीं हैं? सो तो हम लोगों को अबतक मालूम नहीं था।"

पेश्मन ने कहा, "बहन साहिबा! मैं तो वही खबर देने आयी ही हूं। आज सात महीने से वे यहीं हैं।"

एक दीर्घ निःश्वास के साथ श्यामा बोलीं, "सो तो हम से किसी ने नहीं कहा। अहा! उन को कितने दिनों से नहीं देखा! पेश्मन! क्या वे अब भी उसी तरह हैं?—सो तुम भला कैसे जानोगी? क्या उन से भेंट होने का कोई उपाय नहीं है?"

पेश्मन जिस उद्देश से आयी थी, सहज ही सिद्ध होने का उस ने सूत्र देखा। खुश होकर बोली, "मैं तो आप से वही पूछने आयी हूं। एक मर्त्तबः आप के साथ मुलाक़ात करने की उन को बड़ी ख्वाहिश है—आप अगर हुक्म दें तो वे यहाँ आवें। हमेश: वे मुझ से आप की बात कहा करती और कितना अफ़सोस ज़ाहिर करती हैं।"

श्यामा आनन्द के मारे सब कुछ भूल गयीं। पद्मावती यवनी हुई हैं—यह वे जानती थीं। उन के घर आने से लोक-हँसाई होगी अथवा बड़े भाई विरक्त हो सकते हैं यह उन के मन में नहीं समाया। वे आह्लाद से उत्फुल्ल हो बोलीं, "वे आवेंगी इस के लिए हुक्म कैसा? पेश्मन इस में पूछना ही क्या है? उन से भेंट करने के लिए तो मैं स्वयं ही जाना चाहती हूं, किन्तु यह कार्य एक-दम असंभव है। उन से कहना, उन को जभी सुभीता मालूम हो, जभी उन की इच्छा हो, तभी चली आवेंगी।"

"जो हुक्म" कह कर पेश्मन चली गयी।

श्यामासुन्दरी ने गृह में प्रवेश किया। वे वहां थोड़ी देर तक स्थिर भाव से खड़ी रहीं। उन की मुखकान्ति गम्भीर हुई। दूसरे ही चण वह विमर्ष भावापन्न हुईं। देखते ही देखते उन के आयत इन्दीवर-नयन द्वय से मुक्ताफल की तरह स्थूल अश्रुविन्दु अज्ञातभाव से गिर कर धरा सिक्त करने लगी। श्यामा अपनी भौजाई मृण्मयी को बहुत प्यार करती थीं; वे उन्हें अपने प्राणों की अपेक्षा प्रियतर समझती थीं। उन्हीं ने दुलार से उन का नाम "मृण्मयी" रखा था। सुतरां उस प्राणाधिका मृण्मयी की अकाल मृत्यु से वे इतनी शोक-सन्तप्ता हुईं कि जिस का ठिकाना नहीं। उन्हें आज की घटना की सब बातें याद आयीं। इस घटना से उन को "मृणा" का मुँह याद आया; उन के जीव-नान्त की घटना स्मरण हुई। वे उन्हीं सब बातों को सोचते २ बहुत देर तक रोयीं। क्रम से उन के मन में परिवर्त्तन होने लगा। उन का मुंह देखो, इस समय उस पर हर्ष की ज्योति झलक रही है। यह क्या? युवती श्यामा क्या उन्मादिनी हैं? सो नहीं। उन के मानस-सरोवर में इस समय भिन्न प्रकार का भाव-प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। इस समय उन को बड़े भाई की पहिली स्त्री का स्मरण हुआ है। विवाह के बाद, केवल एक ही बार तीन महीनों के वास्ते, पद्मा ससुराल आयी थीं; उस समय उन की वयः सन्धि थी, वह उस समय केवल बारह तेरह साल की होंगी। वह आज कितने दिनों की बात है! उस के बाद से उन के जीवन में कितना परिवर्त्तन हुआ है! पद्मा इस समय यौवन की अन्तिम सीमा पर उतर आयी हैं। पद्मा के पिता राम गोविन्द

घोषाल अपने परिवार के साथ मुसल्मानीधर्म्म में दीक्षित हुए; सुतरां पद्मा भी मुसल्मानिन हुई। तब से पद्मा की किसी ने खोज-खबर न ली। पद्मा से सम्बन्धविच्छेद हो गया है—यह कितने दिनों की बात है? इतने दिनों के बाद अब पद्मा इसी देश में हैं! वे चाहे जो कुछ हों श्यामासुन्दरी की भौजाई हैं, सुतरां उन के स्नेह और श्रद्धा की पात्री हैं। इतने दिनों बाद फिर उन से भेंट होगी। यह क्या अतुल आनन्द की बात नहीं है? श्यामा यही सब सोचते २ आनन्द से उछलने लगीं, उन के हृदयस्थित आनन्द की ज्योति उन के मुख पर भी प्रगट हुई, वे ज़रा २ मुसकुराने लगीं। आनन्द का काम ही यह है। आनन्द बूढ़े को जवान और निरानन्द जवान को बूढ़ा बना देता है। युवती श्यामा भी इस समय आनन्द के मारे बालिका-भाव को प्राप्त हो रही हैं। वे आप ही आप देह डुलाती हैं, हाथ हिलाती और हँसती हैं। जिन के हृदय समय पड़ने पर इस तरह आनन्दोन्मत्त हुआ करते हैं वे समझ जाँयगी कि श्यामासुन्दरी कुछ वातुल का काम नहीं करती हैं।

जिस समय पद्मा ससुराल आयी थीं उस समय वे किसी से बात नहीं करती थीं। उन की मा ने उन को सास प्रभृति गुरुजनों से बातचीत करने का निषेध कर दिया था। पद्मा ने उन की वह आज्ञा प्रतिपालन की। वे अपनी ननद श्यामा के सिवाय और किसी से बात नहीं करती थीं। बाल सहचरी श्यामा और पद्मा के हृदय में, सम्बन्ध बन्धन के सिवाय, एक दूसरा बन्धन जन्मा था; वह बन्धन था प्रणय। दूर रहने, धर्म्मभ्रष्ट होने और लापता हो जाने के कारण वह बंधन कुछ ढीला हो गया था। आज सब बातें याद आयीं। दर्शन की लालसा से प्रणय-रज्जू तन गयी। शिथिल बंधन दृढ़ संलग्न हो आया। कितनी देर में भेंट होने का समय आवेगा, प्रीति प्रफुल्ल मन से, वे इसी की प्रतीक्षा करने लगीं।

श्यामा जिस समय इस तरह आनन्द रस से परिप्लुता हो रही थीं, उसी समय वहां नवकुमार आ पहुंचे। नवकुमार को आया देख उन के आनन्द का वेग बढ़ गया। उन्हों ने सोचा, "भैया को पद्मा के इस देश में आने की बात कुछ भी नहीं मालूम है। उन को यह सम्वाद देना चाहिये।"

फिर सोचा, "नहीं—उन से कहने का कुछ काम नहीं। शायद भैया नाकर नूकुर करें, तब तो हम लोगों की भेंट मुलाक़ात में गड़बड़ होगी।" फिर सोचा, "इस में उन की क्षति ही क्या है? अच्छा, कह कर देखूं तो सही।" यही सोच उन्हों ने कहा, "भैया हमारी बड़ी बहू यहां आयी हैं।"

इस बात से विस्मित न हो कर नवकुमार ने कहा, "श्यामा! यह तो कोई नयी बात नहीं है।"

श्यामा—तब तुम जानते हो। लेकिन मुझे तो अब तक नहीं मालूम था, मैं ने आज जाना है।

नव०—किस ने कहा?

श्यामा—उन्हीं की दासी ने।

नव० —सो कैसे?

श्या०—वह हम लोगों के साथ भेंट करना चाहती हैं। वही पूछने के लिये उन्हों ने उस को भेजा था। मैं ने उन को आने को कहला भेजा है।

नवकुमार ने कुछ नहीं कहा; यह मौन सम्मति का लक्षण नहीं—यह विरक्ति-व्यञ्जक है। वे धीरे २ बाहर चले आये। नवकुमार के मन का भाव श्यामा नहीं बूझ सकीं, सुतरां नवकुमार का मौन भाव सम्मति सूचक जान कर परम आह्लादित हुईं। मृण्मयी के गंगाजल में गिर पड़ने के बाद से नवकुमार किसी काम में उत्साह नहीं दिखाते थे। श्यामा ने इस घटना में भी वही विचार किया। श्यामा का सिद्धान्त क्या अनुचित है? कभी नहीं। जिन के मन में छल कपट नहीं है, जगत में वे ही सुखी हैं।

श्यामा सुखी मन से घर के काम में लग गयीं।

तृतीय परिच्छेद।

सोचने विचारने के बाद।

मैं ने सुख रस पान हित, किया उपाय अनेक।
फल पाया विपरीत ही, रही न मेरी टेक॥

सप्तग्राम के बाज़ार के प्रान्तीय चौड़े राज मार्ग के पार्श्व में एक सुन्दर दोतल्ला मकान दीख पड़ता है। उसी के ऊपर वाले एक कमरे में दो स्त्रियां बैठी हैं। दोनों ही की पोशाकें मुसल्मानी ढंग की हैं। उन के घर की सजावट ही उन की यावनिक रुचि का परिचय देती है। पाठक महाशय दोनों ही स्त्रियों को जानते हैं। उन्हों ने गंगा के तीर पर नवकुमार के पास पद्मावती को देखा है—यह सुन्दरी वही पद्मावती है। पद्मा ने इस समय अपनी अभ्यस्त मुसल्मानी पोशाक पहिर ली है। उन के चेहरे से तेज का गर्व्व फूटा पड़ता है। रूप की सीमा नहीं है। वे इस समय प्रसन्न हैं। आनन्द उन की देह के प्रत्येक अंश में अधिकार जमाये हुए है, उस दिन जिस मलिना, कातरा, भूषणहीना, रोरुद्यमाना पद्मावती को देखा था आज उस को देखिये, नहीं पहिचान सकियेगा। युवती पद्मा के शरीर में गहना बड़ा सोहता है; इसी लिये आज उन्हों ने, जिस जगह जो गहना पहरा जाता है, वही पहिन लिया है। पद्मा पान खा रही हैं, और समय २ पर एक रूमाल से मुंह का पसीना पोंछ लेती हैं। उन की बगल में दासी पेश्मन बैठी है।

पद्मा ने सप्तग्राम में आकर, इसी मकान में डेरा डाला है। यहां आने के बाद, स्वामी नवकुमार अनुरोध के वश हो दो एक दिन उन से भेंट करने आये थे, किन्तु उस से पद्मा का मनोरथ अणुमात्र भी पूर्ण नहीं हुआ। पति-प्रेमाकांक्षिणी पद्मावती को पाठक महाशयों ने गंगा के किनारे पति के पार्श्व में बैठी देखा है; और उस मिलन से पद्मावती की मनोकामना कहां तक सिद्ध हुई सो भी जानते हैं। पति के अपरिस्फुट प्रणय-रत्न के उद्धार के लिये पद्मा ने विविध यत्न किये हैं और करती हैं। किन्तु

किसी से भी कृतकार्य नहीं हो सकीं। आज उन्हीं ने इसी उद्देश्य के साधन के लिए नया उद्योग निकाला है। यह उद्योग कैसे सफल होगा, वह क्रम से जाना जायगा। उन का लक्ष्य अब की बार व्यर्थ नहीं जायगा, यही सोच पद्मा आज इतनी प्रसन्ना हैं।

पेश्मन बहुत देर तक अन्यमनस्क थी। इस समय पूछ बैठी, "तुम समग्राम में और कितने दिन तक रहोगी? आगरे की सब बातों को याद कर देखो, आप किस तरह आराम से वहां पर थीं! और यहां क्या आराम है!!"

पद्मावती ने तनिक हंस कर उत्तर दिया, "पेश्मन! जीवन के बाकी दिन अब समग्राम ही में बिताऊंगी। यहां मैं हर घड़ी जो सुख पाती हूं, आगरे में बादशाह के महल में बहुतेरे नौकर-नौकरानियों से घिरी रहने पर भी, अगाध समृद्धि के बीच, उस सुख की एक कणिका भी नहीं पा सकती। पेश्मन! इन्द्रिय-सुख भोग की जहां तक चरितार्थता संभव है सो सब मैं पा चुकी हूं अब कुछ बाकी नहीं है। पाप सागर में जितनी गहरी डुब्बी लगाने पर उस का तल स्पर्श किया जा सकता है—मैं उतनी ही गहरी डुब्बी लगा चुकी हूं। अब इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं है। अब इस पाप से निस्तार पाने का कोई उपाय नहीं है। पेश्मन! तुम समझती नहीं मेरे हृदय में एक बार सैकड़ों बिच्छू डंक मारते हैं। अनुताप की आग से मेरा हृदय जल रहा है। जो होना था सो हो गया—अब मैं शान्ति की भिखारिनी हूं। अविश्रान्त पाप मेरे मन, बुद्धि, देह और प्राण सभी असार हो रहे हैं। मैं उन को फिर ठीक रास्ते पर लाना चाहती हूं। तुम नहीं जानती स्वामी कैसा परम पदार्थ है; मैं भी इतने दिन तक नहीं जानती थी। दरिद्र पति की चरण-सेवा करना पृथ्वीपति बादशाह की इन्द्रिय-वृत्ति की निवृत्ति का उपकरण मात्र होने की अपेक्षा कितना अच्छा है, पेश्मन! सो मैं ने अब समझा है। अबला-कुल-भूषण सतीत्व-रत्न को गड्ढे में फेंक कर भूलोक-दुर्लभ सम्पत्तिसुख का सम्भोग करने की अपेक्षा, उक्त रत्न को हृदय में धारण कर कंगालिन के वेश में कुटी में वास करना जो

श्रेयः है सो मैं अब जान सकी हूं। हाय! इतने दिन तक वह ज्ञान नहीं हुआ। पेश्मन! मेदनीपुर की वह चट्टी याद आती है? अहा! वही दिन मेरे जीवन का प्रधान दिन है! मेदनीपुर की उस चट्टी में सहसा इस पापिन के मन में ज्ञान की रश्मि और पवित्र सुख के रस ने प्रवेश किया। अब क्या यह छोड़ा जाता है? इस के देखते और सभी सुख तुच्छ हैं। पेश्मन! तुम क्या नहीं जानती! यदि मैं चाहती तो सारा हिन्दुस्तान अपनी मुट्ठी में कर लेती, पर इसी सुख के लोभ से मैं ने उस को खुशी खुशी त्याग दिया है। रूप-यौवनसम्पन्न जगदाराध्य बादशाह जहांगीर को मैं ने पैरों तले कर रखा था, किंतु इसी सुख की आशा से मैं ने उन को सन्तुष्ट चित्त से त्याग दिया। जो होना था सो हो गया—अब क्या—अब उन बातों का ख्याल न करो। पेश्मन! जीवन त्याग करूंगी तौ भी इस सुख की आशा नहीं छोड़ूंगी।"

पद्मावती विदुषी हैं। विद्या की विमल ज्योति ने उन के हृदय-कन्दर में प्रवेश किया था। लड़कपन ही से कुसंसर्ग और इन्द्रिय-भोग-लालसा ने उन के विद्या-जनित ज्ञान को आच्छन्न कर लिया था। इतने दिन बाद वह ज्ञान परिस्फुट हुआ है। अब उस को कौन ढंके? पेश्मन ने बराबर उन के साथ रह कर अनेक पुस्तकादिकों का आस्वाद पाया था सही; किन्तु प्रकृत ज्ञान ने कभी उस के हृदय में प्रवेश नहीं किया था। भ्रम के कूप में गिर कर अज्ञानान्धकार में रहने का जिन का स्वभाव है वे लोग इस सुख का रस भला क्या जानेंगे? पेश्मन को और कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। सहसा पद्मावती ने पूछा, "क्यों पेश्मन! दीदी जी से भेंट करने का समय हुआ कि नहीं?"

पेश्मन ने कहा, "हुआ है—जाना हो तो जाओ।"

पद्मा उठीं। न जाने क्या याद आया; कुछ सोचकर बोलीं, "पेश्मन! एक साड़ी ला दो।" पेश्मन ने आज्ञा प्रतिपालन की। रूपसी पद्मावती ने मुसल्मानी पोशाक उतार, बंगाली पोशाक पहिरी। पेश्मन से पूछी "पेश्मन! देखो तो, मैं कैसी लगती हूं।" पेश्मन ने कहा, "बंगाली पोशाक क्या अच्छी लगती है? वह तो बड़ी भद्दी दीखती है।"

पद्मा ने पेश्मन की बात पर विश्वास नहीं किया। ये आइने के पास जाकर अपना मुंह आप ही देखने लगीं। उन की मुखकान्ति गम्भीर हुई। उन को बड़ी चिन्ता ने आ घेरा। कुछ देर बाद एक लम्बी सांस ले बोलीं, "चलो, शाम हो गई।"

दोनों उठीं। पेश्मन ने कहा, "पैर में जूता पहरे बिना चलोगी कैसे?"

पद्मा ने हँसकर कहा, "अब वह ज़माना नहीं है, पेश्मन! इस वक्त सब कुछ कर सकती हूं।"

दोनों घर से बाहर हुईं।

चतुर्थ परिच्छेद ।

भेंट ।

" रोग-शोक-परिताप-वन्धन-व्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ॥ "

हितोपदेश ।

श्यामा, सन्ध्या के समय छत के ऊपर घूम २ कर प्रीतिप्रद वसंती वायु सेवन कर रही हैं। इसी समय देखा, दो रमणियों ने उन के घर में प्रवेश किया। तुरत ही उन को पद्मा की बात याद आई। जल्दी २ छत पर से उतर आईं। आकर देखा सचमुच पद्मावती आ गई हैं।

पहले ही दर्शन से दोनों के हृदय आनन्द रस से परिप्लुत हो गये। आनन्द की अधिकता से दोनों चुप हैं। किसी के भी मुंह से बात नहीं आती। आंख ही मन की अस्थिरता को बताये देती है। दोनों ही की आंखों से आंसू गिरने लगे।

रोना शोक का चिन्ह है यह तो सभी कहते हैं, किन्तु यह रोना वैसा नहीं है। यह रोना आनन्द का है। इस रोने के प्रत्येक अश्रु-विन्दु से आनन्द की लहरी-लीला लक्षित होती है; इस में सर्व्वत्र ही आनन्द विराजमान है।

क्रम से मन का वेग मन्द हो आया। दोनों बैठीं। मन स्थिर कर श्यामा ने देखा पद्मावती के अतुल सौन्दर्य्य का कण मात्र भी क्षय नहीं हुआ है। केवल जैसे २ उमर बढ़ती गई तैसे २ देह का आकार बढ़ता गया है—इतना ही। देह के भर जाने से उन की अनुपम रूपराशि और भी बढ़ गई है।

क्रम से आनन्द का उल्लास कम हो चला। उस समय पद्मा का भाव बदल गया। उन के मुखमण्डल से आनन्द-रश्मि दूर हो गई। वे फिर रोने लगीं। यह रोना आनन्द का रोना नहीं है। यह हृदय की दुस्सह यन्त्रणा का रोना है। पद्मावती ने बहुत दिन बाद अपने स्वामी का घर

फिर देखा। अगर भाग गवाही देता तो इस ससुराल में वे आदर के साथ रहतीं। उन की गौरव की सीमा नहीं रहती। उन से बोलने बतियाने में उन के स्वामी, ननद अथवा और नातेदार, कोई भी संकोच नहीं करते। स्वामी की सेवा और अपने धर्म में रहने पर उन को जो सुख होता, सो सब उन को याद आया। उन सब सुखों के बदले उन्हों ने आपात मनोहर सुख सम्भोग किये सो भी याद आया। इन दोनों का भेद उन्हों ने पहले ही समझ लिया था—आज इस अवसर पर वह सम्पूर्ण रूप से जी में बैठ गया। उस समय वे असह्य यंत्रणा अनुभव करने लगीं। उस यंत्रणा को थोड़ी बहुत कम करने के लिये, पद्मावती आंचर से मुंह ढांप बहुत देर तक रोईं।

थोड़ी देर के बाद दोनों में बातचीत होने लगी। कितनी बातें हुईं इस का ठिकाना नहीं। पद्मावती के लापता होने के बाद बड़े भाई पर क्या २ बीती, श्यामा ने सब कह सुनाया। पद्मावती ने दो एक बातें छोड़ अपने जीवन का समस्त इतिहास वर्णन किया। श्यामासुन्दरी ने पूछा, " तुम इतने दिनों से यहां पर हो, फिर मुझे खबर क्यों नहीं दी ? "

लम्बी सांस ले पद्मावती ने कहा, "क्या मुझे सम्वाद देने में कुछ चाहना थोड़े ही था ? परन्तु मेरा मुँह क्या वैसा ही है कि उसे तुम लोगों को दिखाऊं ? मुझ सी अभागिनी इस दुनिया में और कोई न होगी। कहीं मेरे आने पर पीछे तुम लोगों की बदनामी न हो इसी डर से अबतक न तो भेंट ही की और न कोई संवाद ही दिया। किन्तु एक जगह रह कर कब तक अपने जी को रोकती ? इसी से सोचा कि भाग्य में होगा सो तो होवेहीगा, तुम को सम्वाद दे देनी चाहिये, तुम जो अच्छा समझोगी करोगी।"

श्यामा ने एक लम्बी सांस ली। पद्मा ने कहना आरम्भ किया,—"सम्वाद नहीं देने का एक और विशेष कारण था। सम्वाद देने पर कहीं तुम लोग मेरी उपेक्षा करो, आने पर कहीं बातचीत न करो, कहीं मेरे आने से तुम लोगों को लज्जा हो, इन्हीं सब बातों के भय से सम्वाद देने में सकुचाती थी। फिर सोचा, सम्वाद भेजने में दोष क्या है ? यदि वे लोग (आप लोग) घृणा

करेंगे, बात न करेंगे, तभी तो इस पापीयसी के संख्यातीत पापों का उचित प्रायश्चित्त होगा। फिर सोचती थी कि यदि तुम्हारे पास आने पर पहले की तरह मेरा आदर तुम लोग न करो, यदि स्वामी के घर जाकर भी स्वामी से दो दो बातें न कर सकूँ, यदि यहां आने पर मुझ से स्पर्श करने में तुम लोग सकुचाओ, तो फिर जाने का क्या काम है? अब मैंने स्थिर कर लिया है कि ये पापी प्राण और अधिक दिन तक न रखूंगी। जीवन के सब सुख मैं ने देख लिये। स्वामी की चरण-सेवा से बढ़ कर रमणियों के लिये और कोई सुख नहीं यह मैंने भली भांति समझ लिया है। जब उसी आशा पर राख पड़ गई तब फिर जीने का क्या काम है? मैं तुम्हें जी से प्यार करती हूं, इसी से सोचा कि मरने के पहले एक बार तुम लोगों से भेंट करके तब मरूंगी। एक बार तुम्हें देखने की बड़ी साध थी सो आज मिट गई, अब मेरे मरने में कोई बाधा नहीं। और एक इच्छा है कि मरने के पहले स्वामी के चरण अपने हृदय में धारण करूं, किन्तु वह आशा दुराशा है।" जो कहने को थीं सो कह न सकीं। पद्मा की दिल दुखानेवाली बातें सुनते २ श्यामा की आँखों में आंसू भर आये। दीर्घ निश्वास त्याग कर बोली, "जो होना था हो गया; जो भाग्य में लिखा था सो हुआ। बड़ी बहू! अब पछतावा न करो। मरने क्यों जाती हो? मरने ही से क्या पाप से छुटकारा होगा? आत्महत्या तो और भी बड़ा भारी पाप है। विधाता ने तुम्हें जैसी मति दी थी तुम ने उसी तरह काम किया। उस से जो पाप होना था सो हुआ। जो हो चुका वह तो अब फेर नहीं लिया जा सकता। तब फिर क्यों प्राण त्याग करोगी? जिस से राज़ी खुशी से जिन्दगी के शेष दिन कटें और फिर पाप का स्पर्श न आने पावे, वही करो। मेरी तो यही इच्छा है कि तुम जैसे सप्तग्राम में हो वैसे ही रहो, अब आगरा अथवा और कहीं न जाओ। ऐसा करने से और कुछ हो चाहे नहीं, पर एक २ बार भेंट मुलाक़ात कर के मन तो जुड़ाया जायगा न?"

बहुत देर तक कुछ सोच कर पद्मावती ने कहा,—छोटी जी! झख मार कर वही करना ही पड़ेगा। इस से बढ़ कर अच्छी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है?"

इसी समय पेशमन ने निवेदन किया, "रात बहुत बीत गई है।"

यह बात सुन कर पद्मावती ने श्यामा की ओर दृष्टि फेरी। श्यामा ने कहा, "रात बहुत बीती है सखी, पर तुम्हें छोड़ने को जी तो नहीं चाहता।"

पद्मा०—तुम्हारी ही सलाह मानती हूं। अब समग्राम न छोड़ूंगी। यहां रह कर रोज़ भेंट करूंगी और इसी तरह जीवन बिताऊंगी।

आंख में आंसू भर पद्मा ने बिदाई ली। लाचार श्यामा ने भी अङ्गीकार किया।

पेशमन के सिवाय और कोई दाई पद्मावती के साथ नहीं आयी थी। इसी से श्यामा ने अपनी एक दाई को उस के साथ भेजा।

यदि पद्मा चाहतीं तो नौकर, दाई, कहार सब साथ ले आ सकती थीं, किन्तु इन सब दिखलौवे ठाटबाट में अब उन की प्रवृत्ति नहीं है। अब उन्हों ने अपने को सामान्य गृहस्थ पत्नी मान उसी तरह रहने का अभ्यास कर लिया है।

रात को प्रायः दश बजे होंगे। चारो ओर पूर्ण रूप से कौमुदी फैली हुई है। प्रकृति शान्त वो निस्तब्ध है। चारो तरफ़ सन्नाटे का आलम है। इसी समय पद्मावती अपने स्वामी के घर से बाहर हुईं। जब तक वह दृष्टि के बाहर न हुईं तब तक श्यामा उन्हें देखती रहीं। उन के आंखों की ओट होते ही श्यामा न मालूम क्या सोचते २ घर के भीतर चली गईं।

पंचम परिच्छेद ।

तर्क वितर्क ।

" Je la plains, Je la flame, et je suis son appui. "*

सप्तग्राम में जहां बाज़ार लगता है उस से थोड़ी ही दूर पर एक बड़ा मैदान दीख पड़ता है। मैदान केवल हरी घासों से भरा है। बीच २ में एकाध ऊंचे २ इमली, पीपल और बर के पेड़ दीख पड़ते हैं। इसी प्रान्तर की एक सीमा पर दो नौजवान टहल रहे हैं। उन दोनों में से एक हम लोगों के परिचित नवकुमार हैं, और दूसरे नवकुमार के दिली दोस्त उमापति चक्रवर्ती हैं। नवकुमार दुःख में सुख में सभी समय, उमापति की सलाह से काम किया करते हैं। उमापति के साथ उन की गाढ़ी प्रीति है। दोनों ही का स्वभाव एक तरह का है; दोनों एक ही तरह के गुण पसन्द करते हैं। दोनों ही सरल, विविधगुण सम्पन्न और विद्वान् हैं; सुतरां उन का प्रणय जो गाढ़ा होगा इस में विचित्रता ही क्या है? उमापति का घर सप्तग्राम ही में है। लड़कपन ही में उन के पिता मर गये। पिता की सम्पत्ति से उन की संसार-यात्रा सुख से निर्वाहित होती है। उमापति का लड़कपन ही से विद्या की ओर झुकाव है। इसी से पिता के न रहने पर भी उन की शिक्षा में किसी तरह की रुकावट न होने पायी। उमापति की उमर इस समय पूरे पच्चीस वर्ष की है। इसी थोड़ी उमर में उन्हों ने यथेष्ठ ज्ञानार्ज्जन किया है। नवकुमार के साथ पढ़ने के समय से ही उन की मित्रता है।

उमापति देखने में बड़े सुन्दर हैं। उन के काले२ केश, सुन्दर वदनशोभा

---

* I pity her, I blame her, and I am her support. अर्थात् मैं उस पर दया प्रकाश करता हूं, उस की लाञ्छना भी करता हूं और मैं ही उस का आश्रय भी हूं।

बड़ी २ आंखें, चम्पे का सा रंग, सुललित और आभापूर्ण शरीर मनोहर सौन्दर्य का परिचय देते हैं।

नवकुमार का यात्रियों की नौका से उतर कर रेत में जाना, वहां कापालिक से भेंट होना, कपाल कुण्डला के द्वारा जीवनोद्धार होना, उस के साथ विवाह और स्त्री को लेकर देश आती बेर चट्टी में लुत्फ़ उन्नीसा से मुलाक़ात होना, लुत्फ़ उन्नीसा का सप्तग्राम में आना और अपना नवकुमार के साथ सम्बन्ध जताना, कापालिक का आगमन और उस की प्ररोचना, पद्मावती के कौशल से कपाल कुण्डला की चालचलन में नवकुमार का सन्देह और उस सन्देह का भञ्जन होते ही सहसा गंगा में गिर कर कपाल कुण्डला का मर जाना इत्यादि सभी बातें उमापति को मालूम हैं। नवकुमार की हालत देख वह बराबर दुःखित रहा करते हैं। नवकुमार के शोक से विकल चित्त को प्रकृतिस्थ करने के लिये वे बराबर उन को प्रबोध दिया करते हैं। किन्तु उन का प्रबोध अब तक व्यर्थ ही होता आया। नवकुमार का हृदय मृण्मयी के साथ ही गंगा के गर्भ में विसर्ज्जित हो गया है। केवल देह भर बच गयी है। उस में उपदेश का बीज बोकर अङ्कुर की आशा करनी व्यर्थ है। यह बात उमापति समझते थे, तथापि यह सोच कर कि शायद बहुत कहने सुनने से कुछ राह पर आ जाँय वे कभी प्रबोध देने में चूकते नहीं थे। फिर से विवाह कर संसारी होने के लिये वे नवकुमार से बहुत अनुरोध करते और बहुतेरी युक्तियां बतलाते थे, किन्तु अब तक उन के सभी प्रयत्न विफल हुए हैं।

आज नवकुमार ने उमापति से पद्मावती के साथ पुनः गंगा-तीर पर साक्षात् होने की बात कही। वहां उन दोनों में जो जो बातें हुई थीं वह भी उन्हों ने ज्यों की त्यों कह सुनाईं। पद्मावती का उन के घर जाना, श्यामा और उस के बीच जो २ बातें हुईं और उस के बारे में श्यामा का अभिप्राय आदि बातें भी जो उन्हों ने श्यामा के मुँह से सुनी थीं, कहीं। बड़ी देर तक कुछ सोच कर उमापति ने कहा, "भाई नवकुमार! पद्मावती के मन का भाव समझते हो? पद्मावती पहिले एकदम असती थीं तो भी इस समय

उन का मन सम्पूर्ण रूप से विशुद्ध हो गया है, इस में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं जान पड़ता।"

नवकुमार बोले; "मेरे मन का भी ठीक ऐसा ही सिद्धान्त है। पद्मा के मन में इस समय परिवर्त्तन हुआ है। बीती बातों के लिए उसे बड़ा अनुताप हुआ है। पूर्व्वकृत पापों की जघन्यता उस ने जानी है उस के लिए वह प्रायश्चित्त करने को प्रस्तुत है। पद्मा इस समय धर्म्म चाहती है—पतिपद की भिखारिणी हो रही है। इसी लिए उस ने आगरे का राजभोग छोड़ दिया है। उस की मानसिक अवस्था देख दया आती है सही, पर एक बात से वह मेरी आंखों का काँटा हो रही है। पद्मा ही मृणमयी की अकालमृत्यु का कारण है। उसी ने ब्राह्मण का वेश धर कर मृणमयी के सतीत्व के विषय में मेरे मन में भ्रमपूर्ण सन्देह उत्पन्न कर दिया था। वह यदि ऐसा न करती तो यह सब दुर्घटनाएँ क्यों घटतीं? उसी ने तो कापालिक के साथ मंत्रणा कर यह अशुभ घटाया। भाई! तुम तो सब जानते ही हो। मेरे कलेजे में वह घटना तीर की तरह चुभी हुई है।"

उमापति ने कहा, "नवकुमार! तुम ने जो कहा सो ठीक है। मैं भी यह स्वीकार करता हूं कि उस विषय में पद्मावती भी थोड़ी बहुत अपराधिनी अवश्य है। किन्तु विचार कर देखो तो सही किस का अपराध अधिक है? तुम्हारा बुद्धि-भ्रंश होना क्या इस दुर्घटना का प्रधानतम कारण नहीं है? कापालिक की दी हुई तीव्र मदिरा को सेवन कर के ही तुम अज्ञानान्ध हुए। तुम्हारा हिताहित का ज्ञान जाता रहा, और तुम कापालिक को अपना इष्ट-देवता जानने लगे; उस की बात पर तुम देववाक्य की तरह विश्वास करते थे; उस ने तुम से जो कहा तुम ने वही सुना। उस ने कहा, 'मृणमयी दुश्चरित्रा है—यही ब्राह्मण उस का प्रणयी है।' बस इस पर तुम ने विश्वास कर लिया। उस ने कहा, 'मृणमयी को अब अपने घर में मत लो।' तुम ने इस को भी स्वीकार किया। अब सोच विचार कर देखो किस का अपराध अधिक है? कापालिक और ब्राह्मण वेशिनी पद्मावती इन दोनों से भी अधिक दोषी कौन है? तुम ने एक भी बात मृणमयी से नहीं पूछी।

मृणमयी का दोष सही है कि नहीं, यह नहीं जाना। जब उस के कहने पर भी तुम ने विश्वास नहीं किया तब परमात्मा ने उसे जन्म भर के क्लेश और दारुण अपवाद आदि से निस्तार करने के लिये उसे सादर अपनी गोद में ग्रहण कर लिया। विधि-विपाक से मृणमयी गङ्गाजल में गिरीं। उस समय कापालिक की दी हुई मदिरा का नशा कुछ उतर चुका था इसी से तुम्हारा ज्ञान उदय हुआ। तुम 'हा मृणमयी!" कह कर जल में कूद गये। किन्तु कुसमय जागने (चैतन्य होने) पर जो फल हो सकता है वही हुआ। तुम ने मृणमयी को नहीं पाया। नदी के गंभीर गर्भ में गिरी हुई प्रबला का उद्धार करना क्या हँसी खेल है? कापालिक ने यत्न कर के तुम्हें जल से बाहर निकाला। उस समय तुम 'मृणमयी! मृणमयी!! मृणमयी!!!' कह कर रोने लगे। उस रोने का क्या फल हो? विचार कर देखो तो सही मृणमयी की मृत्यु के सम्बन्ध में पद्मावती का कितना कम अपराध है? पद्मावती ने पुनः स्वामी लाभ करने के पथ में मृणमयी को काँटे की तरह पाया। यदि किसी तरह वह मृणमयी को स्वामी-प्रेम से वञ्चित कर सकती तो उस का उद्देश्य सिद्ध होता। इसी समय उस ने देखा मृणमयी एक और व्याध का लक्ष्य है। वह व्यक्ति कापालिक था। पद्मा उस के साथ मिल गयी। पद्मा बड़ी दुश्चरित्रा थी सही, पर तो भी उस का मन तो स्त्री ही का था न? एकदम से मृणमयी की जान लेना कभी उस को अभीष्ट न था—ऐसा तो मन कबूल नहीं करता। यह मैं निस्संशय कह सकता हूं कि उस का उद्देश्य मृणमयी को स्वामी के प्रेम से वञ्चित करने का था। क्यों, तुम क्या सोचते हो?"

नवकुमार ने मन लगा कर सब बातें सुनीं। उन बातों को सुन कर उन का भ्रम छूटा। भ्रान्तिमूलक विश्वास दूर हुआ। उन्हों ने एक दीर्घ निश्वास त्याग कर कहा, "उमापति! तुम जो कहते हो ठीक ही है। इस में पद्मा का दोष बहुत थोड़ा है। यही क्यों यदि 'नहीं' ही कहा जाय तो अनुचित न होगा। मैं ने व्यर्थ उन को दोष लगाया। मैं ही पापी हूं— पद्मा नहीं। पद्मा ने अपने उद्देश्य साधन की चेष्टा की थी—संसार में कौन

नहीं अपने उद्देश्य साधन, की चेष्टा करता ? मेरा पाप बड़ा भारी है। क्या करने से उस का प्रायश्चित्त होगा ? मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।"

उमापति ने देखा नवकुमार को बड़ा शोक हुआ है; इस लिए उन्हें उस विषय में अधिक आलोचना करने न देकर बोले, "नवकुमार ! पद्मावती, प्रज्ञात दोषी नहीं है यह तुम ने समझा। विधाता उस को इस समय अनुताप की आग से जला रहे हैं। उस के भीतर ही भीतर सैकड़ों विषधर सांप डंस रहे हैं; उस की यन्त्रणा की सीमा नहीं है। उस को इस जन्म में यदि शान्ति मिल सकती है तो केवल तुम्हारे द्वारा। पतिलाभ की लालसा ही उस की प्रधान आकाङ्क्षा है। अतएव ज़रा उस की अवस्था पर विचार करो। यदि तुम उस के विपुल क्लेशों के बोझ को कुछ कम कर सको तो क्या यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ?"

नवकुमार ने उत्तर दिया, "भाई उमापति ! मैं तो यह समझता हूं, किन्तु उस के प्रतिकार का कोई उपाय नहीं है। मैं उस के सब पापों को क्षमा करने को तैयार हूं। तुम भी उस के सब कामों को भूल सकते हो। किन्तु लोग उसे क्यों क्षमा करने लगे ? वह यवनी, म्लेच्छा, आचार-भ्रष्टा दुश्चरित्रा है, उस को और कोई कैसे क्षमा करेगा ? तुम किसका २ मुंह बन्द करोगे ? पद्मावती के लिये आत्मीय, बन्धु-बान्धव और जातीय समाज त्याग करना क्या उचित हो सकता है ?"

उमापति ने कहा, "सो ठीक है, किन्तु श्यामा का परामर्श नहीं है। तुम पद्मावती को पत्नीभाव से मानोगे और समय २ पर उस से भेंट करते रहोगे तो वह चरितार्थ होवेगी। क्यों, क्या यह उस की चरम आशा नहीं जान पड़ती ? यदि यही हो तो श्यामा के परामर्श के अनुसार काम करने से सब काम बनेगा। इस समय वह जैसे अलग मकान में है उसी तरह रहने दो।"

नवकुमार स्थिरचित्त से बहुत देर तक कुछ सोचते रहने के बाद बोले,

" सोच विचार कर जो अच्छा जान पड़े वही करने से काम चलेगा। इस समय बहुत देर हुई, चलो घर चला जाय। "

यह कह वे दोनों इस बारे में बहुत सी बातों का आन्दोलन करते २ घर को लौट-चले।

षष्ठ परिच्छेद ।

Live while ye may, yet happy pair ; enjoy
Short pleasures, for long woes are to succeed.

Milton.

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

कालिदासः ।

सामने जो सुन्दर अटारी दीख पड़ती है वही पद्मावती का मकान है। यह बात पाठक महाशय जानते हैं। इसी के एक कमरे में इस समय एक युवक पलङ्ग के ऊपर बैठे हैं। एक सुन्दरी युवती युवक के पावों के बीच अपना मुंह छिपा, आंखों के आंसुओं से पैरों को भिंगो रही है। युवक और युवती, नवकुमार और पद्मावती हैं—यह खोल कर नहीं कहना होगा।

नवकुमार ने पद्मावती का हाथ धर उसे अपनी बगल में बैठाया। पद्मा का रोना उस समय भी नहीं थंभा। वह करपल्लव से मुंह छिपा कर रोने लगीं। उस की मृणाल निन्दित बाहु-वल्ली से हो कर मुक्ता फल की तरह आंसू की बूंदें टपाटप गिरने लगीं। नवकुमार बोले, "पद्मा! वृथा रोने से क्या प्रयोजन? समय बीत जाने पर सोच करना व्यर्थ है। अब जो आगे है उसी के मुताबिक काम करो। जिस से परिणाम सुख से कटे, इसी का उपाय और चेष्टा करो।"

रोना बन्द कर पद्मा बोली, "नाथ! उपाय अनुपाय सब तुम्हारे हाथ में है। इस दासी का जीवन तुम्हारे ही पैरों तले है—जो चाहे रखो नहीं तो मार दो। उस के लिये मुझे और दुःख नहीं होगा। आशा की थी इस पाप-जीवन में एक बार पति के पद को चुम्बन कर सुखी होऊंगी, आज वह आशा सफल हो गयी; अब जीने की माया मोह मुझे नहीं है। अब मृत्यु से कातर न होऊंगी। इस घड़ी मृत्यु होने से सुख से मरूंगी। यदि

पूछो कि तब रोती हो क्यों ? इस का उत्तर नहीं है;—नाथ ! आज तुम्हारे चरणों तले स्थान पाकर जैसा सुख मैं ने पाया है वैसा सुख जीवन भर में कभी नहीं पाया था। जो सुख पहले सब से बढ़ कर जान पड़ता है और पीछे विष की तरह फल देता है मैं उसी सुख के अनुसरण में क्रम से अधिकतर पाप-पङ्क में धँसी जाती थी। अब देखती हूं पति-पद में स्थान पायी हुई सती के सुख के आगे वह सुख कैसा घृणित है! कैसा अकिञ्चित्कर है !! जीवितेश ! मैं ने उसी घृणित सुख की लालसा से जीवन का प्रधान समय बिता दिया है। उस से इस लोक और परलोक दोनों ही के सुखों की आशा जाती रही। नाथ ! मैं वही सोच कर रोती हूं। मैं यह पाप जीवन कभी को त्याग कर दिये होती, पर जिस आशा से आज तक वैसा नहीं कर सकी वह आज सफल हुई। अब मुझे दूसरी आशा नहीं है। आज जो अनुग्रह मैं ने तुम से पाया है वही यथेष्ठ है, इस से अधिक और कुछ नहीं चाहती।"

इतना कहने के बाद पद्मा और कुछ नहीं कह सकी। आनन्द से, शोक से, क्षोभ से, मन स्ताप और अनुताप से उस के मन में एक अभिनव असहनीय भाव झटिका प्रवाहित होने लगी। एक ही समय इतने प्रकार के भाव उस के मन में उत्पन्न होते थे कि उन का प्रकोप सहन करना बड़े २ क्षमताशाली व्यक्तियों के लिये भी दुस्साध्य है। सामान्य रमणी किस तरह सह सकेगी ? पद्मावती का कंठ रुंध गया। उस का माथा घूमने लगा। वह स्थिर होने की चेष्टा करने लगी, पर हो नहीं सकी। चैतन्य जाता रहा। धीरे २ पद्मावती की चैतन्यहीन जड़ देह नवकुमार के पैर पर आ गिरी। नवकुमार ने पद्मावती को उठाने के लिये हाथ फैलाया; देखा कि वह चेतनशून्य है। सहसा इस तरह की विपद देख नवकुमार ने घबड़ा कर दासियों को पुकारा। वे चट पट जल और ताड़ का पंखा लेकर आ पहुंचीं और मूर्च्छिता की शुश्रूषा आरम्भ की। यथासाध्य नवकुमार भी उस की बेहोशी दूर करने की चेष्टा करने लगे। किन्तु बहुत यत्न किये जाने पर भी पद्मा को होश नहीं हुआ। नवकुमार की आंखें डबडबा आईं। क्रम से गाल से हो कर आंसू ढरकने लगे। बड़ी देर के बाद पद्मावती ने एक लम्बी सांस

की। नवकुमार का वदन प्रफुल्ल हो गया। क्रम से पद्मा होश में आने लगी; उस की शिराओं में रक्त की गति देख पड़ी, गाल लाल हुए, क्रम से उस ने आंखें भी खोलीं। नवकुमार पद्मावती को फिर होश में देख कर आनन्द से सारे आगा पीछा भूल गये। पद्मावती के ऊपर जो उन का विद्वेष था वह इस घटना से दूर हो गया। आनन्द से उत्फुल्ल हो खुले मुंह बोल उठे, "प्राणेश्वरी! तुम्हारे सहस्रों अपराध मैं ने क्षमा किये! प्रिये! तुम रमणियों में रत्न हो! तुम को मैं ने बहुत दुःख दिया है। संसार जाय, जावे; लोक समाज में अपमानित होऊं—होता रहूं; अदृष्ट में जो है, होवे; आज साफ़ साफ़ कहता हूं—पद्मावती! तुम मेरी पत्नी हो। तुम को और कष्ट न दूंगा।"

तीव्र वेग से उठ कर पद्मावती ने दासियों को हटने का हुक्म दिया और अपने सुगोल नवनीतनिभ-भुज युगल को नवकुमार के गले में डाल कर उन की छाती पर अपना मस्तक रख कहा, "नाथ! स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोचा था कि इस अभागिन के ललाट में इतना सुख लिखा था! मैं स्वर्ग में हूं या संसार में! मैं क्या स्वप्न देखती हूं? माया की मोहिनी क्षमता ने क्या मेरी आंखों पर पर्दा डाल दिया है?

अपराध कर के अपराधी यदि अपना दोष नहीं स्वीकार करता और अपने किये के लिये लज्जित हो कर विनीत और भद्र व्यवहार नहीं करता तो इस संसार में उस की दुर्दशा का ठिकाना नहीं रहता। कोई एक आदमी यदि कोई अपराध करता है तो सभी उस पर क्रुद्ध हो जाते हैं, चाहे उस के दोष से उन की कुछ क्षति वृद्धि हो अथवा नहीं; किन्तु दोषी यदि किसी साधारण आदमी द्वारा की हुई घृणा और अपमान को सह ले, और बार २ अपनी सचाई के प्रमाण न दिखा कर अपना अपराध स्वीकार कर विनीत भाव से संसार यात्रा निर्वाह करे तो जो लोग कुपित या विरक्त रहते हैं वे भी दया करने लग जाते हैं। कोई उस से फिर घृणा नहीं करता। उस का अपराध क्रम से विस्मृति-सागर में डूब जाता है—उस के गुण से उस का कलङ्क ढंक जाता है।

पद्मावती की घटना ही इस का सुन्दर दृष्टान्त है। पद्मावती से भेंट करना भी नवकुमार बड़ी लाज की बात समझते थे। उस से घृणा करते और कभी उस के साथ उन्हें सम्पर्क था यह सोचते भी कुण्ठित होते थे; किन्तु उस की एकान्त पति-पद-चिन्ता, पूर्व्वकृत पापों के लिये विलक्षण अनुताप, सती धर्म्म के अनुष्ठान के लिये सारे सुखों का त्याग इत्यादि देख कर क्रम से नवकुमार का मन फिर गया। उस के प्रति उन को दया जन्मी। पद्मावती नवकुमार को चाहती है इस में सन्देह नहीं। प्रेम के बदले में प्रेम आवश्यक है। पद्मावती यदि नवकुमार को चाहती थी तो नवकुमार भी अवश्यही उस के बदले में उसे चाहते थे*। क्यों उन्हों ने तो ऐसा नहीं किया?—अवश्य ही उन्हों ने पद्मावती के प्रेम का बदला दिया था; किन्तु दूसरी तरह से। उन के मन में जो पद्मा के प्रति घृणा, द्वेष और अभिमान प्रभृति थे वे सब प्रेम ही के रूपान्तर हैं। जिस के साथ आदमी को कुछ लगाव नहीं रहता उस के दोष गुण की कौन खोज पूंछ करता है? नवकुमार का प्रणय उस के प्राणों के भीतर था; दूसरा नहीं जान सकता।

प्रणयी सभी समय यह नहीं जान सकते कि प्रेमपात्र के प्रति उन का कितना प्रेम है। दिन २ तिल २ कर के प्रेम बढ़ता है। प्रणयी पहले यही इतना जान सकता है कि वह उसे प्यार करता है। किन्तु उस प्यार का परिमाण कितना है यह उस समय उस को नहीं मालूम हो सकता। यदि सहसा प्रेमपात्र से विरह हो, यदि सहसा उस पर कोई विपद आवे तोभी शोकाकुल होकर हृदय यह बात प्रकाश कर देता है कि उस के प्रति उस का प्रणय कितने परिमाण का है। इसी नियम के अनुसार पद्मावती को नवकुमार कितना चाहते थे यह पहले नहीं जानते थे, पर आज उस की पीड़ा ने यह बात प्रकट कर दी।

जो नवकुमार कुछ दिन पहले पद्मावती से जहां तक बन पड़ता घृणा करते, क्रम से नित्य नये रंग दिखाने वाले काल ने उन के हृदय को

---

* किसी उर्दू के कवि ने कहा है:—"तासीरे इश्क़ होती है दोनों तरफ़ ज़रूर। मुमकिन नहीं कि दर्द यहां हो वहां न हो।" (अनुवादक)

एकदम आश्चर्य रूप से पलट दिया। उन्हीं ने क्रम से घृणा को करुणा और अश्रद्धा को श्रद्धा से पलट दिया। उन का हृदय उस की ओर एकाएक आकृष्ट हो गया। अब वे ही नवकुमार इस समय पद्मावती के लिये रोते हैं। उस के लिये आत्मीय, समाज, जाति, कुटुम्ब, बन्धु बान्धव, सब को त्यागने के लिये प्रस्तुत हैं और उस को बार २ आलिङ्गन कर रहे हैं। काल! तुम धन्य हो।

कपालकुण्डला! (मृण्मयी) इस समय तुम कहां हो? अतल जल में डूब गई हो इसी से देख नहीं सकती? एक दिन कापालिक के भयानक खड्ग के मुंह से जिसे तुम ने बचाया था, वही अकृतज्ञ एक बार तुम्हें अपना मन दे आज फिर दूसरी को बेरोक दे रहा है। सचमुच क्या नवकुमार पद्मावती के प्रेम में मुग्ध हो कर कपालकुण्डला को भूल गये? नहीं, कभी नहीं। पूर्णचन्द्र-विराजित नभोमण्डल में सहसा एकाध मेघ उदित हो कर क्षण काल के लिए संसार को अंधियाला कर देता है, इसी लिये क्या संसार बराबर ही अन्धकाराच्छन्न रहता है? कभी नहीं। मेघ हटता है और संसार में दिव्य आलोक प्रकाश पाता है। चन्द्र और तारागण किरण-वर्षण करते हैं। जब तक मेघ रहता है तब तक क्या चन्द्र ताराओं का काम बन्द रहता है? नहीं, यह कभी नहीं होता। वे केवल अदृश्य हो जाते हैं। नवकुमार के हृदयाकाश की भी अवस्था ठीक वैसी ही है। वहां मृण्मयी की प्रणय-चन्द्रिका पूर्ण दीप्ति से चमक रही थी, सहसा पद्मावती के प्रणय ने मेघरूप हो कर उस को ढंक लिया। जब तक यह रहेगा तब तक वह ढंकी रहेगी— बस इतना ही; कुछ उस का कार्य्य बन्द नहीं होगा। वह मेघावृत चन्द्रमा की तरह अदृश्य भाव से रह कर अपना काम करेगी।

नवकुमार और पद्मावती बाहरी ज्ञान से रहित हो कर भवसागर में डूब उतरा रहे हैं इसी समय एक अभावनीय घटना ने उन के आनन्द में बाधा जन्मायी। नवकुमार ने सुना प्रकोष्ठान्तर से उमापति उन को बुला रहे हैं। सुनते ही पद्मावती ने झटपट उन के गले से अपना हाथ हटा लिया। इसी समय पेश्मन आकर बोली, "किसी बहुत जरूरी काम के लिये एक आदमी

आप को बुला रहे हैं।" नवकुमार घबड़ा कर उठे और पद्मावती से बिदाई ली। पद्मावती ने और उपाय न देख, इच्छा न रहने पर भी उन को बिदा किया। चलती बार बोली, "नाथ! दासी को भूलना मत। यही आप के श्रीचरण में प्रार्थना है।"

नवकुमार पद्मावती को समझा बुझा कर और तुरत ही उमापति के बुलाने का कारण कहने की प्रतिज्ञा कर बाहर आये।

पद्मावती का सुख-सूर्य्य उदय होते ही अकाल ही में जलद जाल से आच्छन्न हुआ! बड़े कष्ट से माला बना कर गले में उसे पहिना ही था कि वह टूट गयी! बड़े परिश्रम से जो यन्त्र निर्म्माण किया था, काम के लायक होने के पहले ही, नयी बाधा उपस्थित हो जाने के कारण उस का काम रुक गया।

सप्तम परिच्छेद।

नयी विपद।

————————"deep troubles toss
Loud sorrows howl, envenom'd passions bite.
Ravenous calamities our vitals seize,
And threatening fate wide opens to devour."

Young.

"एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितम्मे—।"

हितोपदेश।

नवकुमार ने बाहर आकर देखा उमापति वहां नहीं हैं। पूछने पर मालूम हुआ वे आगे बढ़ गये हैं। घबड़ाये हुए नवकुमार घर आये। वहां उमापति से भेंट हुई। उन को उदास देख नवकुमार ने उद्वेग के साथ पूछा, "भाई! क्या हुआ है? मुझे क्यों बुलाने गये थे? उदास क्यों हो?"

उमापति ने कहा, "तुम्हें बुलाने गया था उस का कारण है। चलो कहता हूं।"

दोनों भीतर गये। बैठने के बाद उमापति ने कहा, "थोड़ी देर हुई नवद्वीप से खबर आयी है कि तुम्हारे बहनोई मथुरानाथ बहुत बीमार हैं। उन के लिखे इस पत्र को पढ़ कर जान सकोगे। इस समय क्या करना चाहिये इसी बारे में सलाह करने के लिये तुम्हें बुलाने गया था।" यह कह उमापति ने नवकुमार के हाथ में एक पत्र दिया। उस को खोल कर नवकुमार पढ़ने लगे:—

"श्रीचरणेषु प्रणामान्ते निवेदनमेतत्,

आजकल मैं बहुत बीमार हूं। इस रोग से बचने की आशा दुराशा है। एक बार अन्तिम समय आप को और आप की बहिन को देखना चाहता हूं। अतएव यदि विशेष असुविधा न हो तो पत्र पढ़ते ही आप दोनों आकर दर्शन दे मुझे सन्तुष्ट करें। और क्या लिखूं? बड़े कष्ट से इतना लिखा है। इति तारीख २७ वीं चैत।"

पत्र पढ़ कर नवकुमार की आंखों से आंसू गिर पड़े। जब पत्र पढ़ा जा रहा था उस समय आड़ से खड़ी होकर श्यामा ने सब सुन लिया। किन्तु वे इस समय रोती नहीं हैं। उन के भीतर की अवस्था इस समय जैसी है वैसी अवस्था में रुलाई नहीं आती। असह्य मानसिक क्लेश जब शिथिल होता है तभी रुलाई आती है। इस समय श्यामा के हृदय में जो यन्त्रणा हो रही है सो रोने के लिये नहीं है। इस के पहले उमापति के मुंह से खबर पाकर वे रो चुकी हैं। इसी से इस समय उन की आंखों ने प्रस्फुटित जवाकुसुम की सी शोभा धारण की है।

उमा०—भाई! उदास न होवो। स्थिर होकर जो करना हो करो।

नव०—जाना ही ठीक होगा।

उमा०—मेरी राय है खा पीकर आज ही तुम लोग नवद्वीप की यात्रा करो।

नव०—वही ठीक ही होगा। इस समय नाव ठीक करनी चाहिये।

उमा०—मैं नाव ठीक किये आता हूं। तुम लोग जल्द खा पी लो।

उमापति यह कह चले गये। नवकुमार और श्यामा शीघ्र खा पीकर तैयार हो गयीं। थोड़ी देर में उमापति भी नाव ठीक कर चले आये। नवकुमार और श्यामा ने यात्रा की। उमापति नाव तक साथ रहे। बिदा होती बेर कहा, "नवकुमार शीघ्र सम्वाद भेजना।"

नवकुमार "अच्छा!" कह कर उमापति के कान के पास जा कर बोले, "यदि बन पड़े तो पद्मावती को भी यह खबर दे देना।"

उमापति ने स्वीकार किया। नवकुमार, श्यामा, एक नौकर, नवद्वीप से खत ले कर आया हुआ आदमी और एक दाई नौका पर चढ़ी। नौका सप्तग्राम छोड़ चली।

यहां पर हम लोग पाठकों से श्यामा सुन्दरी की ससुराल के सम्बन्ध में एकाध बात कहेंगे। श्यामा की जिस समय ८ वर्ष की उमर थी उसी समय उस का विवाह नवद्वीप-निवासी श्रीयुक्त मथुरानाथ चटोपाध्याय के साथ हुआ था। उस समय मथुरानाथ की उमर १४ वर्षों की थी। मथुरानाथ के पिता बड़े कुलाभिमानी थे। उन्हों ने श्यामा के साथ विवाह हो जाने

पर मथुरानाथ के दो व्याह और किये। श्यामा सम्पन्न आदमी की लड़की थी, उस को अन्न वस्त्र का कष्ट नहीं हो सकता था; यह बात मथुरानाथ के पिता जानते थे। सुतरां उन्हों ने श्यामा को अपने घर नहीं बुलाया। बीच २ में मथुरानाथ अपनी ससुराल सप्तग्राम में आते थे। मथुरानाथ की और दो पत्नियां उन के घर ही पर रहती थीं। इन दोनों स्त्रियों का स्वभाव एक दूसरे से एकदम भिन्न था; तिस पर सौतिन का नाता! सुतरां यह कहना बाहुल्य मात्र है कि वे रात दिन लड़ाई झगड़ा कर के दिन बिताती थीं। प्राय: दो वर्ष हुए मथुरानाथ की बिचली स्त्री ने परलोक यात्रा कर सौतिया दाह से छुट्टी पायी। मथुरानाथ की तीसरी स्त्री का नाम कुमुदिनी है। कुमुदिनी देखने में बड़ी सुन्दरी है। इस समय उस की उमर सोलह साल की होगी। उस में बहुतेरे गुण हैं। पर जिन गुणों से श्यामा का हृदय शोभित है उन के आगे कुमुदिनी के गुण निकृष्ट प्रतीत होंगे। मथुरानाथ को श्यामा का सौन्दर्य्य कभी नहीं भूलता था। वे ऐसे कुछ धनी नहीं थे। और पिता की इच्छा बिना भी कोई काम नहीं करते थे। इसी से वे सदा श्यामा को देख नहीं सकते थे। जिस वर्ष उन की बिचली स्त्री मरी उसी साल उन के पिता का भी गङ्गालाभ हुआ। लेकिन उस के बाद उन को इतनी विपत्तियां झेलनी पड़ीं कि वे अब तक श्यामा के दर्शन से वञ्चित रहे। सम्प्रति बीमार पड़ने के कारण वे श्यामा को देखने के लिये व्याकुल हुए।

इस के सिवाय मथुरानाथ के परिवार में उन की एक विधवा माता थीं। जब श्यामा एकदम बच्ची थी उसी समय उन्हों ने उसे एक बार देखा था। नवकुमार दो बार नवद्वीप आये थे। मथुरानाथ की मा उन्हें बहुत चाहती थीं। मथुरानाथ स्वयं बड़े अच्छे आदमी थे। वे विद्या का सुमिष्ट आस्वाद विशेष रूप से जानते थे। इस के सिवाय वे बड़े प्रियभाषी और सुरसिक थे।

प्रथम खण्ड समाप्त।

द्वितीय खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

विजन-वन ।

"बैठ अकेली नवल नवेली मलिन मुखी हो रोती है ।
और भार भारते अश्रु आंख से देख दया मन होती है ॥
शरद शशी सा सुवदन उस का राहु-ग्रस्त सा दिखता है ।
विजन विपिन में रोना उस का सुन कर मन मुरझाता है ॥"

माइकेल मधुसूदन दत्त ।

जिस समय की घटनाएं इस आख्यायिका में वर्णित हो रही हैं उस समय सप्तग्राम से प्रायः तीन कोस दक्खिन गोपालपुर नाम का एक गांव था । ग्राम की चारो ओर बन ही बन था । आदमी बहुत कम रहते थे । राह बाट भी अच्छे नहीं थे । गोपालपुर से लग भग आध कोस उत्तर की तरफ़ एक घना वन था । उस बन में दिन को भी प्रवेश करते लोग डरते थे । इसी बन के बगल से गांव में आने जाने के लिए एक राह थी । उस डाकुओं, खूंख़ार जानवरों और दूसरी तरह के ख़तरे की बातों से भरी हुई राह में राही लोग सहज ही पांव नहीं डालते थे । नितान्त प्रयोजन होने से कई लोग मिल कर एक दल बांध उस राह से आते जाते थे ।

दिन बीत गया है । सूर्य्य देव अब विश्राम कर रहे हैं । नाना देशों से उदर पूर्ण कर आये हुए पक्षिगण अपने २ घोंसलों में आश्रय ले रहे हैं । हठात् गांव के कई कुत्ते एक ही बार बड़े ज़ोर से भूंकने लगे । उन की ध्वनि प्रतिध्वनित हो कर अरण्य पर्य्यन्त आयी । एक निश्चिन्त और सानन्द कृषक अपनी गौओं को घर लिये जाता है और प्रेम-व्यञ्जक गीत गा रहा है । उस की मीठी ध्वनि से सारा जङ्गल आनन्दमय हो रहा है । बन से थोड़ी

ही दूर पर अपने झुण्ड से बहकी हुई कुछ गायें राह भूल कर डर के मारे चारो ओर घबड़ा कर ताक रही हैं। जिस की गाय भूली थी वह अरण्य पथ पर बहुत दूर तक आ कर बड़े ज़ोर से "आहिः! आहिः!!" बोल उठा। पालक के कण्ठ से निकले हुए परिचित स्वर को सुन कर गाय हुंकारती हुई उस ओर चली। एक झाड़ी के पास एक सियार बैठ कर सोत्सुक दृष्टि से चारो ओर देखता और समय २ पर मक्खी और मच्छड़ भगाने के लिये पूंछ हिलाता है; पैर से देह खुजलाता है और दांत से अपनी देह के स्थान विशेष को काटता है। सहसा एक नेवला बोलता हुआ रास्ते की एक छोर से दूसरी छोर को चला गया। फलतः इस बन की इस समय की प्राकृतिक छटा देखने से एक ही समय प्रीति और भय ये दोनों ही भाव सञ्चारित होते हैं।

इसी समय इस राह से हो कर जाते हुए एक युवक दीख पड़े। ऐसे समय ऐसी विपदभरी राह से हो कर ये युवक अकेले क्यों जा रहे हैं? जिस राह में मनुष्य-समागम न रहने के कारण केवल बन ही बन है उस राह में सन्ध्या समय अकेला मनुष्य! युवक तेज़ी से डेग बढ़ाते हुए गांव की ओर जा रहे हैं। उन की नज़र किसी ओर नहीं है। सहसा वे स्थिर हो खड़े हो गये। उन के कान में एक शब्द सुनाई दिया, वही शब्द फिर से सुनने के लिए उन्हों ने अपने कान खड़े कर लिये। थोड़ी ही देर में भय से भरी हुई रोदन-ध्वनि उन के कानों में पड़ी। शब्द रमणी के कण्ठ से निकला हुआ, जान पड़ता था। युवक और स्थिर नहीं रह सके। इस भयानक विपज्जनक घोर बन में कोई अबला विपद्ग्रस्त हो रो रही है—सुन कर कौन निश्चिन्त रह सकता है? युवक शब्द को सीधी पर दौड़े और जितने ही पास होते गये उतनी ही स्पष्ट रीति से उस अगोचरा रमणी का हृदय-भेदी आर्त्तनाद उन के कानों में प्रवेश करने लगा। युवक तेज़ी से चलने लगे। लत्तरों में उन के पैर फंसने लगे, वे ज़ोर कर उन्हें छिन्न करने लगे। कांटों से उन की देह लोहूलहान हो गयी। उस ओर उन्हों ने भ्रूक्षेप भी नहीं किया। थोड़ी देर बाद वे निर्द्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये। वहां पर जो

भयानक कांड देखा उस से उन के रोएं खिड़र उठे। उन्हों ने देखा एक डरावनी सूरतवाला आदमी एक डरी और रोती हुई सुन्दरी युवती की बांह पकड़ कर बल प्रयोग कर रहा है। रोती २ वह तरुणी उस पिशाच के पांवों पड़ती है और बीच २ में ऊंची आवाज़ से रो रो कर सहायता की प्रार्थना कर रही है। वह पापी उस ओर कान न दे कर युवती को जिन शब्दों में सम्बोधन करता है और जैसे जघन्य प्रस्ताव पर युवती की सम्मति पाने के लिये विविध लोभजनक बातें कह रहा है वह सुन कर ठण्ढा खून भी गर्म हो जाता है। रमणी की किसी प्रार्थना और विनती पर उस पाखण्डी का मन नहीं पसीजता है। उस नराधम ने देखा कि तरुणी का रोना बन्द किये बिना मेरा मनोरथ पूरा नहीं पड़ेगा; यही सोच कर वह दुर्वृत्त, सुन्दरी का मुंह बन्द करने की चेष्टा करने लगा। युवक और अपने को रोक नहीं सके। उस के हाथ में एक लाठी थी। इसी हथियार के भरोसे वे आगे बढ़े और उस दुरात्मा के सम्हलते न सम्हलते ही उस के शिर पर एक गहरी लाठी मारी। लाठी चकना चूर हो गयी। उस पिशाच को बड़ी गहरी चोट बैठी। मुंह से आवाज़ न आयी—चुप चाप बैठ गया। युवक ने उस को सोचने विचारने का मौक़ा न दे कर उस के लम्बे बालों को पकड़ कर उसे ज़मीन पर दे मारा और उस की छाती पर चढ़ बैठे। उस पापी ने अपनी लाल २ आंखों को तड़ेर कर युवक की ओर देखा। उस दृष्टि की प्रत्येक कणिका से प्रबल प्रतिहिंसा और विद्वेष कामना प्रकाशित होती थी! युवक उस से कातर नहीं हुए। भीता, सङ्कुचिता, सुन्दरी को विपद् से बचाने का ही उन को अपार आनन्द था।

सुन्दरी तरुणी अभी तक पीपल के पत्ते की तरह कांप रही है। युवक ने उस की ओर दृष्टि की। तुरत ही युवती ने माथा नीचा कर लिया और रोने लगी। युवक ने देखा रमणी असामान्या सुन्दरी, यौवनोन्मुखी बालिका है। युवती के असामान्य सौन्दर्य्य ने युवक के हृदय में आघात किया। वे बोले, "अब डरती क्यों हो? कांपने का क्या कारण है? अगर आपत्ति न हो तो अपना परिचय दो; मैं निरापद तुम्हें घर पहुंचा दूंगा।"

इस समय को सुसमय जान युवक के भीषण आक्रमण से निष्कृति पाने के लिये वह दुरात्मा चेष्टा करने लगा। वज्र की तरह गम्भीर स्वर से युवक ने कहा, "दुष्ट! स्थिर रह, अभी तेरे जघन्य जीवन को यमालय भेज कर जगत् के पाप भार को हलका करने में सङ्कोच न करूंगा।"

यह कह युवक ने पहले उस के पैर खूब कस कर बांध दिये। इस के बाद उस के हाथों को बांध कर पास के एक पेड़ में उस के शरीर को बांध दिया। और इन बंधे हाथ पांवों को कठिन रूप से इकट्ठा जकड़ दिया। वे बोले, "मैं तुम्हारे पापी जीवन का वध कर अपनी आत्मा कलुषित न करूंगा। दूसरे उपाय से तेरी जान जाय इस में मुझे आपत्ति नहीं है। तुम्हें जिस अवस्था में छोड़े जाता हूं, यदि ब्रह्मा ऐसे ही तेरे अनुकूल होंगे तब तू बचेगा। नहीं तो इसी से अपने जीवन का अन्त समझो।"

इस समय तरुणी युवक की मनोहर, सम्पूर्ण और सुगठित कान्ति देख रही थी। सुन्दर रूप से उपकार की छाया हृदय-पट पर ग्रहण करने के लिये हो, वैसा रूप कभी देखा नहीं इस लिये हो अथवा उपकारक के प्रति आदमी के मन में स्वभावत: जो भक्ति जन्मती है इस लिये हो, युवक की उस नयनानन्द मूर्त्ति से अपनी दृष्टि हटाने को युवती का जी नहीं चाहता था। इसी समय युवक उस पापिष्ठ को बांध बूंध कर निश्चिन्त हो आनन्दित मन से युवती के पास आये। बस रमणी ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया और उस के नयनों में आंसू छलछला आये।

युवक बोले, "भय की तो अब कोई बात नहीं, फिर क्यों डरती हो?

युवती ने उत्तर नहीं दिया। युवक ने फिर युवती का परिचय और इस घटना का पूर्व वृत्तान्त जानना चाहा। युवती ने बहुत संक्षेप में, धीरे २ मधुर, कम्पित और भय विकलित स्वर में, इस घटना का पूर्व वृत्तान्त जनाया।

युवक ने सिहर कर पूछा, "इस समय कहां पहुंचा देने से तुम निश्चिन्त होवोगी?"

युवती—"गोपालपुर में हमारा घर है।"

युवक—"गोपालपुर में! वहां तो मैं बराबर आया जाया करता हूं। तुम्हारे पिता का नाम सुन सकता हूं?"

युवती—"कालिदास भट्टाचार्य।"

युवक सिहर उठे और विस्मय के साथ बोले, "विधाता को धन्यवाद है कि मैं वहां पर मौजूद हुआ। भट्टाचार्य्य महाशय को मैं अच्छी तरह जानता हूं। तुम उन्हीं की लड़की हो? तुम को तो कभी देखा नहीं।"

आकाशमार्ग को भेद कर द्विजराज (चन्द्रमा) इस समय अपना सोने का रथ चलाये जा रहे हैं। पति-विरह में निदारुण कष्ट भोग करना होगा, यह सोच कर तारावली रथ को चारो ओर से घेर कर मानों, "कहां जाते हो! कहां जाते हो!!" कहती रथ के साथ २ चल रही हैं। पृथ्वी हास्य-मयी है। सर्व्वत्र आलोकमय है। विहङ्ग गण समय पर बोल उठते हैं। बोध होता है रजनी की ऐसी शुभ्रता देख उन को दिन का भ्रम होता है और इस से सन्ध्या के साथ ऊषा को आयी जान वे ऊंचे स्वर से चित्कार करते हैं।

युवक ने कहा, "अब देर न करो। क्रम से रात बहुत बीत रही है। चलो तुम को पिता के पास पहुंचा कर निश्चिन्त हो जाऊं।" युवती ने इस प्रस्ताव में अपनी सम्मति जनायी। युवक आगे हुए। युवती पीछे २ चली। थोड़ी ही देर में वे निविड़ वन में अदृश्य हो गये।

क्या पाठकों ने पहिचाना कि यह युवा कौन हैं? यह हम लोगों के परिचित उमापति हैं। गोपालपुर में उमापति का नानिहाल है, इसी से वे बराबर वहां जाया करते हैं। किसी विशेष कार्य्य के लिये उन का इस ओर से आज जाना हुआ था।

——:o:——

द्वितीय परिच्छेद ।

घर पर ।

अपने घर को आपहि आयी ।
गयी जान पितु मातु ने पायी ॥

चण्डिदास ।

गोपालपुर निस्तब्ध है। मानवगण निद्रा के कोमल क्रोड़ में विश्राम लाभ की चेष्टा कर रहे हैं। सर्व्वत्र शान्ति विराज रही है। गांव के केवल एक घर के लोग सोये नहीं हैं। घर देखने से सम्पन्न आदमी का नहीं प्रतीत होता। मकान बहुत पुराना लेकिन साफ सुथरा है। भीतर केवल चार ही घर हैं—सामने आंगन है, आंगन बहुत चौड़ा नहीं है; उस की दूसरी बगल फूस का छाया हुआ एक घर है। भीतर एक प्रकोष्ठ में दीप जल रहा है। उसी दीप के उंजाले में बैठे दो आदमी बातें करते और रोते हैं। इन में एक पुरुष और दूसरी स्त्री है। पुरुष की उमर पचास वर्स से कम की न होगी। दूसरी उसी की स्त्री है। उस को भी चालीस से कम की उमर न होगी।

पुरुष ने कहा "मैं और क्या करूंगी कहो ? भर सक खोज ढूंढ़ करने में तो कोई कसर नहीं की, अब विधाता की जो इच्छा! एक तो रात, तिस पर अंधियाली इतनी गहरी है, अब इस वक्त कहां जाऊं ? जा ही कर क्या करूंगा ? निश्चिन्त ही क्योंकर रहूं ? हरिहर के कितने ही आदमी खोजने के लिये छूटे हैं। उन से अधिक मैं क्या पता लगाऊंगा ? तौभी तो मन नहीं मानता। भगवान् ने हमारे भाग में इतना दुःख लिखा था! अच्छा; जाता हूं।" स्त्री बोली, "नहीं; तुम जा कर क्या करोगे ? मैं अभी सोच रही थी कि जो करम में था सो तो हुआ, अब कल्ह सुबह में लोगों को मुंह कैसे दिखाऊंगी ?"

पुरुष ने कहा, "भगवन्! सब तुम्हारी ही इच्छा है! समाजच्युत हुए, पैतृकस्थान से भ्रष्ट हुए; एक कन्या थी आज उसे भी खो बैठे। सब सह कर एकलौती लड़की को लेकर यहां पर लुक छिप कर रहता था, यह

भी है भगवन् तुम से नहीं सहा गया ! इस चिर दुःखी को कष्ट देने में तुम्हें इतना आनन्द होता है ! दो, इस में कोई चति नहीं है। मुझे कष्ट दो; मैं ने बहुत सहा है और और भी बहुत कुछ सह सकता हूं, लेकिन मेरी बच्ची ने कभी दुःख नहीं देखा है, उस को इतना दुःख देना, दयामय ! क्या तुम्हें शोभा देता है ? अपनी बात तुम आप ही जानो ! हाय ! न जाने वह कैसी विपद् में पड़ी है।"

इसी समय उन के घर के पिछवाड़े आदमियों के पैरों की आहट सुन पड़ी। दोनों सतृष्ण नयन से अङ्गनद्वार की ओर देखने लगे और थोड़ी देर में मालूम हुआ कि रजनी का अन्धकार भेद कर दो अस्पष्ट मनुष्यमूर्त्तियां प्रवेश कर रही हैं। दोनों उस ओर लपके और पूछा, "कौन ! मुक्तकेशी ? इस प्रश्न का उत्तर बात से नहीं दिया गया। मुक्तकेशी ने मुहूर्त्त मात्र भी विलम्ब न कर माता के गले से लिपट कर इस का जवाब दिया। खोयी हुई लड़की फिर से पाकर जो अपार आनन्द उन दोनों को हुआ वह बात से कह कर प्रकट नहीं किया जा सकता। वे सभी कितनी ही देर तक वहां खड़े रह कर शोक और आनन्द के आंसू बरसाते रहे।

अन्ततः मुक्तकेशी बोली, "बाबा ! इन्हीं ने आज हमारी रक्षा की है।" यह कह उमापति को दिखाया।

उमापति को देख कर कालिदास भट्टाचार्य्य तुरत ही पहचान गये और खुश हो कर बोले, "कौन, उमापति ?"

उमापति ने "जी हां !" कह कर उत्तर दिया।

भट्टाचार्य्य बोले, "उमापति ! अब तक मन दूसरी तरफ़ था, तुम को देखा नहीं। कुछ दूसरा नहीं सोचना।" यह कह ब्राह्मणी की ओर फिर कर बोले, "तुम इन को नहीं जानती। ये हम से अलग नहीं हैं। ये हरिहर के भाञ्जे होते हैं।"

उमापति ने कहा, "मैं इस समय जाता हूं। रात बहुत बीत गई है। मामा से बहुत ज़रूरी काम है।"

भट्टाचार्य ने कहा "उमापति! रात बहुत बीत गयी है, आज यहां रह जाने में क्या हर्ज है? आज हम लोगों को जो आनन्द हुआ है उसके कारण तुम्ही हो, अतएव तुम्हारे साथ जितनी ही अधिक देर इस बारे में बातचीत की जायगी उतना ही यह आनन्द बढ़ेगा।"

उमापति कुछ सोच में पड़ गये। कुछ देर तक चुप ही रहे। वे एक विशेष प्रयोजनवश मामा के घर जा रहे थे—राह में यह विपद् पड़ी। कठिन काम न होता तो कभी अकेले, कुसमय में, उस जनहीन पथ से नहीं आते। इस लिए अपना काम हर्ज करना उमापति ने मुनासिब नहीं समझा। फिर सोचा कि सुन्दरी मुक्तकेशी को देखने और उस के निकट रहने में जितना समय बीतेगा वह आनन्द ही में बीतेगा। उस सुख की आशा छोड़ना भी उन को पसन्द नहीं था। इस प्रकार छः पांच करते २ उमापति ने मुक्तकेशी की ओर दृष्टि फेरी। देखा, मुक्तकेशी एक टक से उन्हीं को देख रही है। उमापति को जान पड़ा मानों उस दृष्टि में कृतज्ञता, आनन्द और माया भरी है। उमापति सब कुछ भूल गये। उन को विशेष प्रयोजन भी अति सामान्य बोध होने लगा। उस स्थान के बदले यदि उन्हें कोई स्वर्गराज्य का अक्षय सिंहासन देने को प्रस्तुत होता तौभी उमापति ग्रहण करते कि नहीं इस में भी संदेह ही है।

ठीक निश्चय कर उमापति बोले "नहीं होगा, आज यहीं रहूंगा।"

अब के फिर उमापति ने मुक्तकेशी का निष्कलङ्क मुखचन्द्र देखा। उन को जान पड़ा मानों वह आनन्द से हंस रही है। उन के मनश्चक्षु कल्पना बल से मुक्तकेशी के मुख के नाना विध भावों का पर्य्यवेक्षण करने लगे। भ्रान्त उमापति कल्पनादृष्ट अवास्तव और अप्रकृत बातों को वास्तव और प्रकृत जान कर सुखी हुए।

खुश हो भट्टाचार्य्य उमापति का हाथ धर घर में ले गये। मुक्तकेशी और उस की माता पीछे २ चलीं। दीये के उजाले में सब लोग भिन्न २ स्थानों में बैठे। मुक्ता और उस की मां एक जगह बैठीं। बालिका ने माता के कन्धे पर अपना माथा रख दिया। इस समय भी मुक्तकेशी कभी २ चौंकती

ओर थर थराने लग जाती थी। उस की मा आंचर से उस की आंख पोंछ कर दहिने हाथ से उस की कमर पकड़ कर बैठीं।

भट्टाचार्य्य बोले, "बेटी! अब डर की क्या बात है? बोलो तो सही क्या हुआ था?"

उमापति ने कहा, "वह सब बातें जानने के लिये मुझे भी बड़ा कौतूहल है; जो कुछ सुना है वह बहुत संक्षेप में सुना है।"

मुक्तकेशी ने उमापति की ओर देखा और फिर तुरत ही मुंह नीचा कर रोदन और भय-विकलित स्वर से सब बातें सुनाने लगी। वह सब बहुत बातें हैं। हम लोग उन्हें संक्षेप ही में पाठकों को बतलावेंगे।

मुक्तकेशी जिस तरह रोज़ तीसरे पहर देह मांजने के लिये अपने घर के पास वाले पोखरे पर जाती थी, आज भी गयी थी। और दिन उस की मा भी साथ रहती थीं, आज किसी ख़ास काम की वजह से वे नहीं जा सकीं। पड़ोसियों में से कोई न कोई वहां ज़रूर ही रहा करता था, आज उन में से कोई भी न था। मुक्तकेशी जल्दी २ अकेली बैठ कर गात्र धो रही थी। थोड़ी ही देर में काम समाप्त कर सीढ़ियों को ते कर तीर पर चली आयी। इसी समय पास वाले वन से निकल कर एक आदमी ने चुप चाप आ कर एकाएक मुक्तकेशी का हाथ धर लिया। उस को देख कर बालिका की बोलती बन्द हो गयी। उस की भैंसे सी देह, रूखापन, लाल आंखें, तांबे के से केश और डरावनी सूरत देख कर मुक्ता प्राणहीना सी हो गयी। भागना कठिन था। उस की सी कोमलाङ्गी के लिये उस की वज्र-मुष्टि से हाथ छुड़ाना कभी सम्भव नहीं है। वह रोवे कि चिल्लाये सो भी नहीं ठीक कर सकी। उस के लिये उसे व्यस्त भी नहीं होना पड़ा। तुरत ही उस दुर्वृत्त ने उस का मुंह बन्द कर उस की बोलने की शक्ति हरण कर ली। मुक्तकेशी बेहोश हो गयी। इस के बाद दुष्ट उसे पूर्व्व कथित वन में उठा ले गया। वहां जाकर उस ने उस का बन्धन खोला। तौ भी मुक्ता अज्ञान ही रही। बड़ी देर के बाद उसे होश होने लगा. उस को उस

अवस्था में छोड़ वह व्यक्ति कुछ दूर जा बैठा। अब उस का ज्ञानोदय होते देख हंसने लगा। मुक्तकेशी रोने लगी—वह और भी हंसने लगा।

मुक्तकेशी बोली, "मेरे मा बाप इतनी देर तक मुझे आयी न देख कितने रोते होंगे; कितना खोजते ढूंढ़ते होंगे। मैं तुम्हारे पावों पड़ती हूं, मुझे छोड़ दो। राह दिखा दो मैं घर चली जाऊं; मेरे मा बाप को और कोई नहीं है।"

उस ने एक भी न सुनी। बल्कि सुन २ कर हंसने लगा। वह किसी ओर ध्यान न देकर सब बातें अनसुनी कर मुक्तकेशी को कितना लोभ दिखाने लगा और किसी प्रकार अपना काम पूरा होता न देख बल प्रयोग का उद्योग करने लगा। कोई उपाय न देख मुक्तकेशी रोने लगी। दुष्ट ने देखा, उस का रोना बन्द किये बिना उस का मनोरथ पूरा न होगा। यही सोच ज्यों ही मुक्तकेशी का रोना बन्द करने के लिये वह उस का मुंह बांधने लगा त्यों ही विधाता ने मुक्तकेशी के दुःख से दुःखित हो उस के पवित्र चरित्र की पवित्रता की रक्षा के लिये उमापति को वहां भेज दिया। आगे का हाल सब पाठकों को मालूम ही है।

भट्टाचार्य्य ने कहा, "जगदम्ब! तुम सब कुछ कर सकती हो! उमापति! मैं दरिद्र ब्राह्मण हूं। कमला की कृपा से तुम को किसी चीज़ की कमी नहीं है। प्रार्थना करता हूं, तुम दीर्घजीवी हो, सुख स्वच्छन्दता से जीवन निर्व्वाह करो। आज जो उपकार तुम ने किया है उस का ऋण मैं जनम २ में भी नहीं चुका सकूंगा। मैं तुम्हारे मामा का आश्रित हूं। इस लिये मैं तुम से अलग नहीं हूं। अच्छा; उस के बाद क्या हुआ वह बोलो।"

उमापति ने मुक्तकेशी की घटना का बाकी हिस्सा कह सुनाया। इन सब बातों के होने पर सब कोई तरह २ की खुशी की बातें करने लगे, और खा पी चुकने पर अपने २ सोने की जगह पर चले गये।

———

तृतीय परिच्छेद।

सुख-स्वप्न।

" Among the various pretended arts of divination, there is none which so universally amuses as that by dreams. *

—Spectator."

उमापति दक्खिन तरफ एक घर में सोये। उन की शय्या से थोड़ी ही दूरी पर एक धीमा दीप जल रहा था। निद्रा देवी ने अभी तक उन के हृदय पर अपनी जय पताका नहीं गाड़ी थी। उमापति ने आंख मूंद ली है सही, पर वह निद्रा का द्योतक नहीं है। वे नाना तरह की चिन्ताओं में लगे हैं। एक के बाद दूसरी सुखमयी चिन्ता उन के हृदय में प्रविष्ट हो थोड़ी देर तक ठहर कर एक और ही के लिये राह साफ कर स्वयं दूर हो जाती है। सत्कार्य्य करने के बाद आदमी के मन में स्वभावतः आनन्द जन्मता है। आनन्द ही सुख की जड़ है। आज उन्हों ने जो सत्कार्य्य किया है, उस के प्रभाव से उन के हृदय में आनन्द लहरा रहा है। आनन्द के मारे हृदय स्थिर नहीं रहता। निरानन्द में एक ही चिन्ता बद्धमूल हो जाती है, आनन्द में वैसा नहीं होता। आनन्द में उस से सम्बन्ध रखने वाली नाना विध सुखमयी चिन्ताएं आ आ कर हृदय में अधिकार करती हैं।

उमापति बिछावन पर पड़े २ इसी तरह की एक पर एक उदय होती हुई चिन्ताओं की तरङ्ग में डूबते उतराते हैं। नाना तरह की चिन्ताओं के साथ ही एक सुखकारी-चिन्ता उन के हृदय में आ कर दृढ़ रूप से जम गयी। उस चिन्ता को अपने जी से हटा नहीं सके। वे उसी चिन्ता को अपने हृदय में स्थान दे कर अपार आनन्द सम्भोग करने लगे। उन का उत्साह, आनन्द, आशा की सीमा नहीं रही। एक रमणी की चिन्ता में, उसी के रूप को ध्यान करने से और उस के मनोहर स्वभाव को देख कर

---

* इस सृष्टि में स्वप्न की तरह सर्व्वानन्द-दायिनी वस्तु और कोई नहीं है।

उमापति का ज्ञान, विद्या, विवेचना, मान, सम्भ्रम प्रभृति प्रहरियों से वेष्टित चित्त पराभूत हुआ था। वह रमणी मुक्तकेशी है! उमापति मुक्तकेशी के रूप गुण के बारे में जितना ही आन्दोलन और आलोचना करने लगे, उतना ही अधिकतर आनन्द लाभ करने लगे, उतना ही उन का मन प्रबलतर वेग से क्रमशः उसी ओर दौड़ने लगा। वैसी भूलोक-दुर्लभ रमणी के चरित्र में जो घोर असित कलङ्क अङ्क संलिप्त हो रहा था, उस को मोचन करने में वे समर्थ हुए, इस लिये उन के आह्लाद की सीमा न रही। उन के निरहङ्कार मन में गर्व्व का उदय हुआ। वे सोचने लगे, मुक्तकेशी का मन कितना ऊंचा है! वह दयामयी देवी है! जो नराधम उस पर उतना अत्याचार करने को तैयार था उस पर भी मुक्तकेशी की दया है! मुक्तकेशी संसार का सार है। उस का मन मूल्यवान् रत्नों की खान है। उस की देह सौन्दर्य्य का घर है। वह कामिनी-कुल-कमलिनी है। इतनी शोभा, एक साथ इतनी गुणावली, इतनी पवित्रता उमापति ने कहीं नहीं देखी थी। मुक्तकेशी की सभी बातें उन को आश्चर्य्य जान पड़ने लगीं। जन्म पाकर जिस ने मुक्तकेशी को न देखा उस का जीना वृथा है। उस ने संसार में क्या देखा? कुछ नहीं। संसार में क्या और रूपवती रमणियां नहीं हैं? हो सकती हैं, किन्तु मुक्ता की अपेक्षा श्रेष्ठा रमणी है कि नहीं इस विषय में उमापति को सन्देह हुआ।

इन चिन्ताओं में उमापति इतने उन्मत्त हो उठे कि उन को जान पड़ने लगा मानो मुक्तकेशी लाज से सिर झुकाये उन के पास खड़ी है। उन को सुन पड़ा मानो मुक्तकेशी पास आ कर मधुर हास्य के साथ उन से बातें कर रही है, इत्यादि। नाना विध विषयों को सोचते २ उमापति निद्रा की कोमल क्रोड़ में सो गये।

नींद आने से वे कुछ मुक्तकेशी की चिन्ता से विरत न हुए। उमापति नींद की हालत में मुक्तकेशी के बारे में सुखमय स्वप्न देखने लगे। उन्हों ने देखा, मानो वे किसी परम रमणीय गिरि-कन्दर में बैठे हैं। वहां सुन्दर स्वर से मलयमारुत प्रवाहित हो रहा है। थोड़ी ही दूर पर निर्झरिणियां

पर्वत की उच्च शृङ्गों से गिर कर घोर गम्भीर शब्द समुत्पन्न कर नीचे को गिर रही हैं, और वायु को वारि कणिका-सम्पृक्त बना कर शीतलता प्रदान करती हैं। जहां वे बैठे हैं वह स्थान श्यामल, समशीर्ष नवदूर्व्वादल से समाच्छन्न है। सामने एक गिरि से निकली हुई पतली सोत सांप की तरह टेढ़ी गति से बह रही है। उस की दाहिनी तरफ़ गगन स्पर्शी नागराज अपने अभ्रभेदी मस्तक को उठा कर सारा संसार देख रहा है। उस के दूसरे पार्श्व में विविध वृक्ष लतादि से भरा वन है। वन में जगह २ लता वल्लरी द्वारा बंधे वृक्ष आपस में मिल कर मण्डप सा बनाये हुए हैं। वहां नाना वर्ण विभूषित कलनादी विहङ्ग गण बराबर सुस्वर का वर्षण कर रहे हैं। पीछे एक छोटा सा वन है। जो सब वृक्ष बड़े यत्न से उद्यान में रोपे जाने पर नहीं फुलाते, वे भी अकातर भाव से वहां विविध राग रञ्जित गन्धमय पुष्प उत्पादन कर रहे हैं। लाखों भौंरे उस जगह इन पुष्पों का मधु पान करने के लिये गुन गुनाते हुए मड़रा रहे हैं। वह जगह बड़ी ही रमणीय है, उमापति को जान पड़ा मानो वह जगह प्रकृति की रमणीयता का भाण्डार है। वे एकान्त चित्त से स्वभाव की उस परम रमणीय शोभा को देख विपुल आनन्द पयोधि के नीर से अभिषिक्त हुए; और बार बार बाह्यज्ञान विरहित होकर स्रष्टा के नैपुण्य और कौशल की प्रशंसा करने लगे। इसी समय अलक्षित भाव से पीछे वाले वन से वनाधिष्ठात्री मोहिनी देवी कुसुम-भार से सज्जित होकर निकलीं। मृदु मन्द पाद विक्षेप से उमापति के पास आ एकाएक उन्हों ने उमापति की दोनों आंखें मूंद लीं। सिहर कर उमापति बोले, "कौन है?"

उन की आंख पर से हाथ हटा कर देवी ने कहा, "छि:! तुम हमें पहिचान न सके?"

उमापति ने सानन्द देखा, देवी और कोई नहीं मुक्तकेशी ही है। विस्मय से पूछा, "मुक्तकेशी! यहां कहां?"

मुक्ता०—और तुम?

उमा०—मैं यहां की शोभा देखने आया हूं।

मुक्ता०—तुम यहां आये हो मैं यही देखने आयी हूं।

उमा०—मैं यहां आया हूं यह तुम से किस ने कहा ?

मुक्ता०—जिसे कहना था उस ने कह दिया।

यह कह उस सुन्दरी ने अपने हृदय को लक्ष्य करने के लिये अंगुली वहां रखी।

उमा०—मुक्तकेशी ! तुम्हारा वेश ऐसा क्यों है ?

मुक्ता०—कैसा वेश ?

उमा०—यह मनोहर पुष्प वेश !

मुक्ता०—क्यों यह वेश क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?

उमा०—अच्छा क्यों नहीं लगता, मैं ऐसा वेश बहुत पसन्द करता हूं।

मुक्ता०—सचमुच ?

उमा०—मैं तुम से कभी झूठ कह सकता हूं ?

"तब ठहरो, तुम्हारा भी ऐसा ही वेश बना देती हूं" कह कर मुक्तकेशी फिर उसी पुष्पवन में चली गयी। उमापति मुक्तकेशी के चमत्कार, भाव और असाधारण सरलता की पर्य्यालोचना करने लगे। इसी समय मुक्तकेशी अपने अँचरे को विविध मनोहर पुष्पों से भर कर ले आयी, और दूब पर उन फूलों को रख उन में से कई एक को लेकर एक पगड़ी तैयार की। वह पगड़ी उमापति के माथे पर रख कर देखा, अच्छी लगती है। खुश हो दूने उत्साह से फूलों के और सब भूषन उस ने प्रस्तुत किये, और एक एक कर के उन्हें उमापति को पहिनाने लगी। निद्रितावस्था में स्वप्न देवी के अनुग्रह से उमापति स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगे। मुक्तकेशी उमापति को सब पुष्पाभरण पहिना कर बोली, "खड़े होवो तो देखूं, कैसा हुआ है ?"

उमापति खड़े हो गये। मुक्तकेशी ने देखा अब फूल नहीं है। बोली, "चार और रङ्गीन फूल लाने से हो जायगा। दो सादी मालाओं के साथ एक रङ्गीन माला खासी दीख पड़ेगी।"

थोड़ी देर बाद कहा, " यह दोष नहीं रहने दूंगा। साध मिटाऊंगी !" इतना कह उस ने अपने गले से एक रङ्गीन माला उतार कर उमापति के गले में डाल दी। उस के इस व्यवहार से उमापति बड़े चमत्कृत हुए।

सुकेशी बोली, " राम राम ! क्या किया ? तुम से बिना पूछे ही तुम्हारे गले में माला डाली। तुम मुझे चञ्चला समझते होओगे। "

उमापति ने बात से इस का उत्तर न दे एक प्रेम-पवित्र आलिङ्गनद्वारा इस का उत्तर देने का विचार किया।

पर वे जैसे ही इस के लिये उठे वैसे हो उन की सुख-स्वप्न का अवसान हो गया। उमापति जिस घर में सोए हुए थे उस की दक्खिन तरफ़ वाली खिड़की एकादम खुली हुई थी। प्रातःकाल के जिस अंश में दिन रात दोनो समभाव से मिले रहते हैं इस समय वही समय है। सूर्य्य आसमान पर नहीं चढ़ आये हैं, किन्तु वे इस समय जिस स्थान पर अधिष्ठित हैं वहीं से उन के तेज का प्रतिविम्ब आ कर पूर्वाकाश के निचले हिस्से को रञ्जित कर रहा है। दो एक कौवे खोंता छोड़ कर दीवार पर आ बैठे हैं और इधर उधर ताक कर बीच २ में बोल उठते हैं। रसोई घर के कूड़े के ऊपर एक कुत्ता सोया हुआ था, वह उठ कर कान फटा २ कर झाड़ने लगा। दो एक कीड़े उस को बहुत तङ्ग किये हुए थे, उन को आक्रमण करने के लिये उस ने अपना मुंह बा दिया। एक उल्लू रसोई घर के छप्पर पर बैठा हुआ भीतर मन से चारो ओर देख रहा था। क्या मन में हुआ वह उठ कर वहां से पास वाले आम के पेड़ पर जाकर लुक गया। पेड़ के जिस डाल पर वह बैठा वह उस के भार से डोलने लगी।

खुली खिड़की से आ कर झर २ हवा उमापति की देह को शीतल कर रही थी; तौ भी उमापति पसीने पसीने हो रहे थे! इसी समय ऐसी ही हालत में उन को नींद टूट गयी। विस्मय से उन्हों ने आंखें खोलीं। आंख खोलने पर जो कुछ देखा उस से उन का विस्मय और भी बढ़ा!

——:·:——

चतुर्थ परिच्छेद।

आशा।

"हृदयं त्वेव जानाति प्रीति योगं परस्परम्।"

—उत्तर राम चरितम्।

नींद टूटने पर आंख खोल उमापति ने देखा, सुन्दरी मुक्तकेशी मुक्त वातायन (खुली खिड़की) के अपर पार्श्व में खड़ी होकर उन्हें देख रही है। ज्यों ही उन्हों ने आंख खोली त्यों ही मुक्तकेशी का चारु चन्द्रवदन देख पड़ा। उस देखने को उन्हों ने सच नहीं जाना। सोचा, मानो वे अब भी स्वप्न ही देख रहे हैं। कुछ देर बाद सन्देह दूर हुआ। मालूम हुआ कि दर्शन झूठा नहीं है; आनन्द की सीमा न रही!

आनन्द से उत्फुल्ल हो बोले, "मुक्तकेशी!"

इस बात को उमापति के मुख से निकलते ही मुक्तकेशी लजा कर चली गयी। रात को सोने जा कर मुक्तकेशी नींद आने की प्रतीक्षा कर रही थी पर नींद न आयी। नींद के बदले उमापति के साथ रहने और उन से बराबर बातचीत करते रहने की कामना, उस का मन डांवाडोल करने लगी। जिस शुभ घड़ी में उमापति ने विजन वन से उपस्थित होकर विपन्ना मुक्तकेशी के लुप्त प्राय सतीत्व का उद्धार कर फिर उसे उस के हाथ में दे दिया, उस घड़ी से मुक्तकेशी के भोले भाले मन में चिन्ता की छाप पड़ गयी है। वह तभी से उमापति ही के ध्यान में लौलीन है। सरला बालिका ने उसी घड़ी से उमापति के किये हुए उपकार के प्रत्युपकार स्वरूप अपना मन दे रक्खा है। इस के पहले मुक्तकेशी कितने ही युवकों—सुन्दर सुकान्ति युवकों—को देख चुकी है; लेकिन उस के हृदय में किसी की भी छाया नहीं है। उन को देखने के लिये वह कभी व्याकुल नहीं होती। तब उमापति का सौन्दर्य्य क्या अतीव रमणीय है कि वह एक घड़ी भी उन्हें नहीं भूलती है? नहीं सो बात नहीं है। उन की अपेक्षा कितने ही अधिक सुंदर युवक उसकी आंखों तले आये होंगे किन्तु उमापति

के मुख पर जो एक अत्याश्चर्य्य सरलता, आह्लाद, उत्साह, सहृदयता, सुधीरता और प्रेम व्यञ्जक रमणीय भाव विराजमान है, उस का जोड़ा मिलना मुश्किल है। किशोरी ने ऐसा कहीं नहीं देखा, इसी से बिना मांगे जीवन का सार-धन दे डाला है।

जगत् में सभी के हृदय में प्रायः सम भाव से एक नैसर्गिक नियम वर्त्तमान है। तुम यदि किसी का उपकार करो तो वह व्यक्ति उस स्वतः-सञ्जात नियम के प्रभाव से अवश्य ही तुम्हें प्यार करने लगेगा और कुछ न कुछ कृतज्ञ अवश्य होगा। हो सकता है कि उस का (मुक्तकेशी का) मन इसी कारण से उमापति की ओर समधिक आकृष्ट हो गया हो। इस के सिवाय उमापति के वदनेन्दु के मुक्तकेशी के मन में आविर्भूत होने का और कोई कारण था कि नहीं, सो तो मानसिक वृत्तियों को बनाने वाले विधाता ही कह सकते हैं। फलतः कब तक उमापति उठेंगे, कब उन की मीठी २ बातें सुन कर कान परितृप्त होंगे, कब उन को देख कर आत्मा कृतार्थ होगी, यही सब सोचते सोचते उस रात मुक्तकेशी सोयी नहीं। बहुत रात बीत जाने पर उस को थोड़ी देर के लिये नींद आई। जब उस की नींद खुली तब उस ने देखा, अब रात बीत चली है। अब सोने का काम नहीं और नींद भी नहीं आवेगी। मुक्तकेशी फिर न सो कर घर से बाहर निकली और चबूतरे पर टहलने लगी। जिस चबूतरे पर वह टहल रही थी उस के बाद ही उमापति के घर की खुली खिड़की थी। मुक्तकेशी ने ऐसा ख्याल भी नहीं किया था कि भ्रमण की सीमा अतिक्रम करने ही पर वे रोक टोक के उमापति की मोहिनी मूर्त्ति देख पड़ेगी। इस लिये उस ने ऐसी चेष्टा भी न की। अनमनी सी हो कर घूमते २ वह एक बार सीमा अतिक्रम कर बहुत दूर तक चली गयी। जाती बेर किसी ओर दृष्टि न की। लौटती बार उमापति के प्रकोष्ठ के मुक्त वातायन के द्वारा भीतर झांका। भीतर जो देखा उस से वहां से हटने की इच्छा नहीं हुई। वह वहां ही खड़ी हो गयी। धीरे २ वातायन के पास जाकर उस के लोहे की छड़ पकड़ एक चित्त से उमापति की कमनीय कान्ति देखने लगी। थोड़ी देर बाद उमापति

की नींद उचटी और जो मिठास भरे शब्द सुनने के लिये मुक्तकेशी व्याकुल थी उस में उसी का नाम उच्चारित हुआ। बस, चटपट वह वहां से सरक गयी। वह सुख छोड़ कर वह अपने मन से कभी वहां से नहीं जाती, पर उस की सहचरी लज्जा ने आ कर जबर्दस्ती उसे वहां से हटा दिया। उस के आगे लाचार हो मुक्तकेशी को हार माननी पड़ी।

उमापति, मुक्तकेशी के चले जाने के बाद सोचने लगे कि क्या सचमुच मुक्तकेशी यहां आई थी? इस समय उठ कर वह क्यों आयी? वह चुप चाप यहां खड़ी २ हंस रही थी। मुझे देख रही थी; क्यों देखती थी? जैसे मैं सदा मुक्ता को देखना चाहता हूं क्या मुक्ता भी उसी तरह मुझे देखते रहना चाहती है? अवश्य! इतना सोच एक लम्बी सांस ले बोले, "यदि स्वप्न ठीक हो, तो मैं आज बड़ा सुखी हूं।"

यह कह बिछावन से उठ बाहर आये।

———:0:———

पञ्चम परिच्छेद।

बिदाई।

"गच्छतिपुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्थितंचेतः।
चीनांशुकमिवकेतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥"

—शकुन्तला।

इस के थोड़ी ही देर बाद उमापति, भट्टाचार्य्य महाशय के पास आये, और उन से बिदा मांग अपने मामा के घर की ओर चले। जाती बेर उन को मुक्तकेशी से भेंट करने की इच्छा हुई। चारो ओर नज़र फेरने पर भी उसे न देख सके। अगर देखते भी तो क्या सब के सामने मुक्ता से मीठी २ बातें करते? नहीं, वह उन से नहीं हो सकता। उस के साथ निर्दोष आलाप करने में सङ्कोच करने का क्या काम है? कारण जो कुछ हो, दो तीन दिन पहले होने से इतना लाज संकोच नहीं होता। पहले

जो उमापति और मुक्तकेशी थी अब भी तो वे वैसे ही हैं, फिर ऐसा क्यों हुआ ? हम लोग कहते हैं अब वे पहले से नहीं हैं। हृदय ही मनुष्य है; वाह्य आकार मनुष्य नहीं है। उन को हृदय अब दूसरे हो गये हैं, इसी लिये पहले के उमापति और मुक्तकेशी तथा अब के उमापति-मुक्तकेशी में बड़ा भेद है।

जो हो, मुक्तकेशी को न देख, उदास मन से उमापति चले गये। घर से बाहर होते ही देखा मुक्तकेशी आ रही है। उमापति ने कहा, "मुक्तकेशी ! कहां गई थी ?"

मुक्ता ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। उस की इच्छा हुई कि जवाब दें, पर नहीं दे सकी। उस को एक बार उमापति की कमनीय कान्ति देखने की इच्छा हुई। उस वासना को सफल करने के लिये ज्यों ही आंख उठाई त्यों ही लज्जा ने उस का हाथ पकड़ कर नज़र नीची कर दी। उमापति के मुंह की थोड़ी छाया ही देखी थी कि इसी समय नज़र नीची हो गई।

उमापति ने फिर कहा, "मुक्तकेशी ! अब मैं जाता हूं।"

मुक्तकेशी ने धीरे से पूछा, "कब आइयेगा ?"

उमापति बोले, "जहां तक ख़्याल करता हूं, आज तीसरे पहर आ सकूंगा।"

"आइयेगा न ?"

"आऊंगा। अच्छा, जाता हूं।" मुक्तकेशी ने कोई जवाब नहीं दिया। उमापति ने कहा, "मुक्तकेशी ! जाता हूं।" यह कह एक एक डग बढ़ाते उमापति चले जाने लगे। मुक्तकेशी भी उसी ओर चली। उमापति ने पीछे फिर कर देखा—मुक्तकेशी ने आंखें नीची कर लीं। देखते २ उमापति मुक्ता की नज़रों से बाहर हो गये। मुक्ता न जाने उस जगह खड़ी हो कर बड़ी देर तक क्या सोचती रही, फिर उदास हो घर चली गयी।

—:o:—

षष्ठ परिच्छेद।

मनोरथ।

व्याहन योग भई अब लड़की।
सुन लो प्यारे! मेरे मन की॥
इस का कर दो व्याह अभी।
नतरु हंसेंगे लोग सभी॥

—अनुवादक।

दो पहर बीत गया है। एक सूनसान कमरे में मुक्तकेशी पीढ़े के ऊपर बैठी हुई अपने बालों को सुलझा रही है। दो एक बाल सुलझाती है तो उलझन पड़ जाती है और गड़बड़ हो जाती है। वह आप ही आप कहने लगी, "दूर! आज नहीं होगा, तीसरा पहर तो हुआ; आने को कह गये थे पर आये नहीं क्यों? शायद न आवेंगे! आवेंगे क्यों नहीं?

सरला मुक्तकेशी कभी बाल सुलझाती है, कभी पगली की तरह बकने लगती है। ब्राह्मण-ब्राह्मणी के बीच दूसरी कोठरी में जो बात चीत हो रही है उसी का कुछ थोड़ा सा अंश पाठकों को यहां पर सुनाया जायगा।

ब्राह्मणी—आहा! कैसा सुन्दर लड़का है! मानों कार्त्तिकेय है! बातें कैसी मीठी २ करता है! जी चाहता है उस का व्याह मुक्तकेशी के साथ कर दूं।

ब्राह्मण—निर्दोष, रूपवान्, विद्वान् और संगति भी अच्छी है; अर्थात् जो सब गुण देख कर व्याह किया जाता है सो सभी उमापति में विद्यमान हैं।

ब्राह्मणी—यह सब बातें छोड़ दो। वह सब खोजने का मुंह नहीं है। आज तक वह सब देखते २ बीता, अब वह सब खोज कर काम न बिगाड़ो। इस पात्र को हाथ से न निकलने दो। मुक्तकेशी कभी की व्याहने योग्य हो चुकी है।

मुक्तकेशी दूसरे घर में बैठी हुई आप ही आप अपना व्याह कर रही

है। अगर वह चाहती तो अपने पिता माता की सब बातें सुन सकती, पर उस का उस ओर ध्यान नहीं है। 'मुक्तकेशी' यह शब्द सुनते ही उस ने समझा कि पिता माता उसी के बारे में बातें कर रहे हैं। उस के सम्बन्ध में जिस तरह की बातें हो रही हैं यह जानने के लिये उस को कौतूहल हुआ। उस ने उन बातों को सुनने के लिये अपने कान खड़े कर लिये।

भट्टाचार्य कहते हैं—वह सब तो जी से उठा ही दिया है। उस के लिये कुछ नहीं कहता ; बात असल यह है कि मैं समाज भ्रष्ट हो कर अपना घर नगर छोड़ इस विदेश में आ बसा हूं। यहां कोई मेरी जाति बिरादरी का नहीं है—और जो बेटी लेगा वह तो सब कुछ जानना चाहेगा, यही विपद है! अपना केवल हरिहर हैं। उन्हीं के सहारे—उन्हीं के भरोसे—मेरा यहां रहना होता है। वे बड़े सज्जन हैं, विशेषत: वे इस बात को भली भांति जानते हैं कि मैं निर्दोष हूं। दुश्मनों के फेर में पड़ कर इस गिरी अवस्था में आ पड़ा हूं। जिन सब कारणों से मुक्ता अब तक व्याही नहीं गयी वह सब भी उन को मालूम हैं, और उन्हीं की राय से यह सब होता है। मुक्ता के व्याह की वयस बीत चली,सो क्या मुझे मालूम नहीं है? दूसरे की बात होती तो कितना कूट पचड़ा निकलता, पर हरिहर ही के डर से किसी को कोई बात कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

ब्राह्मणी—तुम जो कारण बतलाते हो, उस से तो हरिहर भी उमापति का व्याह तुम्हारी कन्या के साथ करने में आपत्ति कर सकते हैं?

ब्राह्मण—नहीं, उन पर मेरा दावा है। मैं खूब जानता हूं, हरिहर 'ना' नहीं कर सकते। यह हम लोगों का अभाग्य था जो पहिले यह नहीं जाना कि हरिहर को ऐसा योग्य और कुंआरा भान्जा है।

ब्राह्मणी—तुम कैसे जान गये कि कुंआरा है?

ब्राह्मण—मैं पहले ही से जानता हूं। विवाह हुआ रहता तो मुझ से छिपा नहीं रहता।

ब्राह्मणी—जो कुछ हो, जिस में इन दोनों का सम्बन्ध हो वही करो।

उस दिन ब्राह्मण-दम्पति ने बेटी के व्याह के सम्बन्ध में मन ही मन यही स्थिर कर रक्खा। मुक्तकेशी ने सब बातें सुनीं। उस के अधर-प्रान्त में ज़रा हंसी देख पड़ी और तुरंत ही चारु चन्द्रानन पर हर्ष और लज्जा की दीप्ति प्रकटित हुई। कैसी लज्जा? सो वही जाने। उस ने मन ही मन सोचा, उस के माता पिता उसे उमापति को देना चाहते हैं—उन्हों ने यही परामर्श किया है। फिर सोचा "नहीं, सब बातें तो नहीं सुन सकी—बहुतेरी बातें समझ में भी नहीं आयीं। नहीं—नहीं—मैं ने सब साफ़ २ सुना है। इस में सन्देह नहीं।" इस बार बालिका ज़रा हंसी। उस के आनन्द के तरङ्ग में पूर्व्वजात-सन्देह बालुका डूब गयी। उस के मन से सारी चिन्ताओं ने विदाई ले ली। केवल आनन्द, आशा और भविष्यत् कल्पना उस के हृदय में घर किये रही। बालिका की दृष्टि में संसार उस समय सुख की खान जान पड़ा। संसार-बोध-विहीना बालिका सब कामों में चारो ओर आनन्द और सरलता की रश्मि देखने लगी।

मुक्तकेशी फिर माथ बांधने लगी; पर वह नहीं हो सका। उस का चित्त इस समय जिस अपूर्व्व चिन्ता में लगा हुआ था उस (चिंता) से उस को हटा कर ऐसे काम में लगाना क्या उस की सी चञ्चल प्रकृतिवाली लड़कियों का काम है? वह काम छोड़ वह दूसरे काम के लिये घर में चली गयी

———
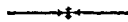
सप्तम परिच्छेद ।

सौकुमार्य्य ।

कवरी भय चामर मृगवान्दर मुखभय चांद अकास ।
हरिनि नयन भय स्वरभय कोकिल गतिभय गज वनवास ॥
—विद्यापति *

हम लोग पीछे बहुत बार लिख आये हैं कि मुक्तकेशी सुन्दरी ह, पर वह कैसी सुन्दरी है यह जानने की सब को उत्कण्ठा हो सकती है। इसी उत्कण्ठा को यथासाध्य निवारण करना ही इस परिच्छेद का उद्देश्य है, किन्तु सौंदर्य्य का प्रकृत परिचय देना कठिन काम है। भिन्न २ देश, जाति और मनुष्यों की सौंदर्य्यरुचि भिन्न २ होती है। जगत् के भिन्न २ देशों और जातियों में विभिन्न प्रकार के सौंदर्य्य-लक्षण प्रचलित हैं। कोई जाति बर्फ़ की सी उजली देह, तांबे के से बाल और बिल्ली जैसी आंखोंवाली रमणियों पर मोहित होती है; कोई छोटे २ पैर, बड़े २ नख और सांप की सी आंखवाली ही पर लट्टू रहा करती है; कोई पतली देह धजा, मोटे २ होंठ और रुखड़े चमड़ेवाली ही स्त्री की प्रार्थना करती है; कोई स्वर्णवर्णा, स्थिरनयना, कृष्ण केशी रमणी के रूप में मुग्ध रहती है और कोई चञ्चल नयनोंवाली तेजी के साथ वादविक्षेप करनेवाली, सुवे की सी नासिकावाली ही कामिनी की देह में अधिक सौंदर्य्य देखती है। फलतः इस विषय में मत की एकता नहीं देख पड़ती। सौंदर्य्य को लेकर जगत् में बड़ा झगड़ा है। सौन्दर्य्य विषयक रुचि में जो विभिन्नता है सो तो है ही, पर सौन्दर्य्य-साधक

---

* प्रसिद्ध लेखक बाबू व्रजनन्दन सहाय वकील—आरा, द्वारा सम्पादित करा कर आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने विद्यापति की सम्पूर्ण कवितावली का सटीक हिन्दी संस्करण निकाला है। हिन्दी प्रेमियों को वह अवश्य देखना चाहिये। अनुवादक।

अलङ्कारों (गहने, कपड़े आदि) की भी भिन्न २ रुचि पायी जाती है। किसी देश में फूल खोंसा हुआ जूड़ा अधिक सौन्दर्य्य का परिचायक होता है, कहीं चिड़ियों के पांख ही बड़े अच्छे माने जाते हैं, कहीं सिन्दूर ही देह की सौन्दर्य्य वृद्धि करता है। रुचि भिन्न २ होने से अलङ्कार [शृङ्गार] की भी पद्धति भिन्न २ हो गयी है। जो कुछ हो, यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि जितनी जातियां हैं सब और २ सांसारिक कामों में एक मत होने पर भी इस बारे में मिलान नहीं खातीं। भिन्न २ जाति और देश की बात तो भिन्न २ आदमियों का भी इस विषय में एक मत नहीं देखा जाता। जिस कारण ग्रन्थकार मुक्तकेशी को सुन्दरी समझते हैं, हो सकता है कि उसी कारण से कोई पाठक उसे समान्य और कुरूपा समझें। इस लिये मुक्तकेशी की देह सब के सामने उपस्थित करना बड़ा कठिन काम है। यदि इस विषय में हम कुछ भी नहीं कहें तो कोई पाठक कहेंगे "मुक्तकेशी विशेष सुन्दरी नहीं है, इसी लिये ग्रन्थकार ने उस की सुन्दरता का वर्णन ही नहीं किया।" कैसी विपद् है! सहृदय पाठक ग्रन्थकार की विपद् देख दुःखित होते हैं कि हंसते हैं? यदि हंसते हों तो अब न हंसें। संसार में पहले पहले इसी सामान्य ग्रन्थकार पर ऐसी विपद् नहीं पड़ी है। दूसरे के सन्तोष के लिये जब जो कोई काम करता है तब ऐसी ही विपद में पड़ता है। ईश्वरानुग्रहशाली, महामहोपाध्याय और असामान्य कवि भी इस विपद् से निस्तार नहीं पा सके हैं। दूसरे की कौन कहे। कवि-कुल-चूड़ामणि कालिदास गौरीरूप-वर्णन के प्रसङ्ग में बहुतेरी बातें लिख कर और विविध प्रकार से गौरी की सौन्दर्य्य वर्णना कर के भी तृप्त नहीं हो सके। वह वर्णनना सब किसी को पसन्द आवेगी कि नहीं, इस विषय में सन्देहयुक्त हो कर उन्हों ने उपसंहार में—

"सर्व्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन,
यथा प्रदेशं विनिवेशितेन।

सा निर्म्मिता विश्वं सृजा प्रयत्ना,
देकस्थ सौन्दर्य दिदृक्षयेव * ॥ ”

यह कह कर अपना प्रसङ्ग शेष किया है। विचारवान् विवेचक पाठक गण स्थिर चित्त हो देखें उस समय उक्त कवि की मानसिक अवस्था कैसी हो रही थी। इसी लिये इङ्गलैण्ड के कवि चक्रवर्त्ती शेक्सपियर ने लिखा है :—

" Beauty is bought by the judgment of the eye,
Not uttered by base sale of chapmen's tongue." †

जो कुछ हो हम लोग इस विपद्मय कार्य्य में प्रवृत्त होवेंहींगी। पर प्रवृत्त हो कर क्या करेंगे? किस सर्व्वजन दृष्ट सामग्री के साथ इस सुन्दरी की तुलना करेंगे? एक वर्त्तमान यशस्वी कवि ने किसी सुन्दरी को पाठकों की गृहिणी की नाईं और पाठिकाओं को दर्पणस्थ छाया की तरह बतलाया है—यह बहुत ही सुन्दर और सहज उपाय है, पर उस में दोष यह आ पड़ता है कि पाठक पाठिकाएं रंज हो सकती हैं, क्योंकि पाठकों की दृष्टि में उन की गृहिणी सी और पाठिकाओं की दृष्टि में उन के जैसी सुन्दरी जगत् में नहीं है। अब हाल में वैसी एक सुन्दरी दिखा देने से पाठकों की चिरसंचित धारणा बदल जायगी, अतः उन को क्षोभ उपजेगा; साथ ही अभिमानिनी पाठिकाओं का हमें विराग भाजन बनना पड़ेगा। इस लिये वैसा करने का कोई काम नहीं, दूसरा उपाय अवलम्बन करते हैं।

---

* जहां जिस चीज़ की ज़रूरत थी वहां उस को सन्निवेश कर ब्रह्मा ने सब उपमा—द्रव्यों के समूह से उसे (गौरी को) बनाया, ताकि एक ही जगह सब सौन्दर्य्य को इकट्ठा देख लेवें।

† सुन्दरता की भली बुरी होने की पहचान आंख से देख कर होती है। यह ऐसी चीज़ नहीं है जिस का कुछ भी वर्णन विचारी जीभ कर सके।

(अनुवादक)

कृष्ण नगर की राज सभा को उज्ज्वल करनेवाले भारत चन्द्र ने " रूप में लक्ष्मी और गुण में सरस्वती कह कर वर्णना को अन्त दर्जे तक पहुंचा दिया है। पर हम लोगों का दुर्भाग्य है कि कभी हम लोगों को लक्ष्मी वा सरस्वती देखने में न आयीं। पाठकों में से किस ने किसे देखा है? असुर-नाशिनी, सहिष-सर्द्दिनी, दश भुजा की प्रतिमा के पार्श्व में लक्ष्मी-सरस्वती की प्रतिमूर्त्तियां हम लोगों ने देखी हैं, अगर वे ही लक्ष्मी-सरस्वती की प्रतिमूर्त्तियां हों तो उन को नमस्कार करते हैं। उन के साथ इस सुन्दरी की तुलना नहीं कर सकते। क्षमा करियेगा।

दूसरा कोई उपाय ही नहीं सूझता। अतएव दो चार सीधी सादी बातों से ही मुक्तकेशी की मूर्त्ति पाठकों के हृदयङ्गम कराने की चेष्टा करते हैं।

मुक्तकेशी की उमर प्रायः सोलह वर्षों की होगी। जिस उमर में स्त्रियां बाल्यावस्था की सीमा अतिक्रम कर यौवन में पदार्पण कर जगत् को आनन्द देती हैं, इस समय मुक्ता की उमर वही है। उस को इस समय सम्पूर्णाव-यवा, सुघटिता, सम्बर्द्धित देह-सम्पन्ना बालिका भी कह सकते हैं। उस की सुन्दरता, मुग्धकारी, प्रीति और आनन्द से भरी है। उसे देखते ही नयन, मन, प्राण, देह सब कुछ उसी को दे डालने की इच्छा होती है। तो भी उस सम्मोहिनी सुन्दरता में इतनी निष्कलङ्क, पवित्र एवम् स्वर्गीय कमनी-यता विराज रही है कि उसे देखते ही सारी दुष्प्रवृत्तियां न जाने कहां छिपा जाती हैं। उसे प्यार करने की इच्छा होती है और उस के हित का कोई काम (कठिन होने पर भी) दुरूह नहीं जान पड़ता। उस के सन्तोष के लिये धधकती आग में कूद पड़ने में भी कष्ट नहीं मालूम होता।

मुक्ता का अंग२ लाज से भरा है। लज्जा सर्वदा उस के शरीर में दीप्ति-वती रहती है। प्रीति और पवित्रता सदा उस के बदन-कमल पर रश्मि-विकीर्ण करती है। आप उसे देखें—उसे आदर और यत्न की सामग्री के सिवाय और कुछ समझने का आप साहस न कर सकेंगे। सदा उसी के निकट रहना और रात दिन उसी का काम करते हुए जीवन पात करना चाहेंगे, किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कभी आप के मन में किसी घृणित अभिलाषा का उद्रेक न होगा।

ऐसा भी सौन्दर्य होता है जो एक बारगी देखनेवाले के चित्त को आक्रमण कर उसे यन्त्रणा देता है—देखते ही मन उन्मत्त हो उठता है और बिना देखे कल नहीं पड़ती। मुक्तकेशी का सौन्दर्य वैसा नहीं है; इसे देख, देखनेवाले अपार आनन्द अनुभव करते हैं और यह सौन्दर्य उन के हृदय पर चित्रित रहता है। वे जहां रहते हैं वहीं उन के मन में यह समुदित हो उठता और उन को आनन्द देता है। सौन्दर्य राशि क्रमशः दर्शकों के चित्त में अलक्षित भाव से प्रवेश करती है, तो भी उन को कष्ट नहीं होता, वे सुख से रहते हैं। मुक्तकेशी को देख सभी के मन में एक प्रकार का आनन्द जन्मता है। वह आनन्द क्यों जन्मता, अथवा उस के शरीर के किस स्थान को देख कर जन्मता है; यह कहना कठिन है। उस के शरीर का अंग २ सुकुमार है। प्रतिभा और सरलता इन यमजभगिनी-द्वय की क्रीड़ाभूमि स्वरूप सुचारु ललाट, घोर काले वर्ण के कन्धे पर लटकते हुए केश-जाल, कुपिता हंसी की सी सुचारु चमत्कार ग्रीवा, उस की शोभा सम्पादन कर रही हैं। अमल धवल लोचन में निविड़ कृष्ण तारा शोभा पाती है, मानो विमल जल में नील कमल लहलहाता हो। आंखें दोनों बड़ी २ और उजली हैं। इन से मुक्तकेशी का पवित्र भाव साफ़ झलकता है।

मुक्तकेशी की भौंहें कान तक तनी हुई; सुन्दर टेढ़ी और बाल से भी काली हैं। नासिका सरल और मुंह के ऐसा है। ओठ सदा परस्पर मिले रहते, हास्यमय और आनन्द देनेवाले हैं; मानों दो निर्दोष बिम्ब फल हों। जिस समय मधुभरी हंसी आ कर इन दोनों को अलग करती है उस समय उन के बीच से कुन्द-विनिन्दित समग्र और निर्मल दो दन्त श्रेणियां दिखाई पड़ती हैं। उस की बाहें बड़ी कोमल हैं, मानो नवनीत (मक्खन) की बनी हों। मनुष्य के शरीर में हड्डी रहती है, पर मुक्तकेशी की बांहें, देखने पर, बिना हड्डी की जान पड़ती हैं। जब घर का काम करने के लिये मुक्तकेशी हाथ घुमाती है उस समय उस के टूट जाने का डर होता है; अथवा जब उस के हाथ पर किसी तरह का भार पड़ता है

मय मालूम होता है या तो इस की बांह टूट कर गिर पड़ेगी नहीं तो एकाएकी इस का हाथ मुरक (मोचखा) जायगा। मुक्तकेशी का शरीर कुछ लम्बा था ; पर सभी अङ्गों के उसी के योग्य रहने के कारण वह लम्बाई भी शोभा ही दे रही थी। उस का शरीर ऐसा सुगठित, ऐसा प्रफुल्ल और वसन्तजात नवलतिका की तरह ऐसा सतेज है कि उस के प्रभाव से मुक्तकेशी इसी वयस में पूर्ण युवती जान पड़ती है।

मुक्ता का कण्ठ-स्वर अतीव सुमिष्ठ है। वह कण्ठ-स्वर एकबार सुन लेने पर बराबर उसे ही सुनते रहने की इच्छा होती है—उसी में कान को लगा रखने की वासना उपजती है। जिस समय निदारुण शोक की बर्छी कलेजे को पार कर जाती और भयानक यातना देती है; जिस समय हिंस्रप्रतिवेशी के हिंसा निवन्धन से मनुष्य का मन विचलित रहता है; जब कभी राजसिंहासन, कभी कुबेर का भण्डार दिखा कर दुराकांक्षा आदमी के मन को चञ्चल कर देती है; जिस समय बहुतेरी सांसारिक यातनाएं इकट्ठी हो मनुष्य को आत्महत्या रूपी महा पाप करने का परामर्श देती हैं; उस समय क्या कोई ऐसा स्वर है जिसे सुन मन की सब यातनाएं दूर हों, एक मुहूर्त्त के लिये संसार सुख का घर मालूम पड़ने लगे, संसार त्याग करने का जी न चाहे, और फिर उस स्वर को सुनने की लालसा उपजे? क्या कोई ऐसा स्वर है? यदि आदमी के स्वर में वैसी क्षमता होना सम्भव हो तो मुक्तकेशी ही के स्वर में वैसी क्षमता हो सकती है। विदुषी न होने पर भी मुक्तकेशी का मन ऊंचा है। उस के हृदय में प्रतिभा है, इसी के प्रभाव से सहज ही में उस ने बहुत ज्ञान लाभ किया है। प्रातःकाल बहुत सवेरे उठने पर और सन्ध्या होने के कुछ पहले जीव, जन्तु, चन्द्र, सूर्य्य, वृक्ष, लता आदि का परिवर्त्तन और प्रकृति की शोभा देख उसे बड़ा आनन्द होता है। उस का हृदय अभिमान से भरा है, ज़रा सा कोई उस की ओर तीखी दृष्टि से देखता है तो उस के लोचन विस्फारित होते और डबडबा जाते हैं। इसी से जीवन भर में मुक्तकेशी ने कोई बुरा काम नहीं किया।

अष्टम परिच्छेद।

खिड़की से।

"Two of the Fairest Stars in all the heaven,
Having some business do entreat her eye,
To twinkle in their spheres till they return."
—Shakespeare (Romeo & Juliet.)

उमापति के मामा हरिहर राय देखने में सांवले और दोहरे बदन के हैं। उन की उमर पचास से कुछ अधिक होगी। उन के माथे के बाल गोल काटे हुए हैं। उमर के अनुसार उन के वालों में बहुतेरे उजले हो गये हैं; उन के बीच लम्बी चुटिया फहराया करती है।

वे बड़े सादे स्वभाव के आदमी हैं। उन के स्वभाव की वजह से बहुतेरे उन पर श्रद्धा रखते हैं। गांव में उन की बड़ी हांवा दाव है। कोई उन से बिना राय लिये अथवा उन के खिलाफ़ कोई काम नहीं करता। हरिहर बड़े सत्सङ्गी आदमी हैं।

उन को कोई बाल बच्चा नहीं है। उन के सन्तान हुई ही नहीं, कुछ यह बात नहीं है—उन को दो लड़के थे, बड़े का व्याह भी कर दिया था। विवाह के कुछ दिन बाद बड़े बेटे को किसी काम के लिये विदेश जाना पड़ा। तब से उस का कुछ हाल चाल नहीं मिला। उस को फिर से पाने के लिये खोज करने में कोई कसर नहीं हुई, किन्तु कहीं भी उस का पता न चला। दारुण शोक के चिन्ह स्वरूप उन की बड़ी पतोहू संसार ही में है। अगत्या हरिहर, मन का दुःख मन ही में दबा कर छोटे लड़के से संसार-यात्रा निर्वाह करने लगे। लेकिन दई मारे काल से उन का यह सुख भी नहीं देखा गया। निर्दय हो उस ने उन की गोद के लड़के को भी अकाल ही में हरण कर लिया। इस के बाद से हरिहर संसारत्यागी वैरागी की तरह रहने लगे। सभी उन को प्यार करते थे, इस कारण और उमापति के अनुरोध से वे फिर संसार में प्रविष्ट हुए हैं। इस समय उमापति ही उन की

सब कुछ हैं। उमापति को वे बहुत चाहते हैं। उसी का मुंह जोह कर वे संसार में हैं; उमापति भी शोकाकुल मामा पर असाधारण भक्ति करते हैं। वे महीने में पन्द्रह दिन मामा के यहां और पन्द्रह दिन अपने घर बिताते हैं। उन्हों ने उभय परिवार को एक करने का भी उद्योग किया था, परन्तु अनेक कारणों से यह अकर्त्तव्य समझ कर नहीं किया। बराबर आते जाते रहने के कारण उमापति गोपालपुर में उत्तम रूप से परिचित और सब के स्नेहभाजन हो गये हैं। पांच दिन हुए उमापति मामा के घर आये थे। आज मामा भगिने एक साथ भोजन करने बैठे हैं। भोजन करते समय नाना प्रकार की बातें हो रही हैं। उस दिन उमापति ने मुक्तकेशी को विपद् से बचाया था, इस के लिये उन की प्रशंसा हुई। भट्टाचार्य्य बड़े भलेमानस वो सीधे सादे हैं, यह बात भी हुई। इतने दिन तक मुक्तकेशी की शादी नहीं को गयी इस का कारण पूछने पर उमापति के मामा बोले, "उस का विशेष कारण है, वह पीछे जानोगे।"

उमापति चुप हो रहे। यही सब बातें होते २ भोजन समाप्त हुआ। तीसरे पहर उमापति घूमने जाकर भट्टाचार्य्य के घर गये। वहां जाकर देखा, भट्टाचार्य्य महाशय घर पर नहीं हैं। ब्राह्मणी ने उन्हें बड़े आदर से बैठाया। वे बैठे सही, पर उन का मन स्थिर नहीं हुआ। क्यों? वे जिस की खोज में, जिस को देखने के लिये यहां आये, वह उन की हृदयेश्वरी कहां है? वे इधर उधर देखने लगे। उस दिन जिस कमरे में सोये और नींद टूटने पर जिस खिड़की के द्वारा मुक्तकेशी का चन्द्रानन उन की आंखों तले आया था, फिर भी उसी ओर देखा। देखी हुई चीज़ की छाया हृदय में प्रवेश करते ही उन के वदन ने शरच्चन्द्र की तरह प्रफुल्ल वेश धारण किया। उन्हों ने अधखुली खिड़की से दो विशाल सहास्य नयन देखे। उन नयनों को देखते ही उमापति ने समझ लिया कि वे मुक्तकेशी के हैं। तन्मय हो कर वे उसे देखने लगे। जितना ही देखते, देखने की लालसा उतनी ही बलवती होती जाती थी। इसी समय उमापति से ठहरने को कह कर ब्राह्मणी किसी काम के लिये उठ कर चली गयी। उमापति बैठे रहे। उन की दृष्टि

खिड़की पर गड़ी रही। नीचे एक कुत्ता सोया हुआ था, वह इस समय एक कारगी भूंक उठा। उस को देखने के लिये उमापति ने दृष्टि फेरी। उसे देख कर फिर खिड़की की ओर दृष्टि की। देखा, खिड़की पहिले से कुछ वेशी खुली हुई है। उस से हो कर प्रफुल्ल, हास्यमयी, सुन्दरी मुक्तकेशी का सम्पूर्ण बदन देख पड़ा। उमापति ने देखा, बदन उच्छासोन्मुखी प्रवाहिनी की तरह हास्यमय है। उमापति ने एक चित्त से खिड़की की ओर दृष्टिनिक्षेप किया। मुंह नीचा हो गया; पर दरवाजा बन्द नहीं हुआ।

इसी समय ब्राह्मणी उमापति के लिये जलपान लेकर आयी। उस ने उमापति को जलपान दिया और मुक्तकेशी को पुकार कर पानी और पान लाने को कहा। थोड़ी ही देर में लाज से सकुची हुई मुक्तकेशी माता की आज्ञा पालने के निमित्त वहां आयी। जल और पान लाकर माता को दिया। माता बोली, "मैं क्या करूंगी ? उमापति को दो।" अवनत मुखी मुक्तकेशी ने उमापति को देने के लिये जल और पान उठाया। दारुण लज्जा-जनित संकोच के मारे जल और ताम्बूल पात्र उस के हाथ से छुट कर गिर पड़ा। स्मित विकशितानना मुक्तकेशी वहां से चली गयी। उस की माता ने कहा "अरे दुर! पगली! इतनी लाज काहे की ?"

वह स्वयं उठ कर पान और पानी लाने चली, और उमापति मुक्तकेशी के सलज्ज मधुरभाव का ध्यान करने लगे।

ब्राह्मणी के आने पर जलपान कर उमापति बड़ी देर तक बैठे रहे। बाद इस के शाम हुई देख घर आये। आती बेर फिर मुक्ता का पवित्र मुख नहीं देख सके।

नवम परिच्छेद ।

विवाह-सम्बन्ध ।

"O, two such silver currents, when they join,
do glorify the banks that bound them in."

———Shakespeare (King John.)

"योग्यंयोग्ये नयोजयेत् ।"

कालिदास भट्टाचार्य्य ने परामर्श के अनुसार दो सप्ताह के बाद हरिहर के निकट विवाह विषयक प्रस्ताव किया । उमापति के मामा ने सादर उस प्रस्ताव का अनुमोदन किया । उस दिन से उन लोगों ने आपस में एक दूसरे को वैवाहिक कहना आरम्भ किया । विवाह होने में किसी ओर कोई रुकावट नहीं रही । जिस दिन प्रस्ताव हुआ था उसी दिन समग्राम आदमी भेज कर हरिहर ने अपनी बहिन, उमापति की मा से सब सम्वाद देकर सम्मति चाही । उमापति की माता बड़ी अच्छी स्वभाववाली पुरन्ध्री * थीं । वे जानती थीं कि स्वामी के न रहने पर अब इस विधवापन में उन के भाई ही उमापति के अभिभावक (रक्षक) हैं । वास्तव में हरिहर ही उमापति के रक्षक थे भी । फिर इस विषय में उमापति की मा अपने भाई के किये हुए प्रस्ताव पर नाहीं क्यों करने लगीं ? उन्हों ने खुशी से अनुमोदन किया । विवाह सम्बन्ध में भावी पुत्रवधू स्वभाव की अच्छी और सुन्दरी हो, यही उन की कामना थी । हरिहर ने कहला भेजा था कि "जिस कन्या के साथ विवाह की बात पक्की हो रही है, विवाह होने पर जब देखो गी तब नहीं निर्णय कर सकोगी कि वह देवी है या मानवी ?" पात्री वयस की कुछ ऊंची है, यह उन्हों ने सुना था । किन्तु इस से वे अप्रसन्न नहीं किन्तु प्रसन्न ही हुईं । कारण जितना बड़ा उन का लड़का हो गया था उसी जोड़ की पुत्रवधू भी आवश्यक थी, और उन को भी बुढ़ौती की उसर थी।

---

* जिस स्त्री के लड़के वाले जीवित हों उस को "पुरन्ध्री" कहते हैं ।

अनुवादक ।

सयानी पतोहू होने से वे संसार के झंझट से बहुत कुछ निस्तार पा सकेंगी। यही सब सोच समझ कर उन्हों ने उस बारे में कुछ आना कानी नहीं की।

विवाह की बात पक्की हो गयी। किसी ओर कुछ खटपट नहीं रही। उमापति को सब बातें मालूम हो गयीं। जिस मुक्तकेशी को वे आराध्य-देवी की तरह मानते हैं, जिस मुक्तकेशी की मधुरता भरी वाक्य-सुधा पान करने के लिये वे प्यासे हो रहे हैं, जिस मुक्तकेशी की अनुपम सुंदरता उन के हृदय-पट पर प्रतिविम्बित हो रही है, जिस मुक्तकेशी के गुण-मंत्र से वे मुग्ध हुए हैं, वही मुक्तकेशी—वही यत्नलभ्या, चारुहासिनी, पवित्रा, मुक्तकेशी—अनायास ही उन की सहधर्म्मिणी हो पृथ्वी ही पर स्वर्ग की सृष्टि करेगी यह क्या उन के अतुल आनंद का कारण नहीं है?

उमापति के सुख की सीमा न रही। कब वह शुभ दिन आवेगा जिस दिन वे अपनी प्राणेश्वरी मुक्ता को निर्व्विघ्न अपनी कह कर जान जुड़ावेंगे!!! उमापति उस सर्व्व सुखप्रद शुभ दिन के समागम के निमित्त जलद विगलित जलधाराकांक्षी सतृष्ण चातक की तरह अपेक्षा करने लगे। भ्रान्त लोग चिन्ता मात्र ही को क्लेश का कारण बतलाते हैं, पर यह उन की भूल है। चिन्ता जो समय २ पर हितकारिणी सखी की तरह चित्त विनोद का प्रधान कारण होती है, इस समय उमापति के चित्त की चिन्ता की पर्य्यालोचना करने पर यह बात साफ मालूम हो जायगी *।

उमापति ने नवद्वीप, नवकुमार के पास यह सब बातें लिख भेजीं। श्यामासुन्दरी को यह सब बातें बतला देने को भी लिखा।

---

* इस चिन्ता में 'आशा' का मधुर रस भी मिश्रित हो गया है। अतः इस में मिठास आगयी है; नहीं तो चिन्ता सदा ही चिता की सी भयङ्करी होती है। अनुवादक।

दशम परिच्छेद ।

शत्रु के हाथ में ।

———"Revenge is now the cud
That I do chew-I'll challenge him."

—Beaumont & Fletcher.

" प्रतिशोधोहि मे व्रतम् "

एक दिन उमापति सन्ध्या के थोड़ी देर बाद, भट्टाचार्य्य, महाशय के घर से व्यस्त हो कर अपने मामा के घर जा रहे थे। आकाश घन घटा से घिर गया था। समय २ पर चपला विद्युद्देवी पति के साथ रङ्ग मचाती अनोखी छटा दिखाती थीं। घोर अंधियारी के मारे सामने का आदमी भी नहीं देख पड़ता था। रास्ते में आदमी का नाम नहीं था। जो लोग घर से बाहर थे वे भी कुसमय में पानी का लक्षण देख घर आ गये। उस समय किस की सामर्थ थी कि राह चले? समय २ पर विद्युत् का आलोक यदि न होता तो उमापति किसी तरह राह नहीं पहचान सकते। मेघ का गर्ज्जन इतना भयानक था कि प्रतिशब्द में बोध होता था मानो सिर पर वज्र गिरा। फलत: जितनी कुछ भयंकरता की सामग्रियां थीं सभी ने इकट्ठी हो कर इस समय प्रकृति को रण-रङ्गिणी वेश में सज दिया था। प्रकृति विद्युतालोक में हंसती थी, किन्तु उस हंसी से भयाकुल आदमियों के प्राण सूखते थे।

जिस समय उमापति भट्टाचार्य्य महाशय के घर से बाहर हुए थे उस समय आसमान का ऐसा रङ्ग नहीं था। देखते ही देखते बादलों ने यह भयानक वेश धारण कर लिया। उमापति दौड़ रहे हैं; और एक मोड़

पार करने ही से घर पहुंच जायंगे। इस जगह एक क्षुद्र वन है। वन के बाद एक बड़ी अट्टालिका है, उस के बाद ही उन के मामा का मकान है।

उमापति बड़ी तेज़ी से चल रहे हैं। अंधियारी में उन की गति रुकने लगी। बिजली की चमक में एकबार बड़ी दूर तक रास्ता देख लेते हैं और तिस के बाद सिर पर पैर रख दौड़ना शुरू करते हैं। इसी मोड़ के बाद उन को आश्रय मिल सकती है, और वे निश्चिन्त हो सकेंगे। इसी समय एक भयानक घटना ने उन का चलना बन्द कर दिया। वे आप ही आप दौड़ रहे थे, इसी समय सामने से किसी ने कहा, "और आगे न बढ़ो; खड़े हो।"

बोलनेवाले की ध्वनि बड़ी भारी और डरावनी थी। एकाएक उस शब्द को सुन कर उमापति सिहर उठे और डर के मारे चुपचाप खड़े हो गये। बोले, "तुम कौन हो?" उसी तरह की डरावनी शब्द से बोलनेवाले ने कहा "वह पीछे पूछना, इस समय मेरी बात सुनो।"

इसी समय एकबार बिजली चमकी। उमापति ने देखा, वन में जिस दुराचारी के हाथ से सुनकेशी को उन्हों ने रक्षा की थी और जिसे एकबार ही जान से न मार कर पेड़ से बांध दिया था—यह वही दुराचारी है। उमापति चौंके। उन्हों ने देखा वह दुष्ट अकेले नहीं है। उसके साथ उसी के से पांच जने और हैं। उन्हों ने सोचा, मेरे ऊपर उस पाखण्डी को बड़ा क्रोध हुआ है। इसी से इस समय प्रतिहिंसा के वशीभूत हो कर मेरे ऊपर आक्रमण किया है। भागने के सिवाय इस समय और कोई उपाय नहीं है। यह सोच वे ज्यों ही भागने को चाहते हैं त्यों ही एक आदमी ने आ कर उन का हाथ

पकड़ लिया। उमापति ने उसे झटका दे दूर कर दिया। इस के बाद ही सबों ने आ कर उमापति को पकड़ लिया। उन को कर्त्तव्याकर्त्तव्य सोचने का अवसर न मिला। उन दुष्टों ने उन का मुंह बन्द कर दिया। वे बन्दी हो गये। उमापति छुटने की चेष्टा करने लगे, पर छूट न सके। उन सबों ने इन के हाथ पैर भी बांध दिये। इस लिये उमापति विवश हो गये। तब वे दुष्ट उन को कान्धे पर उठाकर ले चले।

संसार की यही गति है। यहां कब क्या होगा सो कौन कह सकता है? इस घड़ी जो दृश्य परम प्रीतिप्रद और सुन्दर देख पड़ता है दूसरे क्षण वह ऐसा भी हो जा सकता है कि उस की ओर देखने में भी घृणा हो। इस घड़ी जो मनुष्य आनन्दसागर में गोते लगा आशा के हिलोरे से नाचता हुआ उन्नति के सोते में बहता चला जाता है, वही दूसरे क्षण अदृश्य विपद् के भंवर में पड़ सङ्कटापन्न होता है। संसार की कोई वस्तु नित्य नहीं है। कल सुबह में राम यौवराज्य पद से अभिषिक्त हो कर राजकाज अपने हाथ में लेंगे यह जान आह्लाद से उत्फुल्ल थे। प्रात:काल ही सुना कि राज्य के बदले उन के लिये चौदह वर्ष का वनवास स्थिर हुआ है। राम राजा न हो कर वनवासी हुए। जो स्वामी की नयनानन्द दायिनी हो कर बड़े आनन्द से दिन बिताती थीं, उन्हीं पूर्णगर्भा जानकी के अदृष्ट की गति सहसा परिवर्त्तित हुई। राम ने उन को वनवास दिया। दिगन्त विजयी, त्रिलोक को डरानेवाला, रावण अपने को अमर जान, अप्रतिहत प्रभाव के साथ जो चाहता, करता था। अदृष्ट परिवर्त्तित होने पर वह कुल समेत राम के हाथ से मारा गया। वासव-विजयी मेघनाद ने अपनी प्राणोपमा पत्नी प्रमीला से राम को जीतने के लिये क्षण काल के वास्ते बिदाई ग्रहण की थी; वह जानता था जगत् में उस के सामने खड़ा होनेवाला दूसरा नहीं

है। उस के मन का मान दूर हुआ, उसे फिर घर लौटने को समय नहीं आयी। वारणावत के बड़े कौशल से बनाये हुए लाचागृह में युधिष्ठिरादि पाण्डव जल भुन गये, यही सोच दुर्योधनादि कौरव बड़े आनन्द में थे, परन्तु राज्य पाने के लोभ से उन सबों ने जो यह षड्यंत्र किया था वह व्यर्थ हुआ; उन्हीं पाण्डवों के हाथ उन की जीवनलीला समाप्त हुई। ऐसी अनश्चित एवं अचिन्तित पूर्व घटनाएं संसार में बराबर हुआ करती हैं। पौराणिक विवरण छोड़ कर इतिहास ही पढ़ कर देखो उस में भी ऐसी २ घटनाओं के बहुतेरे प्रमाण देख पड़ेंगे। लाहौर पति अनंगपाल, अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग प्रभृति देशों से सैन्य और साहाय्य पाकर देवद्वेषी महमूद गज़नवी के साथ लड़ने गये। सबों ने ठीक जान लिया, लड़ाई में उन की अवश्य ही जीत होगी, किन्तु अदृष्ट उन के प्रति सुप्रसन्न न हुआ। जीतने के बदले अनंगपाल हार गये। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज ने असंख्य सेना-सामन्त इकट्ठा कर, दृषद्वती नदी के तीर पर खीमें गाड़, गर्व के साथ उस पार टिके हुए महम्मद गोरी को लौट जाने को कहा। पर उस गर्व का क्या परिणाम हुआ? गोरी ने जय पायी और दिल्लीश्वर हार गये। जिस समय दुर्दान्त (?) नवाब सिराजुद्दौला, विपक्षी अंग्रेज़ नायक सुचतुर (?) क्लाइव के साथ अपने सेनापति मोहनलाल को असामान्य युद्धचातुर्य से लड़ते देख अपने खीमे से उन की बार २ प्रशंसा करते थे और अपने जीतने में कुछ भी सन्देह न देख फूले अङ्ग न समाते थे, उस समय सहसा नीचाशय, निर्लज मीरजाफर के बहकाने से उन्हों ने अपने समर-नायक को लड़ाई बंद करने का हुक्म दिया। इसी अवसर में विपक्षियों ने लौटती हुई मुसल्मानी फौज पर धावा किया। बङ्ग का सौभाग्य-सूर्य्य उसी दिन सम्पर्क-शून्य, सुदूर-स्थित क्षुद्र द्वीपवासी अंग्रेज़ जाति का आश्रित हुआ। और सिराजुद्दौला ने जो इतनी आशा की थी उस का फल क्या हुआ? वह शून्य—विलीन हो गई।

इतिहास में ऐसे प्रमाणों का अभाव नहीं है। कोई २ कहते हैं, जो आदमी आगा पीछा सोच कर चलता है उस पर विपद् नहीं आती, हम लोग यह बात नहीं मानते। समय पड़ने पर इसी तरह अनजानी राह से विपद् चुप चाप आ पड़ती है कि उस के हाथ से छुटकारा पाना आदमी के साध्य से बाहर हो जाता है।

पार्थिव पदार्थों के संबन्ध में, भविष्यत् के उदर कन्दर में, कैसी व्यवस्था है, सो कौन जाने? उस के जानने की कोई तरकीब नहीं है और उस के निमित्त पहले से सतर्क रहना एकदम असम्भव है। ऐसी घटनाओं को घटने के पहले ही जान लेने की यदि कोई राह होती तो संसार में बड़ी गड़ बड़ मचती। संसार का बन्धन ढीला हो कर सारी सुव्यवस्थाएं पलट जातीं।

दूसरा खण्ड समाप्त।

तृतीय खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

पिता के घर ।

" And yet a father ! think, I am your child !
Turn not your eyes away-look on me kneeling :
Now curse me if you can, now spurn me off."
————Congreve (Mourning Bride.)

पर तौ भी हो पिता बात सुन लो यह मेरी ।
मन में करो विचार तात ! सन्तति हौं तेरी ॥
विनय करों कर जोरि आंख जनि मोतें मोरो ।
यदि चाहो दो गारि निरादर करो अथोरो ॥

—अनुवादक ।

पद्मावती ने जब सुना कि नवकुमार और श्यामा विपद में पड़ कर नवद्वीप चले गये, तब वे बड़ी कातर हुईं । उन्हों ने विचार कर देखा कि नवकुमार के बिना सप्तग्राम में रहना व्यर्थ है । नवकुमार के फिर सप्तग्राम लौट आने के पहले उन्हों ने आगरे से हो आना चाहा । यह सोच, सप्तग्राम-वाले घर का सब बन्दोबस्त कर वे आगरे चली गयीं ।

अपनी पुस्तक के इस अंश में पद्मावती को हम लोग उस की मुसल्मानी नाम 'लुत्फुन्निसा' से पुकारेंगे । लुत्फुन्निसा फिर मुसल्मानों के साथ रहने चलीं । तब की लुत्फुन्निसा और अब की पद्मावती में बड़ा फ़र्क़ है । जिन सब विद्याओं के प्रभाव से लुत्फुन्निसा ने एक बार भुवन-मोहन जहांगीर के मन में घर किया था, इस समय वे सब विद्याएं निस्तेज

हो गयी हैं। उन में पहिले की सी चपलता नहीं है। उन सब घृणित मनोवृत्तियों को उन्हों ने जान बूझ कर विनष्ट कर दिया है। जिन्हों ने उन को पहले देखा था वे लोग अब उन्हें देख चौंकेंगे। उन का मन एक बार ही बदल गया है। नीति और ज्ञान के अभाव से उन का जो हृदय पत्थर की अपेक्षा भी नीरस और सूखा हो गया था, इस समय वही नीति-सुधा से अभिषिक्त हो गया है। जिन सब घृणित जघन्य मनोवृत्तियों ने उन को रमणी कुल का कलङ्क बना दिया था, उन सबों के बदले में विविध सद्गुणों ने प्रवेश कर उन्हें इस समय पूजनीया देवी सी बना दिया है। वे अब तक अज्ञता और मोह के कारागार में बन्दिनी थीं। अब उन्हों ने ज्ञान और विवेक के राज्य में स्वाधीनता लाभ की है। लुत्फुन्निसा अब तक धर्म-विगर्हित सामान्य सुख में प्रमत्त थीं, अब उन्हों ने धर्मसङ्गत पवित्र सुख का स्वाद पाया है। वे अब तक अपने आप पर मोहित होती थीं, अब अपने पर आप ही बड़ी घृणा करती हैं। वे अब तक समग्र भारतवर्ष को अपने पैरों तले रखने और बादशाह को अपना गुलाम बनाने की अभिलाषिणी थीं, अब दरिद्र ब्राह्मण की चरणाश्रिता होकर फूस की झोंपड़ी में रहने को तैयार हैं। इन्हीं सब कारणों से कहते हैं, अब लुत्फुन्निसा वह नहीं रहीं। उन्हों ने पवित्र सुख का पता पा लिया है, इस का स्वाद पाया है, और उसे हाथ में भी कर लिया है। नवकुमार ने उन के साथ पत्नीभाव से बात चीत की है, नवकुमार उन के लिये रोये हैं, नवकुमार उन के दुःख से दुःखी हुए हैं। अब उन को जगत् में चाहिये क्या? नवकुमार का विशुद्ध प्रणय ही उन की प्रार्थित वस्तु थी, उसे उन्हों ने लाभ किया है। इसलिये उन की सब आशाएं पूरी हो गयीं, उन की सब चाह मिट गयी, वे और कुछ नहीं चाहतीं। तब फिर लुत्फुन्निसा आगरे क्यों जाती हैं? वहां उन को क्या काम है? भोग-सुख को तो उन्हों ने तिलाञ्जलि दे ही दी है, तब फिर क्यों? संसार में स्नेह-ममता कौन छोड़ सकता है? जो यह छोड़ सकता है उस के हृदय में प्रणय कभी नहीं उपज सकता। लुत्फुन्निसा का हृदय इस समय प्रणय से परिपूर्ण है। सुतराम् उन का हृदय स्नेह-ममता

प्रकृति कोमल वृत्तियों से पूर्ण है। उन्हीं कोमल वृत्तियों ने इस समय उन को आगरे की ओर आकर्षित किया है।

आगरे आ कर लुत्फुन्निसा पहले अपने पिता के घर गयीं। वहां पदार्पण करते उन को बड़ा कष्ट हुआ। जिस समय लुत्फुन्निसा की उमर १८ वर्षों की थी उस समय उन की चालचलन बड़ी ही खराब हो गयी थी। इसी से उन के पिता ने विरक्त और लज्जित होकर उन को घर से बाहर कर दिया। उस समय लुत्फुन्निसा भी उन के निकाल देने से असन्तुष्ट नहीं हुईं। "अब निश्चिन्त इन्द्रिय-सुख लूट सकूंगी" यही सोच वे उस बात से बहुत प्रसन्न हुईं। किन्तु आदमी का मन सदा एक सा नहीं रहता। बुरे को अच्छा, और अच्छे को बुरा होते देर नहीं लगती। लुत्फुन्निसा इस समय बुरी से अच्छी हुई हैं, इसी से फिर पिता-माता से भेंट करने की इच्छा जन्मी है। उन के पिता ने उन को घर से निकाल दिया था सही, किन्तु बेटी कब कहां रहती है इस की खोज खबर वे बराबर लिया करते थे। इधर एक वर्ष से लुत्फुन्निसा कहां रहती हैं, यह उन को मालूम नहीं हुआ। पाठक जानते हैं इतने दिन तक वे सप्तग्राम में थीं।

रोते २ लुत्फुन्निसा घर के भीतर गयीं। देखा, पिता रामगोविन्द घोषाल बैठे अपनी स्त्री से न जाने क्या बातें कर रहे हैं। बहुत दिनों के बाद प्रियतमा पुत्री को फिर देख वे दोनों बड़े आनन्दित हुए। स्नेह, लुकाने छिपाने की चीज़ नहीं है। स्नेहभाजन यदि दोषी हो तो उस पर क्रोध होता है। उस का दोष छुड़ाने के लिये उपर्युक्त दण्ड देने की प्रवृत्ति होती है, परन्तु इसी से स्नेह कुछ लुप्त नहीं हो जाता। बहुत दिनों का स्नेह क्या एक दिन में लुप्त हो सकता है? विशेषतः अपत्य-स्नेह की ममता बड़ी विलक्षण है। सन्तान को जनक-जननी डांटते डपटते हैं सही, पर मन ही मन निरन्तर उन के कल्याण की कामना करते हैं। इसी से स्नेह-धर्म के वश हो, घोषाल और उन की स्त्री लड़की को देख आनन्दित हुईं। लेकिन इस से लड़की कहीं ढीठ न हो जाय,

यही सोच उन्हों ने वह आनन्द विशेष रूप से प्रकाश नहीं किया। उन को और २ बातें कहने का मौका न देख कर लुत्फुन्निसा रोते २ पिता के पैरों पर गिर पड़ीं और उन के चरणों पर माथा रख चुप चाप रोने लगीं। उन के पिता-माता चौंक पड़े। आठ नौ वर्षों से लुत्फुन्निसा घर से निकाल दी गयी थीं, इस बीच में उन्हों ने एक बार भी पिता माता से भेंट नहीं की और न भेंट करना चाहा। आज इतने दिनों के बाद उस लड़की का भाव इस प्रकार क्यों बदल गया, यह न जान कर उन के मा-बाप विस्मित हुए। घोषाल ने बाँह पकड़ कर लुत्फुन्निसा को उठाने की चेष्टा की। लुत्फुन्निसा उठ कर उसी प्रकार रोते २ अपने पिता से क्षमा-प्रार्थना करने लगीं।

बड़ी देर बाद रामगोविन्द घोषाल ने पूछा, "तुम इतने दिनों तक कहां रही ?"

लुत्फुन्निसा उठ बैठीं और पृथ्वी की ओर दृष्टि डाले इतने दिनों के भीतर जो जो घटनाएं हुईं उन्हें ज्यों की त्यों कह सुनाया। सुन कर उन के मा-बाप अवाक् हो गये। उस लुत्फुन्निसा की मति ऐसी हुई है, यह जान कर वे लोग इतने सन्तुष्ट हुए कि जिस का ठिकाना नहीं।

घोषाल ने कहा, "लुत्फुन्निसा! इस समय नहाओ खाओ। तुम्हारी बातें सुन कर मुझे इतनी खुशी हुई है कि मैं कह नहीं सकता। ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करें।"

इस के बाद लुत्फुन्निसा मा के साथ बातें करने लगीं। कुछ देर के बाद रामगोविन्द बाहर चले गये।

दो दिन के बाद घोषाल अपनी स्त्री और बेटी को पुकार कर बोले, "पद्मा! तुम्हारी जैसी प्रवृत्ति जन्मी है और तुम्हारे स्वामी जो तुम्हें ग्रहण करने को राजी हुए हैं यह हम लोगों के अतुल आनन्द का विषय है। नवकुमार की अवस्था वैसी कुछ अच्छी नहीं है। तुम को कभी सामान्य कष्ट भोग करने का भी अभ्यास नहीं है, तुम बहुत दुःख भोगोगी।"

लुत्फुन्निसा ने कहा, "पितः! जीवन खूब राजभोग कर के बिताया है सही, किन्तु अब उस के न रहने से कुछ क्षोभ नहीं है। केवल उन सब अज्ञानकृत कार्यों का स्मरण कर दारुण यन्त्रणा पाती हूं; बस इतना ही। अब पाप का बोझ नहीं सहा जाता, यह जीवन जलती अग्नि में त्याग करना ही ठीक है।"

बेटी के मन की अवस्था का अनुमान कर, घोषाल सन्तप्त हुए। बोले, "तो अब क्या स्थिर करती हो?"

पद्मा०—स्वामी के पद की सेवा में ही जीवन त्याग करूंगी।

घो०—तुम मुसल्मानिन हो, वे तुम्हें कैसे ग्रहण करेंगे?

पद्मा०—पहले ही कह चुकी हूं आप के आशीर्वाद से स्वामी ने इस बार दासी के प्रति अनुग्रह किया है। इस समय मैं आप लोगों से विदा मांगती हूं।

घो०—सुना है, नवकुमार ने फिर विवाह किया था; वह स्त्री कहां है?

पद्मा०—वह पानी में डूब गयी।

घो०—जान कर?

पद्मा०—नहीं, दैवात्।

घो०—नवकुमार के परिवार में अब और कौन २ हैं?

पद्मा०—कुछ दिन हुए मेरी सास का परलोक हो गया। मेरे जानते आप यह बात नहीं जानते। मेरे स्वामी की बड़ी बहन मा के मरने पर काशीवासिनी हुई हैं। इस समय घर में केवल मेरे स्वामी और उन की छोटी बहन हैं।

घोषाल चिन्तित की तरह निस्तब्ध हो रहे। पद्मा उन की एकमात्र सन्तान है, छोड़ कर जाने के लिये विदा मांगती है, यह जान उन को कष्ट हुआ। वे बहुत देर तक अन्यमनस्क से होकर बोले, "लुत्फुन्निसा! तब तक कुछ दिन हम लोगों के पास रहो। उस के बाद जो होगा देखा जायगा।"

यह कह रामगोविन्द घोषाल अन्तःपुर से निकल आये। लुत्फुन्निसा और उन की मा बैठी तरह २ की बातें करने लगीं।

द्वितीय परिच्छेद।

जगत् की ज्योति नूरजहां।

दूसरे दिन बड़े तड़के लुत्फुन्निसा बादशाह से मुलाकात करने के लिये चलीं। आज उन्हों ने अपनी मुसल्मानी पोशाक पहिर ली, पर बहुत वेश-भूषा नहीं की। जिस उद्देश्य के लिये वेश-भूषा की इच्छा होती है वह उद्देश्य उन के मन से एक बार ही तिरोहित हो गया है।

लुत्फुन्निसा बादशाह के जनाने महल में गयीं। किसी ने रोक टोक नहीं की। बहुत दिन के बाद फिर उन को आयी देख दरवान के सिवा औरों ने भी सलाम कर रास्ता छोड़ दिया। वे सब उन का बदला हुआ भाव देख विस्मित होने लगे। जो लुत्फुन्निसा पहिले संसार के उत्तम २ रत्नों से अपने को सज्जित रखती थीं, अच्छे २ चमकीले कीमती कपड़े पहिरा करती थीं, उन की देह पर एक भी गहना नहीं—पहिरने का कपड़ा भी उतना अच्छा नहीं! उन के विस्मय का एक और भी कारण था—पहिले जो लुत्फुन्निसा बादशाह जहांगीर बहादुर के साथ बराबर प्रीतिभरी बातें कर उन को कृतार्थ किया करती थीं वे अब नौकर चाकरों से उन के चित्त का हाल पूछती चलती हैं, और उन के किये हुए सम्मान का प्रतिसम्मान भी जनाती हैं।

लुत्फुन्निसा ने सुना था, वर्द्धमान के सूबेदार शेरअफ़ग़ान की पत्नी मेहरुन्निसा इस समय 'नूरजहां' (जगज्ज्योति) नाम से बादशाह की प्रधान

महिषी हुई हैं*। इस समय लुत्फुन्निसा को मालूम हुआ है कि मेहरुन्निसा केवल 'नूरजहां' और 'प्रधानामहिषी' इन्हीं नामों से सन्तुष्ट नहीं हुईं, वरन् उन की सुख-स्वच्छन्द के लिये ऐसे २ नियम हुए हैं जिन की अधिकारिणी इन के पहिले और कोई राजमहिषी नहीं हुईं थीं। वे अद्वितीय रूपवती तो थीं ही, लुत्फुन्निसा ने सुना कि केवल रूप ही में नहीं गुण में भी नूरजहां अद्वितीया हैं। उन के प्रयत्न से बादशाह के महल में बहुतेरे अच्छे २ परिवर्त्तन किये गये हैं। पहिले सर्व्वत्र विशृङ्खलता रहती थी, अब सो नहीं है—सब काम अच्छी तरह से होते हैं। केवल घर ही में नूरजहां को धाक दाब रहती है सो बात नहीं है, वरन् महल के जिस कमरे में वे रहती हैं वहां से लेकर मुगल-साम्राज्य की शेष सीमा-पर्य्यन्त सब स्थानों में उन का असीम क्षमाशाली हाथ प्रकाश पाता है। जहांगीर नाम भर बादशाह हैं। राज्यशासन का भार एक तरह से नूरजहां ही पर आ पड़ा है, यह कहने से भी चल सकता है। आजकल नूरजहां की आज्ञा और सम्मति बिना कोई विधि-व्यवहार प्रचलित नहीं होता। सारांश यह कि उन की क्षमता असीम है। सभी उन की महिमा स्वीकार करते और उन का गुणगान करते हैं।

लुत्फुन्निसा, मेहरुन्निसा को लड़कपन ही से जानती थीं—उन का भूलोक-दुर्लभ रूप भी उन्हों ने देखा था। उस साधारण रूप ने युवराज सलीम (वर्त्तमान जहांगीर शाह) के नयनों को आकर्षित किया है, यह भी वे जानती थीं—मेहरुन्निसा सब तरह से बेगम होने के क़ाबिल हैं, यह भी वे समझती थीं। इस समय उन के ऐसे गुणों को सुन कर वह विस्मय के साथ सोचने लगीं। भगवान् ने जिस ऊंचे दर्जे पर बैठाने लायक रूप उन्हें दिया है, वैसे ही गुणों से उन का हृदय भी भर दिया है। लुत्फुन्निसा बड़ी विस्मित हुईं और नूरजहां की बहुत प्रशंसा करने लगीं।

इस के सिवा लुत्फुन्निसा ने यह भी जाना कि नूरजहां ने स्वामी के ऊपर असाधारण आधिपत्य विस्तार किया है। जो जहांगीर रोज एक

* भारत के इतिहास में जहांगीर के राजत्व का विवरण पाठ करने से इस घटना का पूरा हाल जाना जा सकता है।

पहर दिन चढ़े बिना बिछावन से नहीं उठते थे, नूरजहां की असामान्य शासन के प्रभाव से अब वे रोज़ सूर्य्योदय के पहले ही उठ जाते हैं। जो जहांगीर रात-दिन विलास-लालसा * और भोगसुख में निरत रहा करते थे अब वे एक दिन निर्दिष्ट समय को ही आमोद में बिताते हैं। बाक़ी समय उन को राज्यचिन्ता में बिताना होता है। जो जहांगीर सदा शराब के प्याले को अपने मुंह से लगाये रह कर सुखी होते थे, पत्नी के प्रखर शासन से उन्हों ने एक प्रकार पानदोष छोड़ ही दिया है, यह कहने से भी चल सकेगा। लुत्फुन्निसा ने सोचा, ऐसी सम्भावना नहीं थी कि जहांगीर के ये सब दोष कभी किसी के द्वारा, किसी उपाय से दूर होंगे! जिस रमणी की चेष्टा से जहांगीर का चरित्र ऐसा उन्नत हो गया, वह मानवी आकार में हो देवी है।

इस के अतिरिक्त मेहरुन्निसा बड़ी मिठबोल हैं, उन का स्वभाव बड़ा मिलनसार है। ऊंचा दर्जा पाकर स्वभावतः मन में एक दुर्दम-नीय शत्रु (अभिमान) का आविर्भाव होता है। नूरजहां उस दोष से एक बारगी अलग हैं। सब के साथ उन का समान भाव—सब के सुख की ओर उन की समान दृष्टि रहती है। नूरजहां यह नहीं चाहतीं कि मुग़ल-साम्राज्य में कोई दीन दरीद्र दुःखी वा मूर्ख रहे। उन के इस स्वर्गीयगुण के लिये सारी प्रजा उन के दीर्घजीवन और कुशल की कामना करती और खुले मुंह उन की प्रशंसा करती है। उन को देखे चाहे नहीं, पर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी उन को चाहते हैं।

यह सब सुन कर लुत्फुन्निसा बहुत ही आनन्दित हुई। उन्हों ने मन ही मन सोचा, विधाता ने जिन सब गुणों से मेहरुन्निसा को विभूषित किया है उन्हीं के योग्य पद भी उन्हों ने पाया है। उन का 'नूरजहां' नाम सार्थक हुआ है।

---

* इसी कारण पाश्चात्य ऐतिहासिकों ने जहांगीर को Pleasure-seeker अर्थात् 'विलास-लोलुप' नाम से अभिहित किया है। (अनुवादक)

पास की एक लौंडी उन को यह सब बातें बतला रही थी। लुत्फु-न्निसा ने उसे पूछा—

"इस वक्त बादशाह कहां हैं ?"

दासी ने उत्तर दिया, "अब पहले की सी बात नहीं है। आजकल आफ़ताब उठने के बाद से एक पहर दिन चढ़े तक दरबार लगता है। बादशाह इस वक्त वहीं होंगे।"

लुत्फुन्निसा ने देखा, बिना दरबार बरख़ास्त हुए बादशाह से भेंट नहीं होगी। उन्हों ने फिर पूछा—

"नूरजहां कहां हैं ?" उंगली उठा कर दासी ने नूरजहां का प्रातर्गृह दिखला दिया।

उन से भेंट करने के लिये उन्हों ने दासी के द्वारा उन के पास खबर भिजवायी। तुरत ही भारत-साम्राज्याधिश्वरी, अद्वितीया, रूप-यौवन-गुण सम्पन्ना, नूरजहां ने स्वयं आ कर बाल-सहचरी लुत्फुन्निसा का हाथ धर लिया और उन को साथ ले अपने प्रकोष्ट में चली गयीं।

तृतीय परिच्छेद।

प्रतियोगिनी के पार्श्व में।

"चन्द्रेन चारु चरितेन विकासितं सत्।
सोऽङ्कुचितं भवति किङ्कुमुदन्तमोभिः॥"

—विदग्धमुखमण्डनम्।

लुत्फुन्निसा के बैठ जाने पर मेहरुन्निसा भी बैठीं। एक समय ऐसी सम्भावना थी कि लुत्फुन्निसा ही बादशाह की प्रधानामहिषी होंगी;

अब वह स्थान नूरजहां ने अधिकृत कर लिया है। एक समय लुत्फुन्निसा ने सङ्कल्प किया था, अपनी उन्नति की राह में वे और कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहने देंगी। एक समय लुत्फुन्निसा ने राज्य की गति पलटने की कल्पना की थी—उन्हों ने युवराज सलीम के बदले, उन को राजपूत-पत्नी के लड़के शाह्रियार को मुग़ल-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठाना चाहता था—एक बार और २ बेगमों ने सोचा था कि कदाचित् उन लोगों को लुत्फुन्निसा के अधीन होकर दिन बिताने पड़ेंगे। और अब? अब लुत्फुन्निसा उस सुख को तृणवत् समझती हैं। उस सुख को अकेले भोग करने की इच्छा तो दूर रहे, उस के संस्पर्श की भी अब उन को प्रवृत्ति नहीं है। उन्हों ने राज़ी खुशी से अपने सोचे और चाहे हुए स्थान पर मेहरुन्निसा को बैठने दिया है। अपनी कल्पना उन्हों ने मन ही में विलीन कर दी है। राजकीय कामों से वे आप ही अपनी इच्छा से अलग हो गयी हैं।

आज मेहरुन्निसा और लुत्फुन्निसा परस्पर आमने सामने बैठीं। आज बहुत दिनों के बाद भेंट हुई है। इतने दिनों के भीतर कितने ही रद बदल हुई! शेर अफ़ग़ान की जोरू मेहरुन्निसा बादशाह जहांगीर की प्रधानामहिषी "नूरजहां" हुई। और जिन के लिये वह स्थान स्थिर हुआ था वे क्या हुईं?—वे सब छोड़छाड़ कर जीवन की और ही गति अन्वेषण कर रही हैं।

लुत्फुन्निसा के चेहरे पर खुशी झलक रही है। संसार की प्रकृति के अनुसार सब घटनाओं को मिलान कर देखने से लुत्फुन्निसा की खुशी देख आश्चर्य हो सकता है, पर विचार कर देखने से नहीं होगा। उन के मन की आशा, भरोसा, आकांक्षा, कल्पना प्रभृति सब बदल गयी हैं। उन की दुर्दमनीय मनोवृत्तियां इस समय कहीं लुप्तप्राय हो गयी हैं। बहुत दिनों तक असत्पथ में विचरण करने से सारी सत्प्रवृत्तियों का समूल निर्मूल होना ही सम्भव है, उन का भी प्राय: वही हुआ था। किन्तु सहसा ज्ञान-वारि के द्वारा गतप्राय सत्प्रवृत्तियों के मूल को सींचने से वे सब पुन: अङ्कुरित हो आयी हैं। आग में जलाने से धातु गल जाती है, उस का असार

और बेकाम अंश एक बार ही भस्म हो उड़ जाता है एवं मूल्यवान् और प्रयोजनीय अंश बच जाता है। उसी तरह लुत्फुन्निसा के हृदय में अनुताप की आग ने प्रवेश कर उसे गला दिया है और उन की अपकृष्ट मनोवृत्तियों को निस्तेज कर, उन की साधु और कल्याणकरी वृत्तियों को समुत्तेजित किया है। उन की प्रकृति यदि पहले की सी रहती तो उन की बालसखी मेहरुन्निसा जो भारत के आधे सिंहासन की अधिकारिणी हुई हैं, यह प्राण रहते तो कदापि नहीं सह सकतीं। लेकिन अब और उन का सिंहासन की ओर लक्ष्य नहीं है, अब उन को जहांगीर का हृदय हरण करने की इच्छा नहीं और उन की अब उच्चपद की ओर दृष्टि नहीं है। उन का जो लक्ष्य, चेष्टा और आकांक्षा थी वह वे पा गयी हैं। इस घड़ी वे मेहरुन्निसा के अभ्युदय से आनन्दित हैं। जिस विधाता की कृपा से उन्हों ने इन सब मोहजालों से सहज ही निष्कृति पायी है वे इस समय उस सर्व-नियन्ता को हृदय से धन्यवाद दे रही हैं। वे पहले मेहरुन्निसा को बुरे भाव से देखती थीं, किन्तु इस घड़ी उन की दृष्टि पवित्र है। उस से स्नेह, माया और मंगलेच्छा ही प्रगट होती है। वे मेहरुन्निसा को अपनी प्यारी बहन समझती हैं—मेहरुन्निसा को वे अपने सुख और उन्नति का कारण विवेचना करती हैं। यदि मेहरुन्निसा का रूप यौवन युवराज की आंखों तले नहीं पड़ता और उसे देख यदि युवराज मेहरुन्निसा पर आसक्त न होते तो उसे समय उन की आशा का रास्ता बड़ा सहज हो जाता, बल्कि वे क्रमशः अधिकतर मोहजाल में जकड़ जातीं और कदाचित् उस प्रलोभन को त्याग नहीं कर सकतीं। किन्तु उस के विपरीत ही घटने से सम्राट् के राजमन्दिर के सुखरूपी कारागार से छुटना उन के लिये सहज हो गया। अतएव मेहरुन्निसा उन की परमोपकारिणी हैं, यह लुत्फुन्निसा समझ रही हैं। वे इस के लिये मेहरुन्निसा के निकट कृतज्ञता स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं। वस्तुतः लुत्फुन्निसा के हृदय में अब कुटिलता का लेशमात्र भी नहीं है। उन का हृदय सरलता और पवित्रता से पूर्ण हो गया है। लुत्फुन्निसा के खुश होने का और भी एक कारण है। वे नूरजहां की असामान्य

गुणों को सुन कर विमोहित हुई हैं। वे सोचती हैं, नूरजहां को सी गुणवती रमणी बादशाह को प्रधानामहिषी होने को उपयुक्त पात्री है। नूरजहां का यह पद पाना मानो मणि-काञ्चन का संयोग होना है। लुत्फुन्निसा ने सोचा अगर मेहरुन्निसा के बदले वे इस दर्जे को पातीं तो क्या अच्छा होता? नहीं। नूरजहां के द्वारा जो अच्छे २ काम किये जा रहे हैं सो वे कभी नहीं कर सकतीं। सुतराम् मेहरुन्निसा प्रधानामहिषी हुई हैं, अच्छा ही हुआ है।

नूरजहां ने लुत्फुन्निसा की शारीरिक, मानसिक और वर्त्तमान अवस्था आदि के बारे में बहुत सी बातें पूछ कर सब हाल जान लिया। लुत्फुन्निसा ने भी बाल-सहचरी मेहरुन्निसा से कितनी ही बातें पूछीं। दोनों बड़ी देर तक इसी प्रकार अनेक प्रकार की बातें कर सुख लाभ करने लगीं, इसी बीच सम्वाद आया—बादशाह दर्बार बर्ख़ास्त कर महल में आये हैं। प्रिय सखी से विदा मांग लुत्फुन्निसा बादशाह से भेंट करने चलीं।

चतुर्थ परिच्छेद।

बादशाह के पास।

"नहि प्रफुल्लं सहकार मेत्य।
वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली॥"

——रघुवंशम्।

बादशाह जहांगीर के पास पहुंच कर लुत्फुन्निसा ने उन को बड़े आदर से अभिवादन किया। बहुत दिन बाद लुत्फुन्निसा को फिर देख बादशाह बहुत खुश हुए और खुशी के साथ लुत्फुन्निसा से कुशल सम्बन्धी प्रश्न पूछने लगे।

उस के उत्तर में लुत्फुन्निसा ने कहा, "बादशाह सलामत की दुआ से एक तरह सब कुछ अच्छा ही है। आप की राय के मोताबिक़ इस बदबख़्त ने फिर शादी की है, इसलिये वह अब घर की बहू है।"

विस्मय के साथ बादशाह बोले, "लुत्फुन्निसा! इस दिल्लगी का क्या मतलब?"

लु०—दिल्लगी नहीं, यह बात सच है। लुत्फुन्निसा इस वक्त हुजूर के साथ दिल्लगी करने लायक नहीं है।

बाद०—सचमुच? किस के साथ तुम्हारी शादी हुई है?

लु०—नयी शादी नहीं है। जो शादी पहले हुई थी इस बदबख्त की बदकिस्मती की वजह से वह इतने दिनों तक छिपी रही। अब बड़ी कोशिश से मेरे पहले शौहर ने मुझे अपने पैरों तले जगह दी है।

पहले बादशाह 'हा हा' कर के हंसते रहे। उस के बाद गम्भीर हो बोले, "लुत्फुन्निसा! तब क्या इतने दिन बाद तुम मुझे भूल जाओगी?"

लुत्फुन्निसा चुप ही रहीं।

बाद०—तुम्हारे शौहर को और भी कोई बीबी है?

लु०—थीं, पर अब वे मर गयी हैं।

बाद०—तुम्हारे शौहर का नाम क्या है?

लु०—नवकुमार बन्द्योपाध्याय।

बाद०—वे सप्तग्राम में रहते हैं न?

लु०—जी हां!

बाद०—वे देखने में कैसे हैं?

लु०—खुबसूरत हों या बदसूरत ही क्यों न हों पर इस लौंडी के लिये तो वे मर्दों में सब किसी से बढ़ कर खुबसूरत और आला हैं।

बाद०—वे अमीर हैं?

लु०—जहांपनाह! मेरे शौहर ज़ात के ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण ज़ात बड़ी गरीब होती है। वे दौलतमन्द तो नहीं हैं, लेकिन खाने पहनने लायक थोड़ी बहुत ज़र-जायदाद है।

बाद०—लुत्फुन्निसा! तब क्या इतने दिन के बाद एक बार ही हम लोगों की मुहब्बत छोड़ देओगी?

लुत्फुन्निसा ने कहा, "भूलना तो मुश्किल है।"

बाद०—तब क्यों लुत्फुन्निसा? तुम्हारा मैं ने क्या क़सूर किया जो इतने दिन की जान पहचान, इतने दिन की मुहब्बत, सब भूल रही हो? सब तरह की गांठ खुला कर छोड़े चली जा रही हो?"

लु०— जहांपनाह! रञ्ज न मानिये, मेरा इस तरह चली जाना अगर आप क़सूर में गिनते हों तो मैं पैरों पड़ती हूं उसे माफ़ कीजियेगा। हुज़ूर मुझे अपने सुख की राह में चलने दें।

बाद०—सो तो नहीं होगा लुत्फुन्निसा! जीते जी तो तुम्हें नहीं छोड़ सकूंगा।

लुत्फुन्निसा ने डबडबायी आंखों से कहा, "बादशाह! कलेजे को कड़ा कीजिये। मुझे लुत्फुन्निसा मत समझिये। पहले की सब बातें भूल जाइये। समझ लीजिये, किसी मुलाक़ाती आदमी से बात चीत कर रहे हैं। मुझे बचाइये। गुनाह की धधकती आग से मेरा कलेजा रात दिन जला करता है। इस वक़्त आप के पैर पकड़ कर अर्ज़ करती हूं, मुझे बचाइये। मुझे मेरी ज़िन्दगी बख़्शिये। अगर मेरी अक़्ल मारी जाय और मैं फिर दर्यायेगुनाह में पड़ जाऊं तो आप के सिवाय मुझे बचानेवाला दूसरा कोई नहीं है। मतलब यह कि मैं आप की जैसी थी वैसी ही अब भी बनी रहूंगी। बहुत दिनों तक गुनाह में लगी रहने की वजह मेरी रूह नापाक हो गयी है। हज़ार ऊंचा दर्जा क्यों न पाऊं पर कभी ऐसे ऊंचे नहीं चढ़ सकती कि इस सुख की लालच छोड़ दूं। आप अगर लालच दिखावेंगे तो मैं किसी तरह उसे रोक नहीं सकूंगी। इसलिये जहांपनाह मेरी ज़िन्दगी का सुख दुख सब आप के हाथ है। आप मुझे बराबर प्यार करते आये हैं, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। उसी प्यार को याद कर कहती हूं, इस वक़्त दोस्त का काम कीजिये। अपनी पुरानी जान पहचानवाली इस बदक़िस्मत औरत को बचाइये। इसे इस के सुख की राह में चलने दें।

बादशाह चुप हैं, समझ नहीं सके, क्या उत्तर दें। उन के चेहरे पर किञ्चित् क्लेश का चिन्ह देख पड़ा। बादशाह को चुप देख लुत्फुन्निसा ने फिर कहा, "जहांपनाह! इस लौंड़ी की बातों से आप को तकलीफ़ हो रही है सो मैं समझती हूं। मैं आप को तकलीफ़ देना नहीं चाहती। आप तकलीफ़ देने की चीज़ नहीं हैं। तब लुत्फुन्निसा इतनी बातें किस लिये कह रही है? वह बादशाह से कुछ भीख चाहती है। एक बरस पहले होने से लुत्फुन्निसा बादशाह से मुहब्बत की भीख मांगती, पर अब उसे इस की

ख़्वाहिश नहीं है। इस घड़ी वह यही चाहती है कि पहले की बातें भूल कर बादशाह उसे रुख़सत करें।"

जहांगीर ने कहा, "लुत्फ़ुन्निसा! मैं सब कुछ सह सकता हूं, मेरा कलेजा पत्थर का है। तुम मुझे छोड़ कर चली जाओगी यह भी सहूंगा, क्योंकि मुझे छोड़ने पर तुम नीचे न जाकर और आसूद:हाल हो जाओगी। लेकिन मुझ को छोड़ने पर तुम्हें जो तकलीफ़ होगी, वह कैसे सहूंगा? लुत्फ़ुन्निसा! सोचो तो, दूध की तरह मुलायम सेज पर भी तुम्हें नींद नहीं आती थी। तुम्हारे तलवे में धूल लग जाने पर मैं ने कई बार उसे रूमाल से पोंछा है, तौभी तुम्हारा जी नहीं भरता था। दूर २ से अच्छे २ बेशक़ीमत कपड़े और गहने मंगवा कर तुम्हें देता था, तौभी तुम ख़ुश नहीं होती थीं। देश २ से खाने पीने की चीज़ें मंगवा देने पर भी तुम्हारी ज़बान को रज़ामन्दी नहीं होती थी। गर्मी के दिनों में बर्फ़ की तरह ठण्ढी जगह में रह कर भी तुम को आसूदगी नहीं होती थी। और दिल्ली का बादशाह जहांगीर तुम्हारा हुक्मी बन्दा था, उसे भी तुम अपनी ग़ुलामी के लायक़ नहीं समझती थीं। लुत्फ़ुन्निसा! अब तुम मोटे चावल खाओगी, रूखे कपड़े पहरोगी और ख़राब से ख़राब जगह में रहोगी। यह सब तकलीफ़ें तुम कैसे सहोगी? वह सब याद कर देह कांप उठती है। और कोई जो कुछ समझे पर मैं तो तुम्हारी इन सब बातों को सुन कर चुप नहीं रह सकता।"

यह बात कहते कहते जहांगीर के इन्दीवर-नयनों में अश्रु-विन्दु का आविर्भाव हुआ। एक समय वे लुत्फ़ुन्निसा को प्राणों की तरह प्यार करते थे। एक ज़माना वह था कि एक क्षण लुत्फ़ुन्निसा को देखे बिना वे स्थिर नहीं रह सकते थे। वही लुत्फ़ुन्निसा कष्ट भोग करेगी, यह चिन्ता उन के हृदय को इस घड़ी क्यों नहीं सालेगी? लुत्फ़ुन्निसा बड़ी देर तक वाक्‌हीन पुतली की तरह चुप चाप खड़ी रहीं। तिस के बाद बोलीं, "बादशाह! आप ने जो कहा सो सब ठीक है। आप की मेरे ऊपर बड़ी मिहरबानी है। आप मेरे लिये सोच न करें। ग़ौर कर देखिये यह

लौंड़ी जब दिल्ली के बादशाह (आप) की बेग़म थी उस वक्त बेगमों के लायक़ सब चीजें आप ने उसे दी थीं, अब वह ग़रीब बिरहमन की जोरू है, तब अगर उसे तकलीफ़ हो तो हर्ज की कौन सी बात है ? बादशाह चकित हो बोले, "लुत्फ़ुन्निसा ! तुम क्या कही हो ? ज़माने ने तुम को किस खूबी के साथ पलटा है ? तुम्हारी बातें सुन सुझे बड़ा ही तअज्जुब हो रहा है ! खुदा ने जितनी चीजें बनायीं हैं उन में औरतें सब से औवल हैं, यह बात सुझे आज तुम्हारी बात चीत सुन कर मालूम हुई । मैं तुम्हारी बड़ी तारीफ़ करता हूं, तुम औरतों में जवाहिर हो ! नफ़सपर्वरी और इन्सान के दिल से चुम्बक और लोहे का रिश्ता है । तुम्हारा दिल एक मर्त्तबः नफ़सपरस्ती में इतना ग़र्क था कि आज की बातें सब ख्वाब सी जान पड़ती हैं । तुम सी औरत का मन एकदम ऐसा बदल जायगा यह एकबएक कौन एतमाद करेगा ? सब बीती बातें याद आ रही हैं । तुम्हारा दिल बड़ा चंचल और चतुराई उस में कुट २ कर भरी हुई थी । लेकिन तुम्हारी आज की साफ़दिली देख मैं फ़रेफ़्तः हो रहा हूं । मैं तुम को पहिले प्यार करता था, लेकिन आज से तुम्हें फिरश्तः जान तुम्हारी परस्तिश करूंगा । अब मैं तुम्हें तुम्हारी राह से हटाना नहीं चाहता । तुम ने जिस राह में क़दम रक्खा है वह सब तरह से अच्छी और महफूज़ है । मैं साफ़ और खुश दिल से कहता हूं । पहिले की बातें याद करने से तकलीफ़ होगी, इसलिये पहली बातों को याद करना छोड़ दो; मैं भी छोड़ देता हूं । खुदा से दुआ चाहता हूं कि वे बराबर तुम्हारे दिल को ऊंचा रखें । तुम्हें इस तरह छोड़ते तकलीफ़ तो ज्यादा होगा लेकिन मैं उसे बेउज्र सहूंगा । तुम्हारे दिल में जो खुशी होगी इसी से मैं भी खुश होऊंगा ।"

बादशाह की बातों से लुत्फ़ुन्निसा बड़ी ही आनन्दित हुईं । बोलीं, "बादशाह सलामत ! आप ने आज हम को खुशी के दरिया में डुबो दिया । जहांपनाह ! यह नाचीज़ आप से अलग होने में तकलीफ़ मालूम नहीं करती है, यह मत समझियेगा । लेकिन आगे के सुख की उमेद हो; पर मैं इस तकलीफ़ को सह रही हूं ।"

जहांगीर ने कहा, "लुत्फुन्निसा ! एक वक्त मैं तुम्हारा गुलाम था, अब भी वही हूं। जिस दिन पहले पहल तुम्हें देखा तब से आज तक तुम्हारा गुलाम बना रहा, और अब भी हूं। लुत्फुन्निसा ! आज तुम मुझ से गुमराह चली, उस राह से तुझे हटाना मुश्किल है, और चाहिये भी नहीं। मैं तुम्हारी सुख की राह में कांटे न बोऊंगा। तुम्हें ज़रूर विदाई देनी होगी, लेकिन इस के लिये जी में जलन तो ज़रूर होगी। मेरा कलेजा ऐसा पत्थर का नहीं है कि हमेश: के लिये तुम्हें रुखसत करते हुए आंसू न गिरे। तुम्हें भूलना मेरे लिये नामुमकिन है। लुत्फुन्निसा ! जब तक मेरी ज़िन्दगी रहेगी तब तक मेरे कलेजे पर तुम्हारी तसवीर नक्श रहेगी।"

लुत्फुन्निसा ने कहा, "जहांपनाह ! यह लौंड़ी भी क्या आप को भूल जायगी ? इस ने बहुत दिन तक आप का लाड़ प्यार पाया है और आप के सामने कितने ही क़सूरों के लिये क़सूरवार है। बादशाह ! आज उन सब क़सूरों के लिये माफ़ी दीजिये। बादशाह ने कहा, "मैं तुम्हें माफ़ी दूंगा या तुम मुझे दोगी ? जो हो, लुत्फुन्निसा ! बीच २ मैं तुम्हारा हालचाल तो पाता रहूंगा न ?"

लु०—बांदी बराबर आप को चिट्ठी लिखा करेगी। जहांपनाह ! अगर इसे अपनी लौंड़ी समझ कर खबर भेजते रहने की मिहरबानी किया करेंगे तो यह बहुत ही खुश होगी।

बाद०—यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं है।

लुत्फुन्निसा ने फिर विदा मांग कर कहा, "बहुत दिन चढ़ आया है—अब आप को तकलीफ़ होगी ; लौंड़ी को रुखसत होने का हुक्म दीजिये।"

बादशाह चुप हो गये। लुत्फुन्निसा ने बादशाह के मुंह की ओर देखा। देखा, उन की बड़ी २ आंखें डबडबा आयी हैं। लुत्फुन्निसा को कष्ट बोध हुआ।

जहांगीर ने कहा, "लुत्फुन्निसा ! तुम से क्या कहूं ? बाहर तुम्हें न देखूंगा सही, पर भीतर तुम्हें बराबर देखूंगा। मेरा दिल हमेश: तुम्हारे

पास रहेगा। मालिक तुम्हारा भला करें। पहिले हम लोगों में जैसा सरोकार था, उसे भूल जाओ; मुझे अपना एक मुलाक़ाती दोस्त जानना। मैं तुम्हारा जान पहचानी करीम या दोस्त होने सिवा और कुछ होना नहीं चाहता। मैं जैसा तुम्हारा भला चाहनेवाला पहले था वैसा ही अब भी रहूंगा। अगर कभी तुम्हारे किसी काम आऊंगा तो तुम्हारा वह काम खुशी से कर दूंगा। लुत्फुन्निसा! मेरी जिन्दगी में आज का दिन कैसा दर्दनाक है। आज मेरा हक़ तुम्हारी मुहब्बत से उतर गया। तौभी एक उम्मेद मेरे दिल को आसूदगी करेगी—वह यह है, तुम मुझे अपने जी से एकबारगी नहीं उठा दोगी। उम्मीद कामिल है, तुम उस खुशी से हम को महरूमन करोगी। क्या खुशहाली और क्या मुसीबत, हर हाल में जहांगीर को याद रखोगी। खुदाताला से यही अर्ज करता हूं कि तुम्हें बराबर बख़ैरोख़ूबी रखें।

लुत्फुन्निसा ने देखा, बादशाह के गालों से होकर आंसू की धार बह रही है। और ठहरना उन्हों ने अच्छा नहीं समझा। उन्हों ने यह भी अनुभव किया कि उन का भी मन ठिकाने नहीं है। वह कभी इधर और कभी उधर जा रहा है। उन्हों ने सोचा, अब नहीं—जो होना था सो हो गया। ढेला फेंका जा चुका है अब लौट नहीं सकता। समुद्र में तरङ्ग उठी है अब वह किनारा जरूर ही छूएगी। जगत् का नियम ही यह है, सब दिन बराबर नहीं जाते। तब फिर क्यों? प्रकृति की गति कौन रोकेगा? लुत्फुन्निसा ने जहांगीर को विनय और सम्मान से अभिवादन कर कहा, "जहांपनाह! लौंडी अब हुजूर से रुख़सत होती है। जहां तक मालूम होता है यही आख़िरी मुलाक़ात है।"

बादशाह के जवाब की इन्तज़ारी न कर लुत्फुन्निसा चली गयीं। जहांगीर बड़ी देर तक उस जगह खड़े रहे। उन्हों ने अस्फुट स्वर से कहा, "आख़िरी मुलाक़ात?" यह कह लम्बी सांस ले, विषण्ण वदन हो वहां से चले गये।

पञ्चम परिच्छेद ।

पत्र ।

"भूलत जैसे लोग नींद अवसान हुए पर ।
सुख निद्रा के बीच लख्यो जे स्वप्न सुखाकर ॥
तैसेहिं भूलो बात सबै पहिले की प्यारे !
विरह भयंकर की औषध इकसात उचारे ॥

——(वीराङ्गना काव्य)

उस दिन दिन के दो पहर के समय, लुत्फुन्निसा पितृ-भवन के एक सुनसान कमरे में आराम करने के लिये गयीं। वहां जाकर चुपचाप बैठीं, बैठने में जी न लगा, उठीं। उस से भी सन्तोष न हुआ—सोयीं। उस से भी तृप्ति न हुई—एक किताब पढ़ने लगीं। पुस्तक फ़ारसी में लिखी हुई थी। पुस्तक का पहला पृष्ठ उलट कर पढ़ा--अच्छा न लगा। दूसरे पेज का कुछ अंश पढ़ा। इसी प्रकार कुछ यहां, कुछ वहां, पढ़ते २ अन्तत: एक कविता उन की आंखों तले आयी। लुत्फुन्निसा ने उस कविता को और एक बार पढ़ा, फिर पढ़ा। आख़िर, उस पुस्तक के उस पृष्ठ में एक अंगुली रख, पुस्तक बन्द कर हाथ में ले ली और कुछ सोचने लगीं। चिन्ता विरक्ति-जनक हो उठी। वह पुस्तक जहां थी वहीं रख आयीं और क़लम, दावात, काग़ज़ ला एक पत्र लिखने बैठीं। किस के पास ? बादशाह जहांगीर को ! वे बहुत देर तक चिट्ठी लिखती रहीं। बीच २ में उन की आंख आंसू से भींजती जाती थीं ; आंखें धुंधलाने लगीं; उन्हों ने आंचल से आंखें पोंछी। क्षण हो क्षण लेखनी रुकने लगी। बड़ी देर के बाद चिट्ठी ख़तम हुई। उन्हों ने उसे ख़ूब संवारा। इस बार न जाने क्या जी में आया उसे खोल आद्योपान्त पढ़ा। चिट्ठी का मर्म यही है:—

"जहां पनाह !

हुज़ूर के क़दमों से रुख़सत होते वक्त इस लौंड़ी ने आप से हुक्म नहीं

मांगा इसके लिये इसे माफ़ कीजियेगा। बादशाह! क्या अपना दिल दूसरे को दिखाने की कोई तरकीब है? अगर होती तो लुत्फुन्निसा के दिल की कैसी हालत हो रही है सो दिखाती। इस वक्त, आप देख सकते कि इस बदबख़्त के कलेजे में कैसी आग धधक रही है। सिवाय मौत के और किसी तरह इस कम्बख़्त को इन सब तकलीफ़ों से छुटकारा नहीं मिल सकता। लेकिन लुत्फुन्निसा के लिये मौत थोड़े ही है? मालूम होता है खुदा ने गुनाह की हद दिखाने के लिए उसे एकदम से लाफ़ानी बना दिया है। इस वक्त मैं मौत को बड़ा दोस्त समझती हूं; अगर वह आती तो डरना दूर रहे, मैं बड़ी खुशी के साथ उसे गले लगा लेती। जहाँपनाह! अब जीने की ख्वाहिश नहीं है। जितना ही जल्दी लुत्फुन्निसा का नाम इस दुनिया से उठ जाय उतना ही अच्छा है।

गुनाह की आग से लुत्फुन्निसा की ज़िन्दगी 'धू धू' कर के जल रही है। जलते जी को ठण्ढा करने के लिए लुत्फुन्निसा ने एक गुनाह छोड़ दूसरा गुनाह शुरू किया है। ठंढक कहां से हो? उस से आग का ज़ोर कम क्या होगा और वेशी हो गया। अब यह बदनसीब अपनी ज़िन्दगी की सब बातें याद करती है तो पहले की काम सब एकबारगी बेसार और बेरस दीख पड़ते हैं।

"एक दिन सिर्फ़ उसी एक दिन लुत्फुन्निसा ने ज़िन्दगी भर में जैसी खुशी हासिल की थी—शुरू से अखीर तक सब बातों को याद कर देखती हूं और किसी दिन वैसी खुशी उस ने नहीं पायी। जिस दिन इस बदनसीब ने अपने शौहर के पैर अपनी छाती से लगाये थे, जहाँपनाह! इस बदबख़्त की ज़िन्दगी का वही दिन इस के सुख का दिन था।

"बादशाह सलामत। जहां तक हो सके मुझे भूल जाइये। लुत्फुन्निसा का पापी नाम अपनी ज़बान पर न लाइये। लुत्फुन्निसा बड़ी गुनहगार, बदचलन और फ़ाहिशा है—मुग़ल बादशाहत के तख्तनशीं बादशाह जहांगीर के दिल में जगह पाने लायक नहीं है। जो कुछ आप ने इस की भलाई की है वह सब आप की बुज़ुर्गी की निशानी है। आप के सामने

यह बांदी बहुतेरे क़सूरों के लिये क़सूरवार है, इस के नाम के साथ उन्हें भी अपने जी से दूर कीजिये। कभी यह सोचना भी नहीं कि आप के साथ मेरी कभी की जान पहचान थी। लुत्फुन्निसा नाम की कोई औरत है यह भी मत ख़्याल कीजियेगा, उस के रञ्जोग़म में माथा पच्ची न करना।

"और किसी की याद में भूल कर औरतों में हर मेरी प्यारी बहन नूरजहां को मत भूलना। नूरजहां दुनिया का रौशन है" वह बादशाह सलामत की तरह शौहर के ही क़ाबिल औरत है। उस की ख़ूबसूरती लासानी है, उस के गुनों का हद नहीं है। मैं नूरजहां की रहन सहन देख कर बड़ी चकरा गयी हूं। बहन को एक बार मेरी याद दिला उन से मेरी आख़िरी रुख़सत मांगियेगा।

"जहाँपनाह! मैं इस वक़्त अपने शौहर के पास चली। और कभी भेंट होगी कि नहीं सो नहीं मालूम होता। इसलिये बांदी के साथ फिर मुलाक़ात होना ग़ैरमुमकिन है। आज की मुलाक़ात को ही आख़िरी मुलाक़ात समझियेगा।

"ज्यादा लिख कर आप का बेशक़ीमत वक़्त बरबाद करना फ़ज़ूल है। कह आयी हूं कि आप को बराबर चिट्ठी पत्री लिखा करूंगी पर देखती हूं लुत्फुन्निसा का कलेजा पत्थर से भी कड़ा, बेरस और सूखा है। उस नीरस मन में कुछ धर्म का रस समाया है। कड़ा कलेजा कुछ मुलायम हुआ है। जहाँपनाह! सोचिये, उसे इस समय ख़बरदार न रखने से फिर पहिले की सी हालत होने में कितनी देर लगेगी? इन्हीं सब वजूहात से जहांपनाह इस के बाद से फिर कोई हाल मेरा नहीं पावेंगे। सिर्फ़ एक बार और आप को देखने की चाह है। वह भेंट कब होगी? जिस वक़्त लुत्फुन्निसा कफ़न ओढ़े सोयी रहेगी उस वक़्त अगर आप उस से भेंट करेंगे तो उस की यह दिली चाह मिट जायगी। वह और कुछ नहीं चाहती। सिर्फ़ यही आप से उस की आरज़ू है। लुत्फुन्निसा के मरने के कुछ ही पहिले आप के पास ख़बर आवेगी।

"जहांपनाह! फिर कहती मुझे भूल जायं। मेरे साथ जो जान

पहचान थी, जैसा लगाव था सो सब मेरे नाम के साथ ही साथ भूल जाइये। मैं सिर्फ़ यही चाहती हूं कि इस पापिन का नाम आप फिर कभी न लें। मैं खुदा से दुआ मांगती हूं 'प्यारी बहन नूरजहां के साथ रहें, ऐशो अशरत के साथ आप बहुत दिनों तक हुकूमत करें।"

चिट्ठी पढ़ कर लुत्फुन्निसा ने उसे मखिडत किया। अनन्तर उस पर सिरनामा लिख कर बादशाह के पास भेज गम्भीर भाव से बैठ गयीं।

षष्ठ परिच्छेद।

अभिज्ञान दर्शन।

"जइ अखहत्यगदं भवे तदा, सच्चं सो अनीयं भवे
—शकुन्तलम्।" *

लुत्फुन्निसा को सप्तग्राम छोड़े दो महीने हो गये। अब मैके में रहने की कोई ज़रूरत न देख लुत्फुन्निसा ने पिता माता से सप्तग्राम जाने का प्रस्ताव किया। उन्हों ने इस में कुछ ना नु कर नहीं किया।

बड़े तड़के जाने के लिये सब ठीक ठाक हुआ। पालकी कहार, आदमी जन सब ठीक ठाक कर के रखे गये।

दूसरे दिन लुत्फुन्निसा मा बाप को प्रणाम कर पालकी पर चढ़ीं। कहारों ने पालकी उठायी। लुत्फुन्निसा ने आगरा की मोह माया छोड़ दी। जिस आगरा के आबाल वृद्ध-बनिता सब उन्हें चीन्हते थे और उन के साथ जान पहचान रखने में अपनी प्रतिष्ठा समझते थे, जिस आगरा में वे जब जिस किसी से कोई काम करने को कहती थीं तभी वह उस काम को राज़ी खुशी से कर के कृतार्थ होता था, जिस आगरा के रहने वाले उन को दर्शन को शुभ दिन का लक्षण मानते थे और जिस आगरा के

---

* यदान्य हस्तगतं भवेत्तदा सत्यं शोचनीयं भवेत्।

अगर दूसरे के हाथ होता तो ज़रूर उन का अफसोस होता (षष्ठोऽङ्कः-अभिज्ञान शकुंतले।) अनुवादक।

उमराओं की लड़के उन की तिर्छी चितवन देख मुग्ध रहते थे, आज लुत्फुन्निसा ने प्रतिज्ञा कर के उसी आगरा को छोड़ दिया।

समय! तुम धन्य हो! तुम्हारी क्षमता असीम है! तुम निर्जीव को सजीव और सजीव को निर्जीव कर सकते हो, तुम कुसुम को पाषाण और पाषाण को कुसुम कर दे सकते हो, तुम सूखे पेड़ में भी मोजर लगा सकते हो। तुम्हारा मोहन मन्त्र विलक्षण है! तुम ने जिस मंत्र के प्रभाव से पाषाणी पद्मावती को मानवी बनाया है वह मंत्र अद्भुत है। तुम्हारे ही असामान्य मन्त्र बल से शुष्क पद्मावतीलता प्रस्फुटिता हुई है।

कई दिन बाद एक दिन मध्यान्ह समय लुत्फुन्निसा सराय में उतरीं। उन के नौकर चाकरों ने वहीं उन के रहने के लिये एक कमरा ठीक कर दिया और सब प्रयोजनीय द्रव्य-सामग्री भी संग्रह कर दी।

खा पी कर लुत्फुउन्निसा अकेली उस कमरे में आराम करने लगीं। उन के नौकर चाकर दूसरे कमरे में रहे। दासी की सेवा से लुत्फुन्निसा तुरत ही निद्रा की गोद में विश्राम करने लगीं। बड़ी देर बाद कुछ गड़बड़ सुन कर उन की नींद टूट गयी। उन्हों ने सुना कोई आदमी एक दूसरे से कड़े स्वर में कह रहा है,—

"तू ने यह कहां पाया? यह बड़ी कीमती चीज़ है। ज़रूर तू ने कहीं से इसे चुराया है।"

दूसरा कहता है, "धर्म्म की दोहाई—मैं तुम्हारा पैर छू कर कसम खाता हूं, मैं ने इसे चुराया नहीं है—जिस की यह चीज़ है उसी ने दिया है।" डांटने वाला कहता है, "क्या कहना है! इतनी बड़ी चीज़ यों ही भीख दे दी!!!"

आमोद-प्रिया लुत्फुन्निसा को असल बात जानने के लिये बड़ा कौतूहल हुआ। जिधर से आवाज़ आ रही थी उस ओर की खिड़की खोल कर देखा सरायवाला हाथ में एक अंगूठी लिये हुए सामने खड़े एक आदमी से पूर्वोक्त बातें कह रहा है; चारो ओर से बहुत से लोग इकट्ठे हो कर तमाशा देख रहे हैं। असल बात जानने के लिये लुत्फुन्निसा ने अपनी

एक दाई को पुकार कर इन दोनों को अपने सामने लाने की आज्ञा दी। तुरत ही सरायवाला उस सम्भावित चोर को साथ लिये हुए वहां आ पहुंचा।

लुत्फुन्निसा ने पूछा, "बात क्या है?"

सराय के मालिक ने उत्तर दिया "यह आदमी इस अंगूठी को बेचने के लिये ले आया है। किन्तु यह जैसी कीमती है उस से सामान्य आदमी के हाथ में इस का रहना असम्भव है। जान पड़ता है इस में कोई भारी भेद भरा है।"

लुत्फुन्निसा ने कहा, "अंगूठी तो देखूं।"

सरायवाले ने अंगूठी उन के हाथ में दे दी। अंगूठी देखते ही लुत्फुन्निसा सिहर उठीं। उन का मुंह काला हो गया और सारी खुशी हवा होगयी। दारुण पूर्व्वस्मृति का चिन्ह मुख पर आविर्भूत हुआ। उन्हों ने अंगूठी बेचनेवाले से पूछा, "तू ने यह अंगूठी कहां पायी?"

उस ने कहा, "बीबी साहिबा! मैं दरिद्र ब्राह्मण हूं? श्री काशीधाम में रहता हूं; भिक्षा मेरी उपजीविका है। ऐसे सामान्य दरिद्र के पास ऐसी बहुमूल्य वस्तु होना असम्भव बात है। कहने का मतलब, मा जी! यह कि मैं दरिद्र हूं सही पर चोर नहीं हूं। मैं ने यह अनमोल चीज़ भीख ही में पायी है।"

लुत्फुन्निसा ने कहा, "तुम्हें इसे किस ने दिया?"

भिक्षुक बोला, "कई महीने हुये पूरब से एक धनी व्यक्ति अपने परिवार के साथ उक्त तीर्थ (श्री काशी जी) में आये थे। मैं ने उन से भीख मांगी उन सबों ने हमें बड़ा सन्तुष्ट किया। उन के साथ एक अल्पवयस्का सुन्दरी थीं; मैं ने जब उन से भीख चाही तो उन्हों ने कहा, 'मुझे कुछ भी नहीं है तुम्हें क्या दूं?' उन का रूप देख मुझे यह बात प्रतीत न हुई कि इन के पास कुछ नहीं है। अत: उस बात को अनसुनी कर मैं ने पुन: भिक्षा मांगी। अन्तत: उन्हों ने कुछ सोच विचार कर अपने बालों में से एक अंगूठी निकाल कर कहा, 'मेरे पास और कुछ नहीं यही है, इस की मुझे उतनी कुछ जरूरत

नहीं, इसे तुम्हीं ले जाओ।' उस समय उन के सङ्गी साथी दूर थे। मैं ने उन्हें आशीर्वाद देते २ देखा यह अमूल्य सामग्री है। सोचा भरसक इसे बेचूंगा नहीं, लड़की के व्याह के समय उसे दूंगा। किन्तु अब चारा नहीं है; लाचार बेचना पड़ता है। पर दरिद्र का कपार कहां जाय? जाओ 'नैपाल संगी जैहैं कपाल'। यहां बेचने के लिए अंगूठी दिखायी तो इन्हों ने मुझे चोर समझ लिया। अब आप लोगों के ईमान में जो आवे सो करें।" ब्राह्मण चुप हो गया।

लुत्फुन्निसा ने कहा, "तुम कह सकते हो वे यात्री कहां के रहने वाले हैं?" दरिद्र ने कहा, "जी, नहीं, सो मैं कैसे जानूंगा?"

बीबी ने फिर पूछा, "जिन्हों ने तुम्हें यह गहना दिया है उन के संगी उन के रिश्तेदार थे?"

"बीबी! क्षमा कीजिये; यह मैं कैसे कह सकता हूं?"

लु०—अच्छा वह नहीं जानते तो न जानो, वह देखने में कैसी हैं सो तो जानते हो न?"

ब्रा०—वह देखने में परमा सुन्दरी हैं। वैसा रूप तो आज तक नहीं देखा।

लु०—उन की उमर लगभग कितनी होगी?

ब्रा०—अनुमान २२। २३ वर्ष की होगी।

लुत्फुन्निसा ने एक लम्बी सांस फेंकी। अनेक क्षण बाद बोलीं, "तुम कितने दाम तक इस अंगूठी को बेच सकते हो?"

ब्रा०—मैं दरिद्र ब्राह्मण हूं, आप जो अनुग्रह कर देंगी वही यथेष्ट होगा।

लु०—तुम्हें मैं एक और अंगूठी देती हूं। उसे तुम अपनी लड़की को देना। इस के सिवाय घर खर्च के लिये २००) रुपये और इस अंगूठी को पाकर मेरा जो उपकार हुआ है उस के इनाम में तुम्हें ५०) रुपये और देती हूं। क्यों इतने से प्रसन्न हो न?

दरिद्र ब्राह्मण ने मानों हाथों स्वर्ग पाया। सानन्द बोला, "मैं ने स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं की थी। आप स्वयं कमला (लक्ष्मी) हैं।" इस के बाद लुत्फुन्निसा ने ब्राह्मण को उतने रुपये दे बिदा किया। सरायवाला उन का ऐसा भाव देख चकरा गया। सबों ने प्रस्थान किया। लुत्फुन्निसा अब अकेली हो गयीं।

सप्तम परिच्छेद।

सन्देह।

"If I should meet thee
After long years,
How shall I greet thee."
———Byron.

बहुत दिनन के बाद, भेंटूं मैं यदि, ऐ सखी !
कैसे करिहों बात, कहु सखि ! मैं जानन चहौं॥

लुत्फुन्निसा को याद आया कि सप्तग्राम के जिस अंश में निबिड़ बन है वहां रात के समय ब्राह्मणवेश धारण कर उन्हों ने कपालकुण्डला से कहा था, "मैं तुम्हारी सौतिन् हूं। मैं तुम्हें धन देती हूं, रत्न देती हूं, दास-दासी देती हूं, सुन्दर अटारी देती हूं, तुम पति छोड़ दो। ऐसा करने से पति मेरे हो जायंगे।" सरला, विकारशून्या, संसार बोध-विहीना कपालकुण्डला ने तड़ाके से कह दिया था, "वैसा करने से तुम सुखी होगी? ऐसा ही होगा। कलह से तुम्हारे सुख की राह में कांटा नहीं रहेगा।" युवती रमणी की मुंह से ऐसी बात सुन कर लुत्फुन्निसा चौंकी थीं। इस वक्त, याद आने पर रोंआ खड़ा हो गया! उस घड़ी उन्हों ने सोचा था कपालकुण्डला मानवी के आकार में हो देवी हैं। आज सोचा कपालकुण्डला पापीयसी हैं।

लुत्फुन्निसा ने उस समय कपालकुण्डला की सुविधार्थ और स्मरणार्थ एक अंगूठी दी थी। देखा यह वही अंगूठी है।

अकेले में बेकाम बैठी हुई लुत्फुन्निसा के मन में आप ही आप कितने प्रश्न उठने लगे। इस आदमी ने यह अंगूठी कहां पायी? इसे तो मैं ने कपालकुण्डला को दिया था। कपालकुण्डला उसी रात को पानी में डूब गयीं फिर इस ने इस अंगूठी को कैसे पाया? शायद किसी मछुये ने पाया होगा। जिस ने इस ब्राह्मण को अंगूठी दी है उसी ने उस धीवर से खरीदा होगा। इस के सिवाय और क्या हो सकता है? कपाल कुण्डला पानी में डूब गयीं यह मैं ठीक जानती हूं और यह बात मुझ से कापालिक ने कही है, वे क्यों झूठ बोलेंगे? क्या कपालकुण्डला दूसरे किसी आश्चर्य उपाय से जी गयी हैं? वह भिखमंगा ब्राह्मण कहता था, "जिस ने अंगूठी दी थी वह परमासुन्दरी है। उस की उमर २२। २३ वर्षों की है।" इन सब बातों से तो कपालकुण्डला ही का शक होता है। किन्तु कपालकुण्डला नहीं हैं। तब वह देनेवाली है कौन? कहां जाने से उस से भेंट हो सकती है? वह प्रवासी धनी कौन हैं? उन का घर कहां है? वह स्त्री —वह स्त्री क्या पुनर्जीविता कपालकुण्डला ही हैं? आज कपालकुण्डला के जीवन सम्बन्ध में लुत्फुन्निसा के हृदय में आशा का थोड़ा सा अङ्कुर उगा।

यही सोचते २ लुत्फुन्निसा को बड़ा आनन्द हुआ। वे अपनी आशा की सफलता की कामना करने लगीं। उन्हों ने सोचा यदि कपालकुण्डला जीती हैं तब तो अब संसार में बड़ा सुखोदय होगा!

उन का ऐसा भाव क्यों हुआ? एक दिन उन्हीं ही ने तो कपालकुण्डला को हटाने का यत्न किया था? इस घड़ी वेही क्यों कपालकुण्डला का जीना चाहती हैं? इस का कारण लुत्फुन्निसा की स्वामी-भक्ति—स्वामी के सुख की कामना ही है।

बड़ी देर तक एक ही जगह बैठ, इसी प्रकार नाना प्रकार की चिन्ताएं करती लुत्फुन्निसा ने एक लम्बी सांस फेंक गात्रोत्थान किया और बड़े यत्न से अंगूठी को रख एक पुस्तक पढ़ने लगीं।

इति तृतीय खण्ड समाप्त।

चतुर्थ खण्ड।

प्रथम परिच्छेद।

स्वामी-सङ्ग।

" छाया न मूर्च्छति मलोपहत प्रसादे।
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभाव काशा: ॥"

——अभिज्ञान शकुन्तलम्।

पाठक! बहुत दिनों से नवकुमार और श्यामा का सम्वाद नहीं मिला, अतएव चलिये उन की खोज खबर ली जाय। सांझ हो चली है; पश्चिमाकाश का रङ्ग रङ्गीन हो रहा है—मानो किसी ने सिन्दूर पोत दिया है। जब जिस ओर कोई क्षमताशाली पुरुष सहायक रहते हैं तब वही पक्ष प्रबल, उज्ज्वल और सतेज हो जाता है और उन के बिना विमर्ष, मलिन और नीच हो जाता है। मानव समाज का यही नियम है। प्रकृति भी क्या इसी नियम पर चलती है? पुराने समय में राजाओं को एक से अधिक रानियां होती थीं। जब जो रानी राजा के सुनयन में पड़ कर "सूयो *" होती थीं, तब उस के सुख की सीमा नहीं रहती थी; वे आनन्द में डूबती उतराती थीं और जो विषनयन में पड़ कर "दूयो" होती थीं उन के क्लेश की सीमा नहीं रहती थी। वे सदा विमर्ष भाव से पूर्ण रहती थीं। प्रात: काल सूर्य्यदेव जिस समय सती पूर्व्व दिशा के साथ अवस्थान करते थे उस समय की उस शोभा का कौन वर्णन करे? और इस समय उसे त्याग दूसरी के साथ कौतुक कर रहे हैं—यह देखिये उसी कारण सती पूर्व्व दिशा क्रम से मलिन हुई जाती है; उन के मुख पर कालिमा पड़

---

* जिस राजा को दो रानी होती थीं उन में जो राजा की प्रेमपात्री होती थीं उन्हें बङ्गाली राजा की "सूयोरानी" कहते हैं और विरक्तिभाजना "दूयो" नाम से अभिहित होती हैं। अनुवादक।

रही है और उन को छोड़ सूर्यदेव जिन के प्रति सदय हुए हैं उन की हंसी रोके रुक नहीं सकती। वे आनन्द से उछली पड़ती हैं।

यही समय है जब कि नवद्वीप के एक दोमहले मकान की छत पर एक युवती और एक युवक बैठ कर कथोपकथन कर रहे हैं। भागीरथी के पवित्र सलिल से सिक्त मन्द २ वायु धीरे २ आ कर युवक युवती का ललाट स्पर्श करती है; उन के वस्त्रों को ले क्रीड़ा करती है और युवती के बिखरे बालों को नचाती है।

युवती को शायद सबों ने पहचान लिया है। वे नवकुमार की बहन श्यामासुन्दरी हैं। उन की बगल में बैठे हुए युवक उन के स्वामी मथुरा-नाथ हैं।

श्यामा ने कहा, " अब तो कोई बाधा नहीं न है ? "

मथुरानाथ—"अब भी बाधा लगी ही है! तुम यदि न आती तो शायद ही इस बार बचता। तुम्हारे इस सुन्दर मुख की शोभा देख कर रोग क्या लगा ही रहता है?"

श्या०—नहीं रहता ?

म०—नहीं।

श्या०—तब कोई चिन्ता नहीं। अब से जब कोई बीमार पड़े तब उसे मेरे पास ले आना। मैं उन लोगों को अपना मुंह दिखा दूंगी और वे भले चङ्गे हो जायंगे।

म०—सब कोई देख कर अच्छे नहीं होंगे। देखने में भी विशेषता है ?

श्या०—कैसी विशेषता ?

म०—मैं जिस दृष्टि से तुम्हें देखता हूं उसी तरह का देखना होना चाहिये।

श्या०—तुम जिस दृष्टि से मुझे देखते हो वह तो मैं जानती ही हूं। यदि उस दृष्टि से देखने पर तुम्हारा रोग छूटता है तो औरों का भी अवश्य छूटेगा।

म०—तब क्या मैं तुम्हें उसी दृष्टि से देखता हूं जिस दृष्टि से सब कोई देखते हैं ?

श्या०—हां, प्रायः वैसा ही।

म०—नहीं श्यामा ! तुम्हारी यह बात एकदम अनुचित है। इतने दिन तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार मैं ने किया है उस से तुम ऐसी बात कह सकती हो सही, पर श्यामा, क्या तुम यह नहीं जानती मैं ने अपनी इच्छा से वैसा व्यवहार नहीं किया ? श्यामा मेरा कलेजा चीर कर देखोगी तब जान सकोगी कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं।

श्या०—मैं क्या तुम्हारी बातों में आ जाऊंगी ?

"हम से चातुर नारि को, क्या सिखवत हो लाल।
पुरुष जाति नहिं बूझती, परे विपति के जाल॥"

तुम लोग तो बातों ही के जोर से जग जीतते हो।

म०—श्यामा ! हृदय यदि दिखलाने लायक होता तो दिखा देता मैं तुम्हें कितना चाहता हूं। मैं जब तुम्हारे पास रहता हूं तब भी तुम्हारा ही रहता हूं और जब नहीं रहता तब भी तुम्हारा ही बना रहता हूं। कहने से तुम विश्वास करो या न करो, पर मैं खुले मुंह कहता हूं कि तुम्हें मैं प्राणों के समान प्यार करता हूं।

यह बात सुन श्यामा खिलखिला कर हंसने लगीं। कुछ देर तक हंसने पर उस ने मथुरानाथ के कन्धे पर मस्तक रख दिया। वे तब भी हंसती रहीं। थोड़ी देर बाद बोलीं—

"मैं जानती थी कि तुम चिढ़ोगे। और एक बात कह कर तुम्हें रुला सकती हूं। तुम मुझे प्यार करते हो सो क्या मैं नहीं जानती ? मैं यह खूब अच्छी तरह जानती हूं। इतने दिन तुम्हारे बिना जो कष्ट भोग किया है उस की सीमा नहीं। उसी दुःख से मैं ने इतनी बातें कहीं, किन्तु अब मेरा वह दुःख दूर हो गया है। अब मैं उसे मन में न लाऊंगी। कष्ट न होने से क्या सुख होता है ? इतने कष्ट भोगे हैं इसी से न इतना सुख पा रही हूं ! अब बोलो तुम मुझे छोड़ोगे तो नहीं और मेरे साथ पहले की सी धोखेबाज़ी तो न करोगे ? मैं अब समग्राम नहीं जाऊंगी।"

मथुरानाथ ने श्यामा को आलिङ्गन कर लिया। कितनी देर तक एक दूसरे के आलिङ्गन में बंधे रहे, यह कोई नहीं जान सका। बड़ी देर के बाद मथुरानाथ ने कहा, " श्यामा! जिस की पत्नी तुम्हारे जैसी है इस जगत् में वही सुखी है। बाकी सब घोर दुःखी हैं।" श्यामा हंसती हुई बोलीं, "तुम मुझे चाहते हो इसी से मुझे सब से अच्छी समझते हो। जगत् में सभी अपनी २ स्त्री को प्यार करते हैं, अतः सभी सुखी हैं।"

म०—मैं कुछ उस ख़याल से नहीं कहता। सचमुच तुम सी नारी जगत् में दुर्लभ है। मैं कुछ यह नया नहीं देखता। इतने दिन तक इच्छा न रहने पर भी मैं अपने मन की बात मन ही में छिपाये हुए था। इतने दिन पर विधाता ने मेरा सुख निष्कण्टक कर दिया। जितने दिन तक देह में प्राण रहेंगे उतने दिन तक अब यह सुख नहीं छोड़ूंगा। श्यामा! अब तुम्हें आंखों की ओट न करूंगा।

श्यामा ने मथुरानाथ का हाथ धर लिया। मथुरानाथ ने श्यामा का ललाट चूम लिया।

इसी समय बाहर बैठक में नवकुमार और और भी कई लोग बात चीत करते और बड़े ज़ोर हंस रहे हैं; सुनते ही श्यामा को फिर चूम कर मथुरानाथ चले गये।

श्यामा बड़ी देर तक छत पर अकेली बैठी रहीं। इस समय श्यामा के सुख की हद्द नहीं है। उन को नवद्वीप आये प्रायः डेढ़ महीने हुए; उस घड़ी मथुरानाथ मरणापन्न हो रहे थे। इतने अवसर में वे अच्छी तरह आरोग्य हो गये हैं; यह श्यामा के सुख का एक कारण है। जिस स्वामी को श्यामा कभी २ देख पाती थीं वही स्वामी इस घड़ी आठोपहर उस की आंखों के आगे रहते हैं; यह भी उन के सुख का एक प्रधान कारण है।

—०—

द्वितीय परिच्छेद ।

प्रेम-पत्र ।

" Why did you falsely call me your Lavinia ;
And swear I was Horatio's better half
Since now you mourn unkindly by yourself ?
And rob me of my partnership of sadness. "
——N. Rowe.

नवकुमार और श्यामा को नवद्वीप आये प्रायः डेढ़ महीना हुआ। इतने दिन में मथुरानाथ ने नवकुमार के बहुत से वृत्तान्त, जो वे पहले नहीं जानते थे, उन्हीं के मुंह से सुने। कपालकुण्डला और पद्मावती के सम्बन्ध में जो कुछ हुआ था उस में कुछ भी उन से छिपा नहीं रहा। नवकुमार के मन की हालत भी उन्हों ने अच्छी तरह समझ ली। प्रति दिन सांझ के समय, घूमती बार अथवा जब कभी वे दोनों इकट्ठे होते थे तभी, इन सब विषयों पर कथोपकथन करते थे।

इसी बीच एक दिन नवकुमार ने पद्मावती का भेजा हुआ एक पत्र पाया। आगरे से सप्तग्राम आ कर पद्मावती ने नवकुमार को यह चिट्ठी भेजी थी।

पत्र खोल कर नवकुमार ने पढ़ा :—

" प्राणेश्वर !

" विधाता ने प्रतिज्ञा कर ली है कि सदा मुझे क्लेश के सागर में डुबाये रहेंगे। जिस व्यक्ति को देख मैं परम सुख लाभ करती हूं मुझे क्लेश देने के लिये विधाता उसे भी इस तरह विपद में डाल देते हैं कि सहसा उस का दर्शन पाना कठिन हो जाता है। मुझे ही क्लेश देने के निमित्त विधाता ने तुम्हें ऐसी विपद में डाला है। मैं पाषाण की हूं, मेरा क़लेजा बहुत सहता है, यह सब भी सह रहा है।

" सुनती हूं श्यामा के खांसी ने आरोग्य लाभ किया है। पापीयसी की प्रार्थना की ओर विधाता कान नहीं देते, तौभी हृदय से प्रार्थना करती हूं कि वे नीरोग हो कर दीर्घजीवन लाभ करें।

"तुम ने अपने हृदय-सखा द्वारा मुझे कह भेजाया था कि बहुत जल्द नवद्वीप से आओगे। नाथ! क्या इसी का नाम जल्दी है? मैं ने दिन गिन रखे हैं; तुम को नवद्वीप गये एक महीना बीस दिन हुए। तुम्हारी समझ में यह बहुत कम होने पर मेरी समझ में यह बहुत अधिक है। क्या मुझे तुम छोड़ने का और कोई उपाय न देख इसी तरह मेरे पास से चले गये हो? मैं किसी तरह तुम्हारी प्रेमपात्री होने योग्य नहीं हूं यह मैं खूब जानती हूं। तुम ने जो अनुग्रह मुझ पर किया है यह तुम्हारे उदार मन का परिचय देता है। किन्तु हृदयेश! इसी लिये क्या मुझे स्वर्ग में चढ़ा कर फिर नरक में फेंकना उचित है? जब तुम्हें इसी प्रकार मुझे छोड़ देना था तब क्यों एक समय मुझे आशातीत सुख-सागर में डुबाया था? मैं दुःखिनी, हतभागिनी, पापीयसी हूं—तुम्हारे चरणों का ध्यान करते २ ज़िन्दगी बिताती। उस घड़ी मुझे उसी में सुख होता, पर प्राणेश्वर तुम्ही ने तो मेरी सुख इच्छा बढ़ा दी है। इस घड़ी मेरा मन तो उस से सन्तुष्ट नहीं होगा। सुख में डुबा कर फिर यदि दुःख में डुबावोगे तो मैं एक तिल भी नहीं बचूंगी। मृत्यु के बिना इस अवस्था में कभी शान्ति नहीं होगी। तुम्हारी प्रवृत्ति पर मैं कुछ ज़ोर करना नहीं चाहती। तुम को जो उचित जान पड़े वही करो।

"ईश्वर न करें किन्तु यदि और कोई दुर्घटना उपस्थित हुई हो तो कहना। पद्मावती क्या तुम्हारी कोई नहीं है? जिस को मन प्राण समर्पण कर देने की प्रतिज्ञा की है उस से कुछ भी छिपाने का काम नहीं। तुम्हारी विपद क्या पद्मावती की विपद नहीं है? तुम्हारा क्लेश क्या पद्मावती का क्लेश नहीं है? तब प्रियतम! मुझ से छिपाना कैसा? मुझे अपने क्लेश की अभागिनी क्यों नहीं करते हो? मैं अबला हूं—तुम्हारे क्लेश में भाग ग्रहण करने में समर्थ नहीं होऊंगी क्या यही आशङ्का किये हुए हो? उस की आशङ्का न करो। मैं ने बहुत कुछ सहा है और बहुत कुछ सह सकती हूं। जिस दिन अभागिनी पद्मावती तुम्हारे पैरों तले गिर कर रोयी थी एवम् जिस दिन तुम ने उस के जन्म भर के पापों को क्षमा कर

अपने हृदय में स्थान दिया था, दासी के जीवन में वही दिन, दिन था! वह दिन क्या फिर नहीं आवेगा? चिरापराधिनी पद्मावती उस के बाद क्या फिर भी तुम्हारे चरणों की अपराधिनी हुई है? हो सकती है! अगर ऐसा हुआ हो तो तुम ने जिस मन से मेरे उन सब घोर दुष्कर्मों को क्षमा किया था उसी मन से वह भी क्षमा करना।

"और तुम से क्या कहूं? क्या कहने से तुम इस दासी के मन की अवस्था जान सकोगे? हृदय की यह अवस्था प्रकाश करना मेरे लिये दुःसाध्य है। यदि तुम ने मुझे अपने हृदय में स्थान दिया होगा, यदि तुम मुझे प्यार करते होगे, तो कुछ न कहने पर भी तुम्हारी वियोग में मेरे हृदय की जैसी अवस्था हो रही है उसे सहज ही अनुमान कर सकोगे।

"अब बोलो और कितने दिन नवद्वीप में रहोगे? मैं ने जैसा सुना है ईश्वर करें वैसा ही हो। चट्टोपाध्याय महाशय यदि आरोग्य लाभ कर चुके हैं तो विलम्ब करने का क्या काम है? श्यामा को मेरी बात याद करा देना। भगवान् उन्हें सुखी रखें। तुम्हारे बिना यदि दासी का मङ्गल होना सम्भव हो तो यहां मङ्गल ही है। तुम सब प्रकार विपद शून्य और सुखी होओ। यही दासी की एक मात्र कामना है।"

नवकुमार चिट्ठी को पढ़ गये। पत्र की प्रत्येक पंक्ति से मानो पद्मावती का पवित्र प्रणय झलक रहा है—ऐसा बोध हुआ। उन्हों ने फिर पढ़ा। पद्मावती के सुख दुःख के बारे में कितनी ही चिन्ता की। इस के बाद पद्मावती की प्रणय-लिपि का उत्तर लिखने बैठे। उस में उन्हों ने अक्षर २ करके पद्मावती की सब बातों का जवाब लिख दिया। पद्मावती को वे भूल नहीं गये हैं, कभी उसे भूल भी नहीं सकेंगे। उस (पद्मावती) के सुख की ओर उन का विशेष ध्यान रहता है और मथुरानाथ के अनुरोध से इच्छा न होने पर भी वे वहां ठहरे हुए हैं, यह सब बातें भी लिख दीं।

नवकुमार इस प्रकार पत्र समाप्त कर फिर भी चिन्ता में डूब गये। पद्मावती के सोच ने उन के चित्त को फिर चूर चूर कर दिया। नवकुमार

का मन इस घड़ी पद्मावती की ओर और भी खिंच गया है। इस का क्या कारण है? पद्मावती उन को प्यार करती हैं, यह वे अच्छी तरह जान चुके थे। उपस्थितपत्र में भी उस का यथेष्ट प्रमाण भरा हुआ है। वही प्रणय नवकुमार के प्रणय-वर्द्धन का कारण है। प्रणय की एक आश्चर्यदायक शक्ति है। तुम किसी एक आदमी को प्यार करो वह भी तुम्हें प्यार किये बिना नहीं रहेगा। तुम्हारा हज़ार क़सूर होने पर वह उसे ग्रहण नहीं करेगा। वह तुम्हारा पक्षपाती ही होगा। वह तुम्हारे तिल मात्र गुण को पहाड़ कर देगा। मनुष्य प्रणय का अवतार है। मनुष्य के प्रायः सभी सांसारिक कामों में प्रणय, स्नेह, लिप्सा, लालसा, माया, श्रद्धा, भक्ति प्रभृति धर्म्म समभाव से मिले रहते हैं। सभी के हृदय में कम या विशेष प्रेम रहता ही है। हृदय में थोड़ा सा प्रणय जन्म लेने पर वह क्रम से बड़ा हो जाता है। जैसे वन में आग एक जगह लग कर क्रम से सारे वन में फैल जाती और भयानक अग्नि काण्ड उपस्थित कर देती है, माधुर्य्य-मय प्रभात-कालीन सूर्य्य की किरणें आकाश-मण्डल में फैल कर तुरत ही उग्रमूर्त्ति धारण करती और चारो दिशाओं में फैल जाती है, आंख मूंदते ही निद्रा धीरे २ चुप चाप आकर थोड़ी ही देर में देह, मन प्रभृति का चैतन्य हरण करती है, उसी प्रकार हृदय क्षेत्र में प्रेमाङ्कुर जन्म लेने पर थोड़े ही समय में बड़े भारी वृक्ष का सा आकार धारण कर लेता है। नवकुमार का हृदय पहले ही से पद्मावती को प्यार करने लग गया था। इस वक्त उसी प्रेम ने क्रम से वृद्धि के पथ पर अग्रसर हो कर ऐसा आकार धारण किया है। यह कोई विचित्र बात नहीं है। प्रणय का सर्व्वत्र यही नियम है। ऐसा देश नहीं जहां प्रेम का शासन न हो, ऐसा हृदय नहीं जो प्रेम का आधिपत्य स्वीकार न करे। यदि ऐसा हृदय हो तो वह असार है। वह व्यक्ति पुरषी (ग़लीज़) की अपेक्षा भी हीन वस्तु है। नवकुमार का हृदय उसी मनुष्य स्वभाव-सिद्ध प्रेम से पूर्ण है। उसी पूर्ण हृदय से नवकुमार ने पद्मावती को प्यार किया है। वह प्यार क्यों नहीं जड़ पकड़ेगा?

तब क्या इतने दिन बाद नवकुमार कापालकुण्डला को भूल गये हैं? नहीं। वे आज तक कापालकुण्डला को भूल नहीं सके हैं। कभी ज़िन्दगी भर में उन्हें भूल सकेंगे, इस की भी सम्भावना नहीं है। नवकुमार का कापालकुण्डला की ओर जो प्रणय है और पद्मावती के प्रति जो प्रेम है इन दोनों में बहुत फ़रक है। कापालकुण्डला का प्रणय स्निग्ध, निर्मल, उज्ज्वल और शान्त है मानो हीरक निःसृत मनोरम रश्मि हो। पद्मावती का प्रणय उग्र, सतेज, उज्ज्वल और प्रदीप्त है, मानो तेजःप्रतिफलित दीप्तिमान् ज्योति हो। दोनों ही आवश्यक, कार्य्यकार और प्रिय हैं। किन्तु सम्प्रति नवकुमार के हृदय में पद्मावती ही प्रबल है। कारण पद्मावती उपस्थित हैं और कापालकुण्डला अनुपस्थित; एवम् कभी वे उपस्थित होंगी कि नहीं इस की भी सम्भावना नहीं है। इस समय कापालकुण्डला के प्रति प्रणय जो है वह केवल ढंक गया है वह कभी विलनी नहीं होगा। प्रणय विलीन होने वाली सामग्री नहीं है।

तृतीय परिच्छेद।

अशुभ–सम्वाद।

"शोको नाशयते धैर्य्यम्।"

—रामायणम्।

तीन दिन बाद एक रोज नवकुमार और मथुरानाथ घूमने गये थे, इसी समय उन की खोज में एक ब्राह्मण किसी दूसरे गांव से आये। नौकर ने उन की यथा विधि अभ्यर्थना कर उन्हें चण्डी-मण्डप में बैठाया। वे बैठे थे इसी समय नवकुमार और मथुरानाथ लौट कर आये। नौकर ने ब्राह्मण के आने की बात कह सुनायी। खबर पाते ही नवकुमार वहां गये। वहां उन्हों ने जो देखा उस से उन का हृदय शोक से आकुल हो उठा। उन की आंखें आंसू से डबडबा आयीं। कापालकुण्डला और नवकुमार ने कापालिक के यहां से भाग कर जिस के यहां आश्रय ग्रहण कर जीवनरक्षा की

थी और जिन्हों ने कपालकुण्डला को सम्प्रदान कर नवकुमार को अतुल सुख-सागर में डुबाया था—नवकुमार ने देखा, आये हुए व्यक्ति हिजली की भवानी के वही अधिकारी हैं। नवकुमार के मुंह से कोई बात न आयी। जिस समय अधिकारी पूछेंगे, "नवकुमार! कपालकुण्डला कैसी है?" उस समय क्या उत्तर देंगे यही सोच नवकुमार दुःखित हुए।

नवकुमार ने आ कर अधिकारी के चरण में प्रणाम किया। उन्हों ने भी प्रति नमस्कार कर पूछा,—

"नवकुमार! उदास क्यों हो? कुशल तो है न?"

यह बात सुनते ही नकुमार की आंख से ढर ढर आंसू की धार बहने लगी। अधिकारी उन का ऐसा भाव देख विस्मयाविष्ट और व्याकुल हुए। नवकुमार ने बड़ी देर बाद कहा, "सब बातें कहता हूं सुनिये।"

यह कह नवकुमार ने कपालकुण्डला के साथ अधिकारी के यहां से बिदा हो कर आने के बाद जो २ घटनाएं घटीं, सो सब कह सुनाया। और जिस तरह कपालकुण्डला की मृत्यु हुई सो सब भी कहा। वह सब बातें सुन कर अधिकारी की आंखों से अविरल अश्रु धारा बहने लगी।

अधिकारी कपालकुण्डला को बहुत प्यार करते एवं उन्हें मा कह कर पुकारते थे। कापालिक के बुरे अभिप्राय से उन की रक्षा करने के लिये उन्हों ने कपालकुण्डला को नवकुमार के साथ व्याह दिया। यदि सचमुच देखा जाय तो जगत में अधिकारी के सिवाय कपालकुण्डला को और कोई नहीं था। अधिकारी का भी जहां तक पता लगा है उस से जान पड़ता है की, पुत्र, परिवार कोई नहीं है। वे कपालकुण्डला को अपनी लड़की जान कर उस का लालनपालन करते थे, कपालकुण्डला के प्रति उन को अपत्य स्नेह हो गया था। होश होने के बाद से कपालकुण्डला और किसी को नहीं जानती थीं। अधिकारी ही उन के माता पिता और अधिकारी ही उन के सर्व्वस्व थे। ऐसे दो प्रिय व्यक्तियों में से एक की अकाल मृत्यु होने पर दूसरे का दिल टूट जायगा इस में सन्देह ही क्या है? अधिकारी का हृदय विदीर्ण हुआ वे बहुत देर तक रोये। नवकुमार

और मथुरानाथ ने उन को बहुत समझाया बुझाया। बड़ी देर बाद पहले से कुछ शान्त हो कर बोले,—

"नवकुमार! कपालकुण्डला का भाग्य बड़ा छोटा है। भवानी ने उसे कभी सुख नहीं दिया। वह लड़कपन ही में वे मा बाप की हो गयी; कहां बाप, कहां मा, कहां घर है, सो सब बसी ने कुछ भी नहीं जाना। तुम्हारे साथ उस को व्याह दिया, सोचा एक दिन बेटी सुख का मुंह देखेगी। परन्तु करम में न होने से क्या होगा, बोलो? सभी कुछ उल्टा हो हुआ।"

नवकुमार चुपचाप रोने लगे। अधिकारी ने कहा, "नवकुमार! अब सोच कर क्या होगा? तुम सच्चरित्र और शान्तव्यक्ति हो। विधाता तुम्हें इतनी दुःख क्यों देते हैं? फिर से व्याह कर संसारी होना तुम्हारा आवश्यक कर्त्तव्य है।"

नवकुमार के मुंह से बात नहीं आती। अधिकारी ने कहा "अहा! उस का जैसा रूप तैसा ही गुण था। सहसा उसे देखने से देवी का भ्रम होता था।"

नवकुमार ने कहा, "कपालकुण्डला का नाम तो जगत् से उठ गया। उस का वृत्तान्त जगत् में कोई नहीं जानता। कपालकुण्डला आप भी अपना वृत्तान्त नहीं जानती थी। आप कुछ उस के विषय में जानते हैं?" लम्बी सांस फेंक कर अधिकारी ने कहा, "यह सब यन्त्रणा भोग करनी थी इसी से भवानी ने हम को सब कुछ जनाया है। मैं सब कुछ जानता हूं।"

नवकुमार ने कहा, "यह सब बातें जानने के लिये समय २ पर मन बड़ा अस्थिर हो जाता है। आज उन बातों की आलोचना की आवश्यकता नहीं है। दूसरे वक्त आप से सब सुनूंगा।

उस रात को अधिकारी वहीं रहे। सवेरे उठ कर उन्हों ने अपने जन्मस्थान को जाना चाहा। नवकुमार ने उस में आपत्ति उपस्थित कर कहा, "जितने दिन आप यहां रहेंगे उतने दिन हम लोग सुखी रहेंगे। आप इस घड़ी जा कर क्या कीजियेगा? वहां कौन है—किस को देखने

जायेंगे ? चार पांच दिन में मैं सप्तग्राम जाऊंगा उसी समय आप भी घर चलियेगा। एक महीने बाद में फिर यहां आऊंगा। आप भी इतने दिन में वहां से लौट आ सकेंगी। इस बार फिर यहीं भेंट होगी।" अधिकारी ने स्वीकार किया।

—:०:※:०:—

चतुर्थ परिच्छेद।

अन्तिम समय।

————Gone to Pluto's reign,
There with sad ghosts to pine and shadows dun."
————Thomson's castle of Indolence.

तीसरे पहर नवकुमार, मथुरानाथ और अधिकारी घूमने निकले। नवद्वीप की दक्खिन तरफ़ घना जङ्गल है। वे उसी ओर चले। दोनों ओर वन से होकर गांव में जाने के लिये एक राह थी; वे लोग उसी राह से होकर जाने लगे। थोड़ी दूर जाने पर पास ही एक आदमी की यन्त्रणा सूचक ध्वनि एक ही समय उन तीनों के कान में पड़ी। वे तीनों चौंक पड़े। घबरा कर उन्हों ने चारों ओर निहारा, पर कुछ भी देख नहीं पाया। यन्त्रणा ध्वनि और ऊंची होने लगी। वे ध्वनि की सीधाई पर उसी ओर चले। दो हो डेग आगे बढ़ कर वृक्षलता की ओर फांफर से देखा कि पास ही एक आदमी दुःख के मारे छटपटा रहा है। वे वृक्षलताओं के बीच राह पैदा कर वहां चले गये। वहां जो देखा उस से अधिकारी और नवकुमार सूख कर सोंठ हो गये। भयानक दृश्य! उन्हों ने देखा—सागर-तीर-वासी, कपालकुण्डला का पालक भैरवी-सेवक, जटाजूटधारी, दुरन्त कापालिक मृत्यु की यन्त्रणा से अधीर हो रहा है। उस का अन्तिम समय उपस्थित है। थोड़ी देर में उस की प्राणवायु देह-राज्य को छोड़ देगी।

इतने दिन तक भैरवी की आराधना कर उस ने क्या पुण्य बटोरा है सो शीघ्र ही वह समझ जायगा। नवकुमार और अधिकारी ने सोचा— कापालिक यहां क्यों आया, एकाएक उस की अब तब की दशा क्यों हो रही है। इन सब बातों की इस समय मीमांसा होने वाली नहीं है। वे कापालिक के सामने आये। कापालिक की दृष्टि उन पर पड़ी। नवकुमार के रोंए कांप गये, खून बड़े ज़ोर से चलने लगा, सब शिराएं कांपने लगीं।

कापालिक का मुंह खिल गया। यन्त्रणा से अधीर कापालिक ने मानो उन को देख थोड़ी शान्ति लाभ की। कापालिक ने उन को बैठने के लिये हाथ से इशारा किया। वे बैठे। कापालिक ने मुंह बाया—उन लोगों ने सोचा वह पानी मांगता है। चट पट मथुरानाथ पानी लाने चले गये और थोड़ी ही देर में एक मिट्टी के वर्त्तन में भर कर पानी लाकर अधिकारी के हाथ में दिया। अधिकारी कापालिक के मुंह में थोड़ा २ कर के पानी पिलाने लगे। पानी पीने पर कापालिक को बोलने की शक्ति हुई। वह टूटी फूटी बातें कहने लगा। कापालिक ने नवकुमार का हाथ धर कर कहा,—

"पाप—ओह! घोर नरक—ज्वलन्त। भवानी क्षमा—असम्भव है······ ए। ओह—नव······क्षमा। कष्ट······जाता हूं······आग २······बचा······ओ······ओ······उह। अब······न······हीं······ई······ई। मा······सन्तान······हूं······ऊं। ओह······क्षमा······तुम······क्षमा······मरा······आ······आ······आ।"

यह कह कापालिक चुप हो गया। फिर मुंह बाने पर अधिकारी ने पानी पिलाया। कापालिक इस वार फिर बोला "ज़िन्दगी······गई। नरक! उपाय क्या है······ए······? ओह! मर······ता······हूं······अब की······उह! नहीं।"

नवकुमार के हाथ से कापालिक ने अपना हाथ छुड़ा लिया और दोनों हाथ जोड़ ऊपर दृष्टि कर कहने लगा,—

"मा ! क्षमा करो......चरण......दो । मरा ! नरक में......नहीं ! स......न्ता...... न......अबोध......अब नहीं । चर......ण । पाप...... कभी ......नहीं......ओह......उह । ओह ! चला......जो । मा......नहीं—जानता......था । अबकी क्षमा...... ओह...... अब नहीं । ओह !"

यन्त्रणाके मारे कापालिक बेचैन हो उठा । छटपटाने लगा । उस की बड़ी २ आंखों में आंसू डबडबा आये । कापालिक की बात करने की शक्ति लुप्त हो चली । कापालिक ने फिर मुंह बा दिया । अधिकारी ने फिर पानी पिलाया । पानी पीकर नवकुमार का हाथ धर कर बोला—"भा......ई नव ! मरता......हूं......जं । रञ्ज......न......हो......क्षमा । " यह कह चुप हो गया । कापालिक बड़ा दुरन्त, दुर्मति था, और उस ने नवकुमार को मर्मान्तिकक्षति पहुंचायी थी, किन्तु तौभी उस की मृत्युयन्त्रणा और नरक की बीभत्समूर्त्ति देख उस को जो अनुताप और क्लेश हो रहा था उसे देख कर नवकुमार का हृदय पसीज गया । वे उंचे स्वर में बोले,—

"मैं ने तुम को क्षमा किया । प्रार्थना करता हूं, भवानी भी तुम्हें क्षमा करें ।" नवकुमार ने ज़ोर से कहा इसी से कापालिक ने सुना, वह फिर बोला,—

"नव—ओह । कपाल -कुण्ड......ला......लक्ष्मी......ई......ई...... स—ती......ई......ई......है......ए । ओह ! मरा......मा ! यशि......पु ......उ......उ...... है । रा......म । ओह......च......ला......खा...... बचाओ । ध......न......वा......न ......भवा......नी......मा......भा...... था ।"

इस बात को साफ़ २ सुनने के लिये नवकुमारी और अधिकारी दोनों हो व्यग्र हुए । अधिकारी ने पूछा "कपालकुण्डला की बात क्या कहते हैं ?"

कापालिक ने बड़े कष्ट से कहा, "हैं......एं......ए......ए......ओह ! सा......क......पाल............ला—" इस के बाद उस के मुंह से कोई बात नहीं आयी । कापालिक कपालकुण्डला का अर्द्धोच्चारित नाम ही उस

की जीवन की शेष बात हो रही। बड़े कष्ट से पापी, अनुतापी, नरक क्लेश-भीत कापालिक ने देह छोड़ दी। उस की गति क्या होगी सो उस ने पहिले ही समझ लिया।

धरती पर विचरनेवाले किसी मानव के संदेह, कल्पित सुख और सन्तोष के आलय, स्वर्ग में—देवताओं के बीच—पहुंचाये जाने पर, ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए पारिजात की मालाओं से शोभित शची के साथ शचीनाथ (इन्द्र) के अथवा किसी दूसरे ही आकाशचारी देवात्मा के सहसा सामने आने पर, प्रात:सूर्य्य के पश्चिम ओर उदय होने पर अथवा नैसर्गिक नियम के वैसे ही किसी परिवर्त्तन के होने पर जैसा अकचकाना पड़ता है, कापालिक के मुंह से कपालकुण्डला के सम्बन्ध की बातों को सुन कर अधिकारी और नवकुमार वैसे ही अकचकाये। कापालिक की सब बातें एकबारगी उटपटांग और बेढङ्गी होने पर भी "कपाल कुण्डला है" यह उस ने साफ़ ही कहा था। दोनों ने इस को लेकर कितना आन्दोलन किया। इस बात को विश्वास न कर एवम् इस के असल भेद का पता पाने में असमर्थ हो कर, दोनों परस्पर एक दूसरे का मुंह देखने लगे। कुछ देर बाद नवकुमार ने कहा,—

"एकदम असम्भव बात है। उस पर कैसे विश्वास किया जा सकता है। मालूम पड़ता है, मरते समय कापालिक ने प्रलाप में यह बात कही है।"

उदास भाव से अधिकारी ने कहा, "इस के सिवाय और क्या हो सकता है?"

इस बारे में उन्हों ने ऐसा सिद्धान्त किया सही, पर उन का मन कुछ और ही कहने लगा। उन के मन में इस बात को सच और अभ्रान्त मानने की इच्छा हुई। मुंह और मन का ऐक्य (मेल) नहीं हुआ।

अधिकारी ने कहा, "कापालिक अब मर गया। इस व्यक्ति का जीवन कितना ही नीच क्यों न हो, पर मैं जानता हूं यह ब्राह्मण है; सुतराम् उस का यथा विधि और सम्भव सत्कारादि करना चाहिए।"

इस बात को सभी ने स्वीकार किया, एवं कापालिक की देह गङ्गा के तीर पर ला, चिता बना, उस को जला दिया। घोर तान्त्रिक कापालिक की देह भस्मावशेष हो गयी। पृथ्वी से उस का नाम और चिन्ह चिर दिन के लिए विलुप्त हो गया।

दूसरे दिन नवकुमार सप्तग्राम और अधिकारी पलासी चले गये। कापालिक की अन्तिम काल की बात किसी के जी से भूली नहीं। वह उन दोनों के हृदयों में विशेष रूप से अङ्कित रही।

पञ्चम परिच्छेद।

प्रेमिका के पास।

" Oh woman ; lovely woman ; nature made thee
To temper man ; we had been brutes without you ;
Angels are painted Fair, to look like you ;
There's in you all that we believe of heaven
Amazing brightness, purity and truth,
Eternal joy, and everlasting love. "

——Ottway.

प्यारी तू शिर-रत्न है, रमणीगण के पाहिं।
द्रवन वारो मानव हृदय, तुम विन थे जड़ माहिं॥
तुम में हैं स्वर्गीय गुण, जेते सुनें विचित्र।
सुषमा उज्ज्वलता भरी, औरो भाव पवित्र॥

पाठक! बहुत दिनों के बाद इस बार, फिर नवकुमार को पद्मावती की बगल में बैठे देखो। अब पद्मावती को "लुत्फन्निसा" कहने की कोई आवश्यकता नहीं। उस नाम से उन का चिरविच्छेद हो गया है।

पद्मावती अपने घर में बैठी पढ़ रही हैं; दो पहर दिन चढ़ा है, घर के सब किवाड़ वगैरह बन्द हैं; घर बड़ा होने के कारण उतना अधिक अन्धकार नहीं हुआ है। पद्मावती एक पलङ्ग के ऊपर तकिये के सहारे विश्राम कर रही हैं, उन के एक हाथ में एक किताब और दूसरे में एक ताड़ का पङ्खा है। पद्मावती एक मन से किताब पढ़ रही हैं और रह २ कर पङ्खा डुला अपनी गर्मी दूर करती हैं। पास ही पानदान में कितने ही पान सज कर रखे हुए हैं। पद्मावती इच्छानुसार एक २ बीड़ा लेकर चाभ रही हैं।

इसी समय घर का एक दरवाज़ा खुला। खुले द्वार से नवकुमार ने प्रवेश किया। पद्मावती सहसा उन को आया देख खुश हो गयीं और सब काम छोड़, बिजली की तरह दौड़ कर उन के पास जा उन को प्रेम-पवित्रआलिङ्गन में बांधा और उसी तरह उन्हें पलङ्ग पर बिठा कितनी ही देर तक पृथ्वी के सभी पदार्थों को भूल कर उस आलिङ्गन में बंधी रहीं।

बड़ी देर के बाद नवकुमार ने पद्मावती की कुशल पूछी। पद्मावती ने नवकुमार के वक्षस्थल से अपना मस्तक हटा कर नवकुमार के प्रश्न का उत्तर दिया। नवकुमार ने देखा पद्मावती की आंखों से ढरके हुए आंसुओं के मारे उन की छाती भींज गयी है।

बहुत देर तक दोनों ने बातचीत कर एक दूसरे का सब हाल जान लिया। अनन्तर, पद्मावती ने कहा, "श्यामा का क्या हाल चाल है?"

नवकुमार ने जवाब दिया, "मैं ने जहां तक देखा उस से मुझे बोध होता है कि अब श्यामा अपनी अवस्था से सन्तुष्ट है।"

पद्मा०—श्यामा और कितने दिन नवद्वीप में रहेंगी?

नव०—मैं और कुछ दिन ठहर जाता तो श्यामा को भी लिये आता, पर तुम्हें देखने के लिए मन व्याकुल हुआ इसी से घबरा कर चला आया। कुछ दिन बाद जाकर श्यामा को लिवा लाऊंगा।

पद्मा०—इस बार कब जाओगी? इस बार जाने लगोगे तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। तुम वहां जाकर डेढ़ दो महीने विताओगे सो नहीं होगा।

नव०—इस बार नवद्वीप में उतनी देरी न होगी। जाते ही श्यामा को ले आऊंगा।

पद्मा तनिक हंसीं। मन में इस बात का जवाब देने के लिए जो भाव उदित हुआ उस को न कह कर, बोलीं, "श्यामा जब वहां अच्छी तरह हुई हैं तब इतनी हड़बड़ी से जाकर लिवा लाने का क्या काम है?"

नव०—यद्यपि वह इस घड़ी सुख से है तौभी बहुत दिन तक वैसा रहना असम्भव है। सौतिन के साथ कितने दिन चैन से रहेगी? और भी विचार कर देखो, श्यामा के घर पर नहीं रहने से हम को कितनी तूल होगी।

नवकुमार की बात सुन कर पद्मावती तनिक अन्यमनस्क हो गयीं। न जाने क्या सोचने लगीं। उन की आकृति गम्भीर हुई। उन्हों ने कहा, "नवकुमार! इस दासी की एक बात सुननी होगी। दासी के प्रति तुम ने आशातीत अनुग्रह किया है। स्त्रियों की आशा की सीमा नहीं होती —तुम्हारे निकट फिर भी प्रार्थना करती हूं।

नव०—क्या कहती हो, निस्सङ्कोच कहो।

पद्मा०—पर तुम को मेरी बात माननी होगी।

नव०—तुम जो कहोगी वही करूंगा, बोलो।

पद्मा०—बात यही है कि तुम को व्याह करना होगा। हमारी यह बात तुम को माननी पड़ेगी। तुम्हारे व्याह कर लेने से मेरे सुख की सीमा न रहेगी। मन की सभी वासनाएं सफल हुई हैं, इस घड़ी इस के सफल होने से मैं चरितार्थ होऊंगी। तुम इस बात को स्वीकार करो। इधर उधर करने से मैं बड़ी दुःखी होऊंगी।

नवकुमार ठीक नहीं कर सके क्या उत्तर दें। बड़ी देर तक चुप रहने के बाद विस्मय से बोले, "पद्मावती! एकाएक तुम्हारे मन में यह बात कैसे आयी?"

पद्मा०—यह बात एकाएक नहीं जन्मी है। और यह बेवजह भी नहीं है। मैं तुम्हारी चरण-छाया की भिखारिणी थी—वह भिक्षा मैं ने तुम से पा ली; उस से भी कहीं अधिक मैं ने पाया है। इस भाग्य में इतना होना बदा था सो सपने में भी नहीं सोचा था। तुम्हारे क्लेश-निवारण की चेष्टा करना मेरा सर्व्वतोभाव से कर्त्तव्य है। तुम्हारा क्लेश मैं किस आंख से देखूंगी? तुम्हारे विवाह करने से तुम्हारे सभी सांसारिक क्लेश दूर होंगे, यह मैं समझ रही हूं फिर किस कलेजे से मैं तुम से उस के लिए अनुरोध नहीं करूंगी?

नवकुमार पद्मावती की बात सुन कर आश्चर्य में आ गये। जिस पद्मा ने स्वामी का प्रेम पाने के लिये कुछ दिन पहले क्या नहीं किया था, उस के मुंह से ऐसी बात सुन कर किसे विस्मय नहीं होगा? बड़ी देर के बाद नवकुमार बोले, "पद्मावती, मैं और व्याह नहीं करूंगा, अब क्या काम है?"

पद्मावती ने कहा, "नाथ! विवाह करने से मैं दुखी होऊंगी, क्या यही आशङ्का किये हुए हो? मैं उस से दुखी नहीं होऊंगी वरन् उस से मेरा सुख बहुत बढ़ जायगा। तुम यदि मेरी चिन्ता में अपने सुख में कांटे बोवोगे तो मुझे सुख न हो कर दुःख ही बढ़ेगा। मैं क्या नहीं देख रही हूं कि त्यागी होने से तुम्हारा कितना अनिष्ट हो रहा है? ऐसी हालत में इधर उधर करना उचित नहीं है। जिस से मैं सुखी हूंगी और तुम्हारा भी मङ्गल होगा वह काम करने में आपत्ति क्या है?"

नवकुमार विस्मित हुए। सोचा क्या ही आश्चर्य है! वही पद्मावती ऐसी हो गयी है। विधाता सब कुछ कर सकते हैं। समय आने पर सब कुछ हो जाता है। कुछ घड़ी बाद बोले, "पद्मावती! तुम नारी-कुल की अलङ्कार हो। तुम मेरी बड़ी हित चाहने वाली हो, तुम्हारी सभी बातें अमृत रस से सींची हुई हैं। तुम्हारा वाक्यामृत पी कर मेरा मन इतना मत्त हो जाता है कि किसी बात का ज्ञान नहीं रहता। यह सोचने विचारने का समय नहीं है, तुम्हारी उस बात का मैं पीछे विचार करूंगा।"

पद्मा०—अच्छा; जो हो, नवकुमार! तुम ने कपालकुण्डला—'कपालकुण्डला' यह शब्द उच्चारित होते ही नवकुमार सिहर उठे। पद्मावती यह देख कर भी कहने लगीं,—

"नवकुमार! तुम ने कपालकुण्डला के बारे में कभी कुछ सुना है?"

एक लम्बी सांस ले कर नवकुमार बोले, "कपालकुण्डला की बात अब कैसे सुनूंगा? उस की अकाल मृत्यु होते ही उस का नाम भी पृथ्वी से उठ गया है। उस के बारे में मैं और क्या कहूं?"

पद्मा०—उस बारे में कभी तुम को सन्देह भी नहीं हुआ?

नव०—कैसे आश्चर्य्य की बात है! पद्मावति! सन्देह क्योंकर होगा? मेरी बात का यदि तुम विश्वास करती हो तो सुनो मैं कहता हूं, कपालकुण्डला मेरे सामने, मेरी आंखों के आगे, मेरे साथ एकत्र नदी तीरस्थ एक खण्ड मृत्तिका के साथ अतल जल में गिर पड़ी हैं। मैं ने जल में डूब कर भी उन को बचाने की बड़ी चेष्टा की पर मेरी चेष्टा विफल हुई। कपालकुण्डला सोते में कहां डूब गयीं उन का पता मैं नहीं पा सका। अन्त में मेरे होश हवास भी जाते रहे।

यह बात कहते २ नवकुमार को पहली बातें याद आयीं। मन में बड़ा शोक हुआ। वे बड़े कष्ट से आंसू रोक बोले, "क्यों पद्मावती! आज ये सब बातें क्यों पूछ रही हो?

पद्मावती ने कहा, "इन सब बातों की आलोचना करने से तुम को दुःख होगा यह मैं जानती थी पर कहे बिना चलनेवाला नहीं था। आज यह सब बातें क्यों पूछ रही हूं सो सुनो।" यह कह पद्मावती ने नवकुमार से अंगूठी का हाल आदि से अन्त तक कह सुनाया।

उन सब बातों को सुनते २ नवकुमार की आंखें डबाडबा आयीं। पद्मावती ने सब बातें कह कर पूछा, "नाथ! इस से तुम क्या समझते हो?"

नव०—क्या समझूंगा? यह मेरी बुद्धि में नहीं आता। मैं अच्छी तरह जानता हूं कपालकुण्डला नहीं है और उस का होना भी असम्भव है। किन्तु मेरे भाग्य की खुटाई है कि मेरे क्लेश का अन्त अब भी नहीं

होता। इसी स समय २ कपालकुण्डला के अस्तित्व के सम्बन्ध में छाया की तरह प्रमाण आ जुटते हैं। वह सब कुछ भी नहीं केवल समधिक व्याकुल करने एवं क्लेश तथा यातना देने के लिये हैं।

पद्मा०—तुम जो कहो, पर मुझे मालूम होता है मानो कपालकुण्डला जीती हैं। जान पड़ता है किसी तरह वे बच गयीं।

नव०—(लम्बी सांस ले) पद्मावति! वह सब कष्टदायक कल्पना क्यों करती हो? मैं बड़ा अभागा हूं। मेरे कष्ट की सीमा नहीं है। दूसरे के भाग्य में वैसा हो तो हो, पर मेरी क़िस्मत में वह वदा नहीं है। दुराशा में क्यों चित्त को बांधती हो? सपने में सुख सम्भोग कर क्या होगा?

पद्मा०—जो हो पर इस के लिये खोज ढूंढ़ करना आवश्यक है।

नवकुमार ने मुंह बिचका कर कहा, "कहां खोज करूं।" नवकुमार ने कह तो दिया "कहां खोज करूं" किन्तु उस घड़ी उन की मन की ऐसी भयानक अवस्था हो गयी थी कि फिर से कपालकुण्डला को देख पाने के लिये वे सब तरह के कठिन से कठिन काम करने को साहस से प्रस्तुत थे। उन का मन एकबारगी चञ्चल हो उठा। उन को संसार कपाल-कुण्डलामय दीखने लगा। और सब पार्थिव भावनाएं तिरोहित हो गयीं। कपालकुण्डला ने उन के चित्त को अधिकृत किया। नवकुमार ने हृदय ढूंढ़ कर देखा [illegible] एक मूर्त्ति – केवल एक मात्र चारुरमणी-मूर्त्ति अधिष्ठित है। वह मूर्त्ति कपालकुण्डला की है। कपालकुण्डला तो कभी हो की मर गयीं, फिर उन की मूर्त्ति आज तक नवकुमार के हृदय में सुचित्रित क्यों है? नवकुमार ने प्रतिज्ञा की थी सारा संसार भूलेंगे, अपने आप को भूलेंगे, पृथ्वी के सभी सुखों [illegible] विसर्ज्जन करेंगे तथापि कपालकुण्डला को कभी अपने हृदय से नहीं हटावेंगे। नवकुमार को वह प्रतिज्ञा भूली नहीं—कभी भूलेंगे यह भी सम्भावना नहीं है। जिस व्यक्ति ने कृतघ्न साथियों के उपकार के लिए निःस्वार्थ भाव से काष्ठ का भार वहन किया था * वही

* "कपालकुण्डला" प्रथम खण्ड द्वितीय परिच्छेद देखो।

अनुवादक।

व्यक्ति जो प्राणदायिनी, हितैषिणी सुन्दरी की मूर्त्ति चिर दिन के लिए सहर्ष चित्त से हृदय में धारण करेंगे, इस में विचित्रता ही क्या है ? नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला की मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। काल के कुटिल प्रभाव से वह मूर्त्ति जगह २ टूट फूट गयी थी पर सम्प्रति स्मृति का रङ्ग भर जाने से टूटे अंग अब संस्कृत और पुनः रञ्जित हो गये हैं। सम्प्रति नवकुमार के हृदय में मोहिनी कपालकुण्डला शोभा विकाश करने लगीं।

इस से पहले कापालिक की मरती बेर की बातों ने कपालकुण्डला के जीती रहने के बारे में नवकुमार के हृदय में विलक्षण सन्देह जन्मा दिया था। आज पद्मावती के मुंह से यह सब बातें सुन कर वह सन्देह और भी दृढ़ हुआ। आशा के प्रभाव से नवकुमार आपे से बाहर हो गये। सब कुछ देने पर भी यदि कोई उन से कहे कि कपालकुण्डला हैं—फ़लानी जगह हैं, तो वे खुशी से देने पर तैयार हो जायंगे। अगर गुलामी क़बूल करने पर भी कपालकुण्डला को देख पावें तो नवकुमार को उस में भी उज़्र नहीं। दहिना हाथ दे कर भी यदि कपालकुण्डला का खोज पता मिले तो वे उस में भी बेरोक हाज़िर हैं।

मनुष्य ही मनुष्य का हृदय देखता है। जिस को देखने आता है वह देखता है, दूसरा नहीं देख सकता। सभी को आंख है—आंख देखने की कल है तब सभी सब के हृदय को क्यों नहीं देख सकते ? इस का उत्तर यही है कि उस में कौशल चाहिये। अभिज्ञता चाहिये। वह कौशल उपदेश द्वारा नहीं सिखाया जा सकता। काल और स्वभाव ने जिसे सिखाया है वही जानता है। आंखें साफ़ चीज़ों के सिवाय और कुछ नहीं देख सकतीं। तब आदमी आदमी का हृदय क्योंकर देख सकता है ? आईने में जैसे सामने की चीज़ की छाया पड़ती है उसी तरह एक प्रकाश्य स्थान में हृदय की भी छाया पड़ती है। वह स्थान मुख है। तुम को क्रोध हो, द्वेष हो, आनन्द हो या मनस्ताप हो, जो देखने वाला है वह तुम्हारा मुंह ही देख कर यह सब जान ले सकता है। पद्मावती ! क्या देख रही हो ? क्या तुम समझ रही हो कि कोई तुम्हारा हृदय देख रहा है ?

नवकुमार कितनी देर तक एक प्राण, मन से पद्मावती के मुँह की ओर देखते रहे। पद्मावती ने जो बातें कहीं वह जी से कहीं कि नहीं मानो यही जानने के लिये नवकुमार पद्मा के मुंह की ओर देखते रहे। उन्हों ने देखा पद्मावती की दृष्टि में पवित्र सरलता विराजमान है, जिस का हृदय कपटी होता है उस की दृष्टि ऐसी होनी असम्भव है। पद्मा जो कुछ कहती हैं सब जी ही से। नवकुमार ने सोचा, " पद्मावती रमणियों में रत्न है। हज़ार कष्ट क्यों न हो, पर पद्मावती के सुख-साधन में जो कुछ की इच्छा होगी करूंगा। " इसी से कहते हैं, " पद्मावती! निश्चिन्त रहो। तुम को डर ही क्या है? तुम्हारा सुख नवकुमार का प्रधान लक्ष्य है। "

नवकुमार बड़ी देर के बाद बोले, " प्रिये! बहुत दिन से उमापति से भेंट नहीं हुई। एक बार उस से भेंट कर आऊं। " यह कह नवकुमार उठ खड़े हुए।

पद्मावती ने कहा, " अभी तुम से बहुतेरी ज़रूरी बातें कहनी हैं। "

नवकुमार ने कहा, " अगर हर्ज न हो तो पीछे ही कहना। "

पद्मावती बोलीं, " बहुत अच्छा। "

नवकुमार चले गये।

षष्ठ परिच्छेद।

वज्रपात।

" सम्भावेन्ता आपनेसुं सहुत्सवेसुं रुआवेन्ता।
हिअच्छिया विअविहवा विरहे मित्तानं उम्मना अन्ते ॥"

मुद्राराक्षस।

जिस विपद में पड़ कर उमापति लापता हो गये हैं उस का हाल पाठक जानते हैं। क्यों एकाएक ऐसा हुआ सो उन के मामा वगैरह नहीं जान सके। उन्हों ने बहुत जगह खोज ढूंढ़ करायी पर कहीं उन का पता

न चला—कोई उन का हाल नहीं दे सका। उस समय हरिहर ने सोचा "ज़रूर वह सप्तग्राम गये हैं।" इसी से दूसरे ही दिन सप्तग्राम आये। वहां उमापति नहीं आये थे। उमापति की मा ने भी सब हाल सुना। वहां विलम्ब न कर हरिहर उमापति की खोज में निकले। दूसरे दिन नवकुमार तीसरे पहर उमापति से भेंट करने गये, पर उन से भेंट नहीं हो सकी, उन की मा से हुई। उन्हीं के मुंह से उन्हों ने भी सब हाल सुना। उन के सिर मानो वज्र घहराया। वे शोक के मारे आंसू न रोक सके। वृद्धा का रोना सुन कर नवकुमार का कलेजा पिघल कर पानी होने लगा। उन से उमापति का अभिन्न भाव था; उस उमापति की ऐसी अनहोनी विपत् की बात सुन कर उन के कलेजे पर गहरी चोट बैठी। उमापति की मा की कातरता देख वे और भी बेचैन हो गये। उन्हों ने कहा, "मा! तुम रोवो मत। डर ही क्या है? मैं अच्छी तरह जानता हूं दैव के फेर में पड़ कर उमापति इस प्रकार विपत् में पड़े हैं। मेरा मन कह रहा है उन का कुछ अनिष्ट नहीं हुआ है। सारी दुनिया छान डालूंगा, जान दूंगा—जिस प्रकार हो, मा, तुम्हारे उमापति को लाकर तुम्हारे हाथों में अर्पण करूंगा। कुछ सोच भय करने का काम नहीं है।"

आंख पोंछ कर वृद्धा ने कहा, "बेटा नवकुमार! तुम युग २ जीवो, भैया तो खोज ढूंढ़ करने में कुछ उठा नहीं रखते हैं। आह! उस के लिए बड़ा डर, बड़ी चिन्ता है। एक लड़का ऐसे ही लापता हो गया, फिर आया नहीं, उस के लिए और सोच है। करम ही छोटा है। नवकुमार! तुम कहां जाओगे? तुम्हारे उमापति में कुछ फ़र्क नहीं है; तुम्हारी विपद के लिए भी तो हमें सोच है।"

बात काट कर नवकुमार ने कहा, "मा! आप का कहना ठीक नहीं; मैं किस तरह निश्चिन्त रहूंगा? आप मेरे काम में रोक टोक न क॰ ।" वृ

कर जवाब के लिए न ठहर कर उन्हों ने उन (उमापति की मा) के चरणों में प्रणाम कर वहां से प्रस्थान किया।

वहां से नवकुमार एक बार पद्मावती के यहां गये। नवकुमार को फिर आया देख पद्मावती प्रसन्न हो गयीं।

नवकुमार ने कहा, "पद्मावति! उमापति का हाल सुना है?"

पद्मा०—नहीं, कुछ तो नहीं सुना।

नवकुमार ने तब सब बातें पद्मा से कह सुनायीं, तदनन्तर बोले, "पद्मावति! कल्ह सुबह हम उमापति की खोज में जायंगे। कितने दिनमें लौटेंगे इस का कुछ ठीक ठिकाना नहीं है। तुम ने जो सब बातें कहने को कहा था उन्हें, यदि जरूरी हो, तो कह सुनाओ।"

पद्मावती खड़ी थीं; सब बातें सुन कर धीरे २ बैठ गयीं। उन के माथे मानो वज्र गिरा। वे अपनी फूटी किस्मत को हज़ार बार धिक्कार देकर बोलीं, "नवकुमार! मैं जानती हूं कि उमापति तुम्हारे प्राणों से भी बढ़ कर प्यारे हैं। उन की विपद तुम्हारी भी विपद है। उन का यह हाल सुन कर तुम्हारा निश्चिन्त रहना ठीक नहीं, किन्तु यह तो बताओ तुम जाओगे कहां? अगर ठीक होता कि फ़लानी जगह जाने से उन से भेंट होगी और वहां जाने से वे बच सकेंगे, तब तो इसी दम चले जाना चाहिए था; किन्तु जब कुछ भी ठीक ठिकाना नहीं, तब तुम क्या करोगे? मैं तुम को कर्त्तव्य कार्य्य से हटाना नहीं चाहती, पर यही कहती हूं कि इस का नतीजा क्या होगा यह सोच लो।"

नवकुमार बोले, "तुम जो कहती हो वह ठीक ही है। किन्तु मैं कैसे चुप रह सकता हूं? तुम यदि उमापति की बूढ़ी मा की कातरता देखतीं तो अवश्य ही मेरी तरह तुम भी अगाड़ी पिछाड़ी भूल जातीं। क्या करूं, और कोई उपाय नहीं है। कल सबेरे ही गोपालपुर उमापति के मामा के

पास जाऊंगा। वहां जाकर अगर कुछ कर सकूंगा तब तो अच्छा ही है, नहीं तो फिर लौट आऊंगा। इस के सिवाय और कुछ उपाय हो तो कहो।"

पद्मावती बड़ी देरतक सोचती रहीं। फिर बोलीं, "तुम्हारे काम में रोक नहीं लाऊंगी। तुम जाओ, ईश्वर तुम्हारी मनसा पूरी करेंगे। ऐसी हालत में निश्चिन्त हो बैठना मित्र का काम नहीं। सहोदर भाई से बढ़ कर प्रिय मित्र के लिए सब कामों में तत्पर रहना चाहिए। जाओ—पर एक बात करना—मुझे भी खबर देते रहना।"

नवकुमार ने फिर सोचा, पद्मावती रमणी-रत्न है। एक बार और भी वे यही सिद्धान्त कर चुके हैं। इस समय वह सिद्धान्त बिलकुल ठीक जान पड़ा। वे बड़ी देर तक पद्मावती का मुखकमल देखते रहे। देखते २ उन की दृष्टि पद्मावती के कलेजे में घुस गयी। नवकुमार ने देखा वहां सरलता और पवित्रता क्रीड़ा कर रही हैं। कौन कहता है पद्मावती कलङ्किनी हैं? जो कहता है उस के साथ नवकुमार द्वन्द्व युद्ध करने को तैयार हैं। नवकुमार ने पद्मा के हृदय में कलङ्क की एक कणा भी नहीं देखी। यह प्रणय का काम ही है—कुछ नयी बात नहीं है।

ग्रीस के लोग प्रणय-देव क्यूपिड * (Cupid) को अन्धा कहते हैं। दूसरे सम्प्रदायों के कोई २ कहते हैं कि प्रणय-दर्शन सोलोमन् प्रभृति सुप्रसिद्ध चश्मा बेचनेवालों के दूरबीनयन्त्रों की दृष्टि की अपेक्षा भी अधिक तीक्ष्ण है। ये दोनों ही विभिन्न मत हैं पर दोनों ही सत्य एवं प्रशंसनीय हैं। एक के मत से प्रणय नितान्त अन्ध और दूसरे के मत से उस का दिव्य दर्शन है। प्रणयी प्रणय-भाजन के पर्व्वत प्रमाण दोष को भी शीघ्र नहीं देखता, किन्तु उस के तिल प्रमाण गुण को ताड़ सा देखता है।

---

* प्रेम के अधिष्ठाता देवता, काम।

अनुवादक।

नवकुमार ने उकता कर पूछा, "पद्मावति ! तुम ने मुझ से क्या कहने को कहा था—कहो ।"

पद्मावती ने कहा, "कहती हूं ।" यह कह इन्हों ने पास के एक सन्दूक से एक बन्द चिट्ठी निकाली । उस पर नवकुमार का सिरनामा लिखा था । चिट्ठी को नवकुमार के हाथ में देकर पद्मावती ने कहा, "थोड़े दिन हुए जहांगीर ने हम को यह भेजा है ।" व्यग्रता के साथ नवकुमार चिट्ठी पढ़ने लगे ।

सप्तम परिच्छेद ।

ढलती रात में ।

"राज-मार्गो हि शून्योऽयं रचिणः सञ्चरन्ति च ।

बहु-दोषाहि शर्व्वरी ॥"

—मृच्छकटिक नाटकम् ।

रात बहुत बीत चुकी है । दो पहर से कम न होगी । गांव सन्नाटा है । केवल रह २ कर कुत्ते, दूर के वृक्षों के खरखराने को अथवा और किसी तरह की आवाज़ सुन कर, बड़े ज़ोर से चिल्लार कर दिङ्मण्डल फाड़ रहे हैं, अथवा कभी २ एकाध पक्षी सहसा खोंते से निकल कर थोड़ी देर के लिये अपनी ध्वनि से प्रकृति की शान्ति भङ्ग कर फिर अपने खोंते में चले जाते हैं । छिन २ पर घुग्घू आदि निशाचर पक्षी, अपने डरावने स्वर से माता की गोद में सोये हुए बालक बालिकाओं के दिल में डर पैदा करते हैं, और बीच बीच में शान्तिरक्षक प्रहरी, ऊंची आवाज़ से पुकार कर अपनी हाज़िरी जनाता हुआ गांव की रखवाली करता है । इस के सिवाय चारों ओर झिल्लियों की झङ्कार और रजनीसम्भूत एक अनियमबद्ध,

युगपत् प्रीति और भीतिजनक शब्द कर्णकुहर में प्रवेश करता है। रात चमचमा रही है। सारे दिन काड़ाचूर मेहनत कर मानवगण इस समय निद्रा की कोमल गोद में विश्राम करते और नाना प्रकार के सुख दुःख-पूर्ण स्वप्न के मोह में अभिभूत हो रहे हैं। कोई अन्न वस्त्र को तरसता हुआ दरिद्र स्वप्न देवी के मोहन मंत्र में मुग्ध हो कर चणिक राजसुख का सम्भोग करता एवं कोई अतुल रत्नराजि-परिवेष्ठित नरपति, फटा घोघ लगाये दरवाजे २ भीख मांग कर अन्न ला कर उदर पोषण करने का कष्ट अनुभव करता है। ऐसे स्वप्न तो किसी पापी, दुराचारी को अनुभूत पूर्व्व सुख से भरे हुए स्वर्ग में पहुंचा देते हैं और किसी पुण्यात्मा को कुम्भीपाक नरक के पूतिपरिपूर्ण ह्रद में डाल रहे हैं। स्वप्न! तुम्हारी महिमा का पार नहीं! तुम सत् को असत् और असत् को सत्, ज्ञानी को मूर्ख और मूर्ख को ज्ञानी, धनी को दरिद्र और दरिद्र को धनी, युवक को वृद्ध और वृद्ध को युवक बना देते हो। तुम्हारी चमता जानी नहीं जाती। रजनी! तुम, तुम्हारी चिर सहचरी निद्रा और उन की कन्या स्वप्नदेवी, तीनों मिल कर संसार को क्या २ रङ्ग नहीं दिखातीं! रजनी की काली चादर से देह ढांक कर कितने ही सङ्गदिल डाकू, निर्द्दयता के साथ दूसरों की जान मारते और उन का माल लूटते हैं। कितने ही दुराचारी अवसर देख हीनप्राणा, असहाया, पतिव्रता सती का सतीत्व नष्ट करते हैं; भयानक भालू आदि खून चूसनेवाले जानवर अपना पेट भरने के लिये इस समय कितने जीवों की जान लेते हैं। रजनी! तुम्हारे आने से बहुतेरे जन विमल शान्ति लाभ करते हैं सही पर और लोगों को ऐसी पाप-प्रवृत्ति क्यों उत्तेजित होती है? संसार में इतना अनर्थ होता है क्यों? नवकुमार सुख से सोये हुए हैं सही, पर उन को नींद नहीं आती। उमापति के लिये चिन्ता करने और कैसे, कहां, उन का पता चलेगा इसी के सोचने में अस्थिर हैं।

कैसी हालत में भी नींद आती है ? नवकुमार अपने मानसनेत्र से उमापति को देखने लगे, मानो वे उन्हें विपद् से छुड़ा कर पुनर्मिलन के कारण जन्मे हुए आनन्द के साथ कितनी ही बातें कहने लग गये हैं। सवेरे उमापति की खोज में जाना था इसी लिये वे तैयार हो सोये हुये थे ; परन्तु नींद नहीं आने के कारण सेज कांटे सी चुभने लगी। न जानें क्या जी में आया सेज़ पर से उठ बैठे। दीये की रोशनी के पास पद्मावती की दी हुई चिट्ठी पढ़ने लगे। उस पत्र का संक्षेप मर्म हम लोग पाठकों को बतला देते हैं :—

"बादशाह जहांगीर बहादुर की ओर से, बन्दा बन्दगी बजा ला कर अर्ज़ करता है कि बावजूदे कि बादशाह को आप से कभी की मुलाक़ात नहीं है, तौभी जहांपनाह आज से आप को अपना दिली दोस्त समझेंगे। अगर आप इस की वजह जानना चाहेंगे तो वह पीछे मालूम हो जायगी। इस वक़् मुहब्बत की निशानी में जहांपनाह की ओर से आप को लाखे-राज़ जागीर देने का इन्तज़ाम हुआ है। इस जागीर से आप को लाख रुपये की आमदनी होगी। आप अगर इस में अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर करेंगे तो बादशाह बहादुर बहुत खुश होंगे। बादशाह को आप का हाल जानते रहने की बड़ी ख़्वाहिश है इस लिये आप उन्हें ज़रूर चिट्ठी पत्री लिखा कीजियेगा। खुदा के फ़ज़ल से जहांपनाह बड़े मज़े में हैं, बहुत जल्द वे आप को चीठी लिखेंगे फ़क़त। तारीख़ २८ वीं रमज़ान।

आप का फ़र्माबरदार,

ग़यासुद्दीन ख़ां *।"

---

* भारत के इतिहास के सभी पढ़नेवाले जानते होंगे कि ग़यासुद्दीन जहांगीर का प्रधान वज़ीर था। यह स्वनामधन्या नूरजहां का बाप था।

नवकुमार ने जितनी बार उस चिट्ठी को पढ़ा उतनी बार उन्हें आश्चर्य्य में डूबना पड़ा। नवकुमार एक सामान्य व्यक्ति और जहांगीर भारत सिंहासनारूढ़ बादशाह हैं! दोनों में इतना फ़रक है! ऐसे धर्म्म, जाति, आचार, मान-सम्भ्रम, सम्पत्ति और क्षमता में भिन्न आदमियों के बीच दोस्ती! नवकुमार को धनी बनाने और उन के साथ दोस्ती पैदा करने के लिये इतनी चेष्टा क्यों है? नवकुमार ने बड़ी देर तक इस विषय की आलोचना की। उन्हों ने पद्मावती का पूरा जीवन वृत्तान्त जान लिया था। उन्हों ने ठीक किया कि पद्मावती के साथ बादशाह का पूर्व्व सम्बन्ध ही इस का कारण है। उस सिद्धान्त से उन के मन में सुख हुआ कि नहीं, सो नहीं कह सकते। बड़ी देर के बाद नवकुमार उठे और चिट्ठी को बिछावन तले रख कर फिर सो गये।

शय्या मानो चिन्ता का घर है। जो कभी भी चिन्ता के फेर में पड़े होंगे वे जानते होंगे कि जिस समय आदमी रात को निद्रा की प्रतीक्षा (इन्तज़ार) में सोता है, राक्षसी चिन्ता उसी समय बहुत दुःख देती है। इस अवसर को उचित जान निशाचरी दुर्भावना ने आ कर नवकुमार को धर दबाया। वे आंख मून्द कर आकाश पाताल एक करने लगे। भावना, क्रोध, हिंसा, शोक प्रभृति का स्वभाव ही यह है कि जब किसी कारण मूल में से कोई एक उद्दीप्त होते हैं उस समय क्रम से उस से लगाव रखने-वाले जितने उस के उत्तरसाधक कारण अब तक हुए हैं वा होते हैं वे सभी मन में आ बैठते हैं। नवकुमार के सम्बन्ध में भी वही हुआ। दुर्भावना-जनक जितने विषय थे सभी याद आने लगे। नवकुमार इसी प्रकार चिन्ता-सागर में डूबे थे कि किसी ने बाहर से पुकारा। शब्द नवकुमार के कान में पड़ा। वे पुलकित हो गये। घबरा कर उठ बैठे। फिर उसी स्वर में किसी ने उन का नाम लिया। ध्वनि नवकुमार की पहिचानी हुई

थी। पुकारनेवाला कौन है सो नवकुमार अच्छी तरह समझ गये। जल्दी २ बिछावन पर से उठे और उस परिचित व्यक्ति से भेंट करने के लिये दौड़ पड़े।

इति चतुर्थ खण्ड समाप्त।

पञ्चम खण्ड।

प्रथम परिच्छेद।

कैदखाने में।

" जातः सूर्य्यकुले पिता दशरथः क्षौणीभुजामग्रणीः।
सीता सत्यपरायणा प्रणयिनी यस्यानुजो लक्ष्मणः॥
दोर्द्दण्डेन समो न चास्ति भुवने प्रत्यक्ष विष्णुः स्वयम्।
रामो येन विडम्बितोऽपि विधिना चान्ये परे का कथा॥ "

—महानाटकम्।

पाठक! उमापति कहां हैं? उन के अदृष्ट में क्या हुआ?—यह सब बात जानने के लिये क्या आप को ज़रा भी इच्छा नहीं है? अगर वैसी इच्छा हो तो आइये।

वे दुष्ट उमापति को बांध कर ले चले। कितनी देर तक वे उन को इस तरह ले चलते रहे, अथवा वे उन्हें ले कर कहां चले, सो सब वे नहीं जान सके। उन के मन की उस समय कैसी हालत थी सो बयान नहीं किया जा सकता। रक्षा की आशा दुराशा जान वे चेष्टा-शून्य हो रहे। मन एकादम चंचल हो गया। चारो ओर से विविध प्रकार की चिन्ताओं ने आ कर उन के हृदय को घेर लिया।

बीच २ में उमापति की देह में लता पता ठेकाता था इसी से उन्हों ने अनुमान किया कि वे उन्हें किसी जंगल के बीच से लिये जा रहे हैं। इस तरह सारी रात उमापति को लिये हुए वे एक जगह पहुंचे और वहां उन को कन्धे से उतारा। इसी समय उस पूर्व्वपरिचित कर्कश स्वर वाले ने कहा, " सुनो, आज इस को उसी घर में रखो। कल्ह जो करना होगा किया जायगा। अब रात नहीं है, जाओ तुम लोग सोओ। और

देखो, अब उस का मुंह बन्द रखने का दर्कार नहीं है। अगर चींचपड़ करेगा तो उसी घड़ी काट डालेंगे, बस क़िस्सा तमाम हो जायगा।" बातचीत सुन कर उमापति ने अनुमान किया कि वही सर गरोह है। अब के, वे सब उमापति को खींच कर पास वाले घर का ताला खोल उसी में ले गये। इस बार उन सबों ने उन का मुंह खोल दिया। बड़े कष्ट से उन की सांस चलती थी, इस से वे बड़ी तकलीफ़ में थे। ज़ोर २ से सांस लेने लगे। उन की बात करने की शक्ति लुप्त होगयी थी, क्रम से वह शक्ति पुनः प्राप्त हुई। इसी समय उन के ढोने वाले जाने लगे। उन को सम्बोधन कर उमापति ने कहा, "इस जगह का नाम क्या है?"

उन लुच्चों में से एक गर्ज कर बोल उठा, "उस से तुम को क्या काम है?" उमापति ने फिर पूछा, "मुझे इस तरह बांधने का क्या कारण है?"

उत्तर—जिस के हुक्म से बांधे गये हो उसी से पूछ कर जान लेना।

उमा०—वे कौन हैं?

उत्तर—हम लोगों के राजा हैं।

उमा०—उन का नाम क्या है?

उत्तर—तुम नहीं जानते? उन का नाम कौन नहीं जानता? तुम कहां रहते हो?

उमापति—सप्तग्राम में।

उत्तर—वहां ऐसा कोई नहीं है जो मेरे मालिक का नाम नहीं जानता हो।

उमा०—नाम बताओ तब जान सकूंगा कि पहचानता हूं कि नहीं।

उत्तर—जान सको या नहीं पर जब तुम्हें मालूम नहीं है तब बताने में क्या हर्ज है?

सबों ने कहा, "हर्ज क्या है?"

पहले ने उल्लाह से कहा, "उन का नाम रहीम है। यह नाम जो नहीं जानता समझना चाहिये कि वह अभी मा के पेट ही में है।"

नाम सुनते ही उमापति ने कपार पर हाथ रखा। उन की जीवनाशा जाती रही। उन्हों ने सोचा, "अब छुटकारा नहीं है। दुरात्मा रहीम! ओः कैसा भयानक आदमी है! मैं उसी की क़ैद में हूं?"

इन दिनों देश में डाकुओं का बड़ा डर रहता था। डाकू सब नाना सम्प्रदायों में बंटे हुए थे उन में यह रहीम का दल बड़ा दुर्द्धष था। उस ज़माने में ऐसा कोई न था जो रहीम का नाम न जानता हो। मा की गोद के बच्चों से ले कर बाल पके हुए बूढ़े तक रहीम का नाम सुन कर कांपते और डरते थे। उन दिनों ऐसी कोई जगह नहीं थी जहां रहीम अत्याचार न करता हो। रहीम के समाज वाले बराबर बेरोक आदमियों की जान और माल नष्ट कर दिया करते थे। उन का उपद्रव कम करने के लिये सरकार ने भी कुछ कोर कसर नहीं की थी। शासनकर्त्ता का तो हुक्म हो ही चुका था कि जो आदमी रहीम का सिर काट लावेगा उसे दश हज़ार रुपया इनाम मिलेगा। इस अर्थलाभ से बहुतेरे लोग रहीम के धरने को यत्न में थे पर कोई कृतकार्य्य नहीं हो सके। इस का मुख्य कारण है कि रहीम का गिरोह हमेशः एक जगह नहीं रहता था। इसलिये कोई उस का पता नहीं पा सकते थे।

उमापति दुरात्मा रहीम का नाम सुन कर सिहर उठे। वे उस सुप्रसिद्ध दुरात्मा रहीम के चङ्गुल में फंसे हुए हैं तब बचाव कहां है? उमापति ने कुछ और बातें पूछने के लिये माथा उठाया पर देखा कि वे सब इस बीच दर्वाज़ा बन्द कर चले गये हैं।

क़ैदखाने की हालत देखने के लिये उन्हों ने एक बार चारों ओर नज़र फेरी, पर घोर अंधियारी में कुछ नहीं देख सके। देखा, वहां हवा आने जाने के लिये एक राह है, उस के सिवाय दूसरी राह भी नहीं है। वह राह भी डाकुओं ने होशियारी से बन्द कर डाली है, पसीने के मारे उन की सारी देह भींग चली। बहुत देर तक मुंह बन्द था। उस के क्लेश एवं विशुद्ध वायु के अभाव-जनितयातना से वे जीते ही मुर्दा से हो चले। भगवान् का नाम लेते २ उमापति ज़मीन पर लेट गये।

———

द्वितीय परिच्छेद।

डाकू के सामने।

" He is the rock ;—the oak, not to be windshaken. "

—Shakespeare (coriolames).

उपल खण्ड अतिशय कठिनाई। कबहुं न मारुत सकहिं हिलाई॥

ऊषा का समागम होने पर अरण्यस्थल ने कैसी शोभा धारण की! थके मांदे कलाधर पीले रङ्ग को विन्यास करने चले, पूर्वाकाश के निचले हिस्से में समुज्ज्वल सहस्रकरधारी, कमलिनी के हृदयवल्लभ सोने का सा रङ्ग धारण कर उदित हुए। रात को जिन पत्तों पर ओस पड़ा था उन में प्रदीप्त हो कर वह (स्वर्ण) आभा, गंभीरसागर-तलस्थ शुक्ति-हृदय-सम्भूत उज्ज्वल मुक्ताओं की शोभा को लजाने लगी। सरसी-शोभिनी सरोजिनी स्मितविकसितानन से प्राणेश्वर प्रभाकर को देखने लगी। मन्द २ सुस्निग्ध वायु के झकोरे से वृक्षशाखा, वनभूषिणी लतिका तथा डंटी के साथ कमलिनी सभी विकम्पित होने लगीं। सुस्वरनिनादी पक्षीगण अपने २ बसेरों से निकल कर कलरव करते हुए आकाश में उड़ने लगे। सब जगह तेज, उत्साह, एवं रमणीयता दीख पड़ने लगी। ऊषाकाल की प्राकृतिक शोभा जो नहीं देखता उस की आंख व्यर्थ, उस का जन्म वृथा है। प्रकृति की प्रकाण्ड पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति परम रमणीयता से पूर्ण है, विशेषत: उस का यह परिच्छेद तो बड़ा ही आश्चर्यमय है। क्रम से वनभूमि उजियाली हुई। एक २ कर के सभी डाकू सो कर उठने लगे। धीरे २ धूप भी खिली। रहीम ने एक पेड़ के साये में बैठ कर सब अनुचरों को बुलाया। उन सबों ने आ कर रहीम को घेर लिया। वे गिनती में २० से कम न होंगे। रहीम ने उन सबों को सम्बोधन कर कहा, " भाइयो! अब यहां ज्याद: देरी करने से हम लोग आफ़त में पड़ेंगे। हमारी तो राय है कि आज ही यहां से अड्डा उखाड़ दिया जाय। तुम लोग क्या कहते हो? "

सब एक स्वर से बोल उठे, " बहो अच्छा होगा, आज ही। "

रहीम ने फिर कहा, "एक काम है। कल्ह हम लोग जिस को धर लाये हैं, उस ने हमारी कितनी बेइज़्ज़ती की है सो तुम लोगों से कह चुका हूं। उस को मारना होगा वह काम इसी दम कर लेना चाहिये। उस को ले आओ।" सभी ने इस में अपनी भी रज़ामन्दी ज़ाहिर की; तीन आदमी उमापति को ले आने चले; केवल एक आदमी इस प्रस्ताव से खुश नहीं हुआ। वह आदमी एकदम चुप रहा। रहीम ने भी यह देखा। उस ने उस को पास बुला कर कहा, "दिलवर! तुम क्या कहते हो? मालूम होता है तुम हमारी राय से इत्तिफ़ाक़ नहीं करते।"

दिलवर ने कहा, "यह कौन सी बात है? कभी मेरी राय आप की राय के ऊपर हो सकती है?"

रहीम ने कहा, "क्यों दिलवर, तुम ऐसी बात क्यों कहते हो? जब से तुम हमारे गिरोह में शामिल हुए तब से बराबर तुम्हारी बात एक ओर और सब की बात दूसरी ओर रहती है।"

दिलवर ने विनय के साथ कहा, "आप की हम पर बेहद मिहर्बानी रहती है।"

रहीम—"तुम्हारा मुंह देखने से जान पड़ता है तुम ने और ही कुछ सोच रखा है, बोलो क्या कहते हो?"

उस डाकू के गिरोह में दिलवर सबों में अधिक बुद्धिमान् गिना जाता था; इसी से हमेशः रहीम हर बात में उस की राय लिया करता था। इसी से आज दिलवर के साथ उस ने विशेष परामर्श किया।

थोड़ी ही देर में डाकू सब वहां उमापति को ले आये। उमापति की मूर्त्ति गम्भीर, शान्त, अकातर और लापरवाह है। उन की विपद का परिमाण विचार कर और उन की मूर्त्ति देख कर विस्मय में पड़ना पड़ता है। मालूम होता है मानो वे किसी ओर भ्रूक्षेप नहीं करते, किसी तरफ़ उन का लक्ष्य नहीं है। उन के चेहरे से विरक्ति टूट पड़ती है। ऐसी विपद में कातर न हो कर वे विरक्त होते हैं यह आश्चर्य की बात है। उन का साहस गया नहीं है, किन्तु किस भरोसे पर वे साहस को अपने हृदय में स्थान दिये हुए हैं, सो वे ही कह सकते हैं।

अवरुद्ध उमापति के आते ही सब की नज़र उन की ओर फिर गयी। उन की कमनीय, निर्भीक कान्ति देख डाकू सब चौंक गये। उमापति की निर्भयदृष्टि एक एक कर के सब डाकुओं पर पड़ी। क्रम से उन की दृष्टि दिल पर भी पड़ी। वे उन की ओर पहचाने हुए की तरह देखने लगे। दिलवर को यह अच्छा न लगा, इसलिये उमापति की ओर से अपना मुंह फेर कर एक पत्ते को टुकड़े २ करने लगा।

इसी समय कड़ी आवाज़ में रहीम ने कहा, "काफ़िर! क्या सोचता है? दुरगा का नाम जप ले, अब देर नहीं है। निर्भीक उमापति ने बेडर हो कर जवाब दिया, "देर नहीं है सो तो मैं जानता हूं, इसलिये करूं क्या? तुम लोगों से मैं दया नहीं चाहता। जो तुम लोगों की दया से जीता है उस का जीवन धिक् है।"

गुस्से में आ कर रहीम ने कहा, "तुम हम लोगों की मिहर्बानी नहीं चाहते, पर तुम पर मिहर्बानी करने जाता कौन है?"

उमा०—तुम लोग मुझे मार डालोगे सो मैं जानता हूं। मैं निःसहाय दुर्ब्बल हूं; इसलिये बचने की कोई उम्मेद नहीं है, पर तुम्हारा भी बचाव नहीं। रहीम, मुझे मार कर दुनिया में तुम पार पावोगे सही पर भगवान् के यहां यह बात छिपी न रहेगी, उस समय तुम्हारी रक्षा न होगी।

यह बात सुन रहीम हो! हो!! कर उठा और व्यङ्ग से बोला, "हिन्दुओं का खुदा कहां? तुम सब तो पत्थर की परस्तिश करते हो और हमलोग उस पर खड़े हो कर पैर धोते हैं।"

विरक्त हो उमापति ने कहा, "तुम मूर्ख हो! इस बात पर तुम से बहस करनी फ़ज़ूल है। मानलो कि हम लोगों का धर्म्म झूठा है, पर तुम लोगों का भी तो धर्म्म है न? उस में भी तो पाप पुण्य का विचार है।"

रहीम ने अब के हंस कर कहा, "काफ़िर! तुम लोगों को मारने में हम लोगों को गुनाह नहीं होता। हम लोगों के मज़हब में है कि जितने ही काफ़िरों को मारो उतना ही सवाब होगा। उतना ही बेशी बहिश्त में मज़ा होगा।"

उमापति ने कहा, "तब फिर जिस काम से सुख और स्वर्ग दोनों मिलते हैं उस में देरी क्यों करते हो ?"

बड़ी देर तक सोच कर रहीम ने कहा, "देखो, किसी ख़ास वजह से आज भर तुम्हारी जान बख़्श दी जाती है ; कल्ह ज़रूर ही तुम्हारी जान कुत्तों की मौत मारी जायगी। तुम्हारी क़िस्मत में अब एक ही दिन जीना लिखा है। इस बीच अपना मन्तर जपो।" यह कह रहीम ने अपने नौकरों को फिर उमापति को उसी घर में रख आने की आज्ञा दी, और अब के उन के हाथ पैर बड़ी सावधानी से बांध देने के लिये कहा। नौकर उमापति को ले गये। रहीम और दिलवर बड़ी देर तक वहां बैठे २ फुस २ बातें करते रहे।

तृतीय परिच्छेद।

टूटे मकान में।

"He is truly valiant that can wisely suffer.
The worst that man can breathe."

———Shakespeare (Timon of Athens).

विपदि धैर्य्य मथाभ्युदये क्षमा।

* * *

प्रकृतिसिद्ध मिदं हि महात्मनाम् ॥

—(हितोपदेशे).

डाकू सब फिर उमापति को घर में रख आये। उन सबों ने उन के हाथ पैर सीकड़ से बांध दिये और बड़ी सावधानी से दरवाज़ा बन्द कर दिया। उमापति ने देखा उन का क़ैदख़ाना एक टूटा फूटा देवमन्दिर है। मन्दिर में एक छोटे से लिङ्गमूर्ति शिव स्थापित थे। एक दर्वाज़े के सिवाय

रोशनी अथवा और कोई चीज़ आने की राह नहीं थी, वह दरवाज़ा भी डाकुओं ने बड़ी सावधानी से बन्द कर दिया था। मन्दिर एकदम अँधियाला और टूटा फूटा था।

उमापति ने भक्ति भाव से देवता के चरणों में प्रणाम किया और कहा, "भगवन्! आप के अदृष्ट में भी इतना कष्ट है? दिन भर में एक बेलपत्र भी आप को पूजा के लिये नहीं दिया जाता; भोगादि की बात तो अलग रहे। दुष्ट म्लेच्छधर्म्मावलम्बी मुसल्मान सर्वदा आप के मन्दिर में घुस कर उसकी पवित्रता नष्ट करते हैं। देव! उसे आप कैसे चुपचाप सह लेते हैं? यह सब काल का माहात्म्य है! आप का दोष नहीं। घोर कलि के प्रभाव से देवदेवी पृथ्वी को छोड़ कर दिव्य लोक में विश्राम कर रही हैं। अब इस पत्थर की मूर्त्ति से आप का कोई सम्पर्क नहीं—बहुत दिन हुए आप इसे छोड़ चुके हैं। किन्तु देवादिदेव इस में सन्देह नहीं कि आप भी साधारण शङ्का से शङ्कित हैं। वसुन्धरा को पाप में डूबी हुई और पुण्यभूमि को मुसल्मानों से भरी देख कर आप लोग संसार के पालन, रक्षण से अलग हो गये हैं, तब प्रभो! अब हम लोगों की कौन गति होगी? आप लोगों के छोड़ देने पर हम लोग किस की शरण लेंगे? भगवन्! हम लोगों का तो अब निस्तार नहीं।"

कुछ देर चुप रह कर वे फिर बोले, "आप से ये सब बातें कहने से इष्ट सिद्धि की सम्भावना बहुत कम रहती है। अदृष्ट में जो है सो तो पहले ही से ठीक हो चुका है; इस घड़ी हज़ार रोने गाने से आप लोग उस में फेर बदल नहीं कर सकते, 'विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्त्तते।' तब फिर क्यों? बेफ़ायदे दिन रात रोने से भी परिणाम के परिवर्त्तन होने की सम्भावना नहीं। कलिकाल में मनुष्य की मुक्ति के निमित्त जो उपाय कहा गया है, वही होगा, किसी तरह उस में घट बढ़ नहीं होने की। इस लिये चुप रहना ही सब से अच्छा है।"

क्रम से दो पहर हुआ। प्रचण्ड सूर्य्यत्ताप से बाहर जो काण्ड हो रहा है सो उमापति नहीं जान सकते। समय २ पर किसी दस्यु का कण्ठस्वर

अथवा हास्यध्वनि उन के कर्णरन्ध्र में प्रवेश करती है। साथही छायासेवन के लिये डाल पर बैठे हुए कौवे बीच २ में गम्भीर और धीमी आवाज़ से बोल उठते हैं; यह आवाज़ भी उमापति के कान में जाती है। मन्दिर की दीवार पर दो बिछौतें आमने सामने खड़ी हो कर सहसा एक दूसरे की ओर दौड़ीं। दोनों जब नज़दीक हुईं तब आक्रमणकारी ने अपने प्रतिद्वन्द्वी की ओर मुंह फेर पूंछ टेढ़ी कर "टिक् टिक्" की आवाज़ की। आवाज़ उमापति के कान में गयी। पर यह सब दृश्य हृदय में प्रवेश नहीं कर सके। क्यों? उमापति इतने दुचित्त क्यों हो रहे हैं? इस का एकमात्र उत्तर यही है कि उन को निदारुण चिन्ता व्याप रही है। मृत्यु के खुले हुए मुंह को अपने माथे पर देख कर कौन निश्चिन्त रह सकता है? आत्मीय, बन्धु, बान्धव और स्वदेश से बिछुड़ कर इन पापाचारी डाकुओं के हाथ, अनजाने वन में मृत्यु होगी, इन से निस्तार पाने की आशा करनी दुराशा है, यह याद कर किस का होश नहीं उड़ जायगा? कौन निश्चिन्त रह सकता है?

उस निर्जन कैदखाने में बैठे उमापति अपने अदृष्ट की चिन्ता करने लगे। कल ज़रूर मरना होगा, इस की बात सोचने लगे। उस समय के आने में कितनी देर है इस की बात सोचने लगे। वे उद्विग्न हो कर उस समय के आने की प्रार्थना करने लगे। सोचा, "अब क्यों? मौत के मुंह से जब बचना हुई नहीं है तब फिर देर करने का क्या काम? जितनी ही जल्दी हो उतना ही अच्छा है। यह अवस्था बड़ी क्लेश कर है इस की अपेक्षा मृत्यु अवश्य ही अच्छी है।" इस तरह सोच विचार करते २ वे सिहर उठे। अपनी वृद्धा, स्नेहमयी रोती बिलखती जननी की मूर्त्ति उन के स्मृतिपट पर अङ्कित हुई। दिल बहुत दुख गया। मन चञ्चल हो गया। उमापति को अपने जी में मरने की कुछ परवाह नहीं है; अगर यही बात होती तो जिस घड़ी दुरात्मा रहीम ने उन के मारने की आज्ञा दी थी, उसी घड़ी से वे बेहोश रहते। वे अबतक अवश्यभावी मृत्यु के वास्ते कातर नहीं हुए। जो होना है वह तो होवेहीगा। जिस काम में किसी तरह फेर बदल नहीं हो सकता उस के लिये उन्हों ने कभी कातरता नहीं प्रकाशित की। इस समय मा की बात याद आने से वे

पहले की अपेक्षा अधिक कातर हुए। अपनी मां के वे एकलौते पूत हैं। उन्हें उन (उमापति)के सिवाय और कोई सन्तान नहीं है। तिस पर उन की उमर बुढ़ौती की है। इस घड़ी अपने एकलौते पूत से बिछुड़ कर उन को कैसा भयानक क्लेश हुआ होगा, यही सोच कर उमापति सिहर उठे। उन की मृत्यु की खबर पा कर उन की मा की कैसी भयानक अवस्था होगी उमापति उसे कल्पना की आंख से साफ़ २ देखने लगे। उन का हृदय जलने लगा। आंखों से दर २ आंसू की धार बहने लगी। थोड़ी देर बाद उमापति ने "विधातः! तुम्हारी जो इच्छा" कह कर एक लम्बी सांस ली। चिन्ता की हालत ही यही है कि ज़रा भी विराम नहीं रहता। गुरुतर चिन्ता का कोई कारण होने से उस के साथ ही उसी प्रकार की सैकड़ों चिन्ताएं आ जुटती हैं। अनजानते ही में उमापति के हृदय-कन्दर में मुक्तकेशी की मूर्त्ति आविर्भूत हुई। इस मूर्त्ति की याद आते ही उमापति का चित्त व्याकुल हो गया। प्रणय अमूल्य है। जो प्रणयी हैं वे जानते हैं कि प्रणय पार्थिव पदार्थ नहीं प्रत्युत स्वर्गीय-सामग्री है वे ही कह सकते हैं इस रत्न का क्या मोल है। उमापति के माथे के ऊपर उन के आगे में धार दार तलवार झूल रही है, आज की रात बीतते ही उन की देह दो टुकड़े हो जायगी; तथापि इस अवस्था में मुक्तकेशी के सोच में उन का मन डूब गया। मुक्तकेशी के सम्बन्ध में कितनी चिन्ताएं उन के हृदय को व्यथित करने लगीं इस का ठिकाना नहीं। मुक्ता का जो मुख-कमल उन को आनन्द रस में डुबाता था आज वही मुंह याद आ कर उन को यातना देने लगा। उमापति मुक्ता के प्रेम का परिमाण सोचने लगे; समझा वह असीम है। जिस मुक्ता का प्रेम इतना पवित्र, इतना अधिक है मुझ से चिरकाल के लिये विरह होने से उस मुक्ता को कितना घोर कष्ट होगा यही सोच कर वे और भी व्याकुल हुए। कल्ह उन की जीवित देह मुर्दों की संख्या बढ़ावेगी यह सोच कर उनको जितना कष्ट नहीं हुआ था, उस से कहीं बढ़ कर कष्ट यह सोच कर हुआ कि उन के बिना मुक्ता को कितना दुःख होगा। इसी समय भावनाप्रवाह

अवलम्बन कर प्रियवयस्य नवकुमार भी उमापति के चित्तसागर में आये। सब कुछ दे डालने पर भी, प्राण के बदले नवकुमार से एक बार भेंट होने को सम्भावना होती उमापति उस के लिये भी तैयार हैं। किन्तु वे अपनी मा अथवा मुक्तकेशी से भेंट करने के इच्छुक नहीं हैं, क्योंकि वे औरत हैं। उन लोगों का हृदय हज़ार ऊंचा होने पर भी उन के अथवा नवकुमार के हृदय के समान नहीं हो सकता। विपद आने की सम्भावना से जो रमणियां शोक विह्वला हो जाती हैं, ऐसी घोर विपद आयी देख उन के मन में कैसी यातना पैदा हो सकती है। क्रम से रजनी ने सारे संसार को ढंक लिया। उमापति यह नहीं जान सके, उन का इन सबों की तरफ़ ध्यान नहीं है। अगर ध्यान रहता तौभी जिस कोठरी में वे बन्द हैं, उस में तो दिन रात दोनों बराबर ही हैं। विशेषतः वे चिन्ता में मग्न हैं। देखते २ रात ज्यादा बीतने लगी, उमापति चिन्ता से दुःखित हो पड़े। उन्हों ने सोच कर देखा, इस आसन्नमृत्यु के हाथ से बचने का कोई उपाय नहीं, अतएव जब तक जीऊंगा तब तक धधकती चिन्ताग्नि हृदय को जलावेगी। यह असह्य है, इसलिये जितनी जल्दी मृत्यु हो उतना ही कुशल है। यही सोच, वे मृत्यु को आने के लिये आह्वान करने लगे। वातुल! मृत्यु क्या तुम्हारी आज्ञा के अधीन है? क्या तुम जब बुलावोगे तभी वह आवेगी और जब निषेध करोगे तभी चली जायगी? उमापति ने एक लम्बी सांस ली। उन से चिन्ता सही नहीं गयी। मृत्यु को नहीं आयी देख वे हताश्वास हो गये और कोई उपाय न देख वे बार २ ऊषा समागम की प्रार्थना करने लगे, किन्तु आज सभी उन से फिरन्ट हैं; दुःख का दिन स्वभावतः ही बड़ा जान पड़ता है। उमापति ऊषा के निमित्त इतनी प्रार्थना करने लगे तौभी ऊषा नहीं आयी। उन को वह रात अनंत जान पड़ने लगी। फलतः रात जो आज है कल्ह भी वही थी, कुछ उमापति को क्लेश देने के लिये बढ़ नहीं गयी है। उन का हृदय दुःख दण्ड से मथित होता है इसी से उस रात का शेष नहीं जान पड़ता और सुखसागर में डुबकी लगाने वालों के लिये वही रात क्षणस्थायी जान पड़ती होगी।

संसार की यही गति है। जब जो जिस अवस्था में रहता है, समस्त पार्थिव पदार्थ—क्या भौतिक, क्या मानुषी, एकदम से सभी उस की उस अवस्था का प्रतिपोषण करते हैं। उमापति के सम्बन्ध में भी वही हुआ।

इसी समय धीरे २ मन्दिर का द्वार खुला। उमापति ने घबड़ा कर उस ओर दृष्टि निक्षेप किया। देखा—खुले द्वार से एक आदमी मन्दिर में आया। उत्सुक हो कर उन्हों ने उस से कहा, "क्या भोर हो गया? अहा! मुझ को लेने आये हो? धरना नहीं होगा—मैं आप ही चलता हूं।" आनेवाले ने उमापति के पास जाकर मृदुस्वर से कहा, "चुप रहो; कुछ डर नहीं। तुम को मैं धरने नहीं आया हूं, मेरे साथ आओ।"

उमापति ने व्यग्र हो कर कहा, "कहां जाना होगा?"

आगन्तुक ने कहा, "जहां मैं कहता हूं! इस में तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं होगा।"

उमा०—मेरा जो अनिष्ट हो रहा है उस से बढ़ कर अनिष्ट होना असम्भव है। मैं उस शंका से शंकित नहीं हूं।

आ०—अच्छा, मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें छुड़ाऊंगा।

उमापति चौंके। सोचा यह चालबाज़ी है। फिर सोचा मैं पूरी तरह से उन के कब्जे में हूं। मेरे साथ चालबाज़ी करने का क्या काम है? तब इस आदमी के साथ जाने में क्या हर्ज है? और कुछ हो या न हो पर इस वायुविहीन मन्दिर के बाहर तो हो जाऊंगा। यही सोच वे बोले, "चलो।"

आनेवाला आगे हुआ। उमापति ने उस का अनुसरण किया। यह आदमी दिलवर है। उस ने उमापति की जान बचाने का संकल्प किया था, इसी से उस ने रहीम के कान में सलाह दी थी जिस में बन्दी की मृत्यु कालूह हो। बन्दी को छुड़ाने में उस का क्या मतलब है सो हम लोग अभी नहीं कह सकते। उमापति और दिलवर अविश्रान्त-भाव से वनभूमि अतिक्रम कर चलने लगे। बड़ी देर तक चल कर थक गये। विश्राम लेने के लिये एक जगह बैठ गये। इसी समय पूर्व्वाकाश

में प्रातःसूर्य नजर आये । दिलवर ने कहा, "चलो, तुम को वन की राह से बाहर कर आऊं।" दोनों फिर चलने लगे। एक पहर दिन चढ़ने पर वे वन अतिक्रम कर एक प्रान्तर (पांतर) में पड़े। प्रान्तर के ऊपर पार्श्व में एक छोटा सा गांव दीख पड़ा। उमापति ने खुश हो कर कहा, "सामने यही गोपालपुर है। यहां मेरे मामा का घर है। अहा !!!" दिलवर ने निश्चिन्त भाव से कहा, "हां ठीक यही गांव गोपालपुर है अब तुम जा सकते हो, मैं जाता हूं।"

उमापति ने कृतज्ञता भरे स्वर से कहा, "तुम—अह! आप कहां जायंगे ?"

दिल०—मैं फिर अपने गिरोह में जा मिलूंगा।

उमा०—आप से सत्पुरुषों का डाकुओं के गिरोह में न रहना ही अच्छा है।

दिलवर ने तनिक हंस कर कहा, "ऐसा होने से तुम खुश होवोगे ?"

उमा०—बहुत ही सन्तुष्ट होऊंगा।

दिल०—अच्छा, वही होगा। मैं फिर डाकुओं के गिरोह में न जाऊंगा।

उमा०—तब इस समय कहां जाइयेगा ?

दिल०—दूसरी जगह, कुछ काम है।

उमा०—दो दिन बाद जाने से नहीं होगा ?

दि०—क्यों ?

उमा०—कृतज्ञता भरे हृदय से अपनी जान बचानेवाले को सब को दिखला देता।

दि०—तुम्हारी वह उम्मीद पूरी होगी।

उमा०—कैसे ?

दिल०—फिर भेंट होगी।

उमा०—कहां ?

दि०—तुम्हारे घर।

उमा०—मेरा घर आप जानते हैं ?

दिल०—जानता हूं।

उमा०—कब भेंट होगी ?

दि०—बहुत जल्द।

उमापति का मुख हर्षोत्फुल्ल हुआ। उन्हों ने कहा, "क्या अपने बचानेवाले का नाम भी अभी नहीं सुन सकता हूं ?"

"मेरा नाम ? मेरा नाम सुनोगे ? जरूर सुन सकोगे। सुनोगे क्यों नहीं ? मेरा नाम दिलवर है।"

यह कह उत्तर की अपेक्षा न कर दिलवर ने कहा, "तुम बेख़ौफ़ चले जाओ। खुदा हाफ़िज़ है। बहुत जल्द फिर मुलाक़ात होगी।" यह कहते २ दिलवर बन में अदृश्य हो गया। उमापति कितनी ही देर तक उस ओर देखते रहे पर उस को देख नहीं सके। लाचार बड़ी तेज़ी के साथ गोपालपुर की तरफ़ चले।

चतुर्थ परिच्छेद।

प्रणयिनी के सामने।

Absence makes the heart growfonder
—H. Bayley.

संगम विरहवितर्के वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः
(रसमञ्जरी)

हरिहर फिर उमापति को पा कर कितना आनन्दित हुए सो वर्णन के बाहर है। उमापति ने उन को सब बातें सुनायीं। सब सुन कर उन्हों ने आज ही घर जाने को कहा। जाती बेर एक बार भट्टाचार्य्य महाशय से भेंट कर लेने के लिये भी कहा। दोनों मामा-भाञ्जे ने इकट्ठे बैठ कर भोजन किया। खा पी चुकने के बाद थोड़ी देर आराम कर उमापति ने मामा को प्रणाम कर बिदाई ली।

पाठक ! उमापति के जाने के पहिले ही चलो हमलोग भट्टाचार्य्य महाशय के घर की हालत देख आवें।

दिन ढल गया है, मालकिन दुचित्ती सी बैठी हुई हैं। उस दिन सवेरे ही उमापति आये, यह बात अब तक उन के कान में नहीं गयी है। वे बड़े ही सोच में हैं। उमापति का लापता होना ही उन की चिन्ता का कारण है। मुक्तकेशी कहां है? इस प्रकोष्ठ में मलिना, शुष्कमुखी और विषसा मुक्तकेशी बैठी क्या सोच रही है? यौवनोन्मुखी बालिका के हृदय का प्रणय कैसी आश्चर्य्यिक सामग्री है! जिस दिन, जिस दण्ड बालिका ने प्रणय को हृदय में स्थान दिया, उसी दिन, उसी दण्ड से संसार उस की आंख में नयी तरह से चित्रित हुआ। उस का हृदय आनन्द में डूबता उतराता है। सबचीजों में उस को नया २ आमोद दीख पड़ता है। बालिका की आंख में उसी दिन से संसार अविश्रान्त आमोद की जगह जान पड़ता है। मुक्तकेशी प्रणय-सागर में पड़ी है। उस ने मन ही मन उमापति को पति बना लिया है। लज्जाशीला बालिका ने मन का यह दुर्द्दर्सनीयभाव छिपा रखा था। सोचती थी कदाचित् उस की आशा फलवती नहीं होगी, किन्तु विधाता ने उस की ओर आंख उठा कर देखा। उमापति के साथ उस का व्याह ठीक हुआ। मुक्ता के सुख की सीमा न रही। उस की देह की सुन्दरता और बढ़ गयी। सुख की अटारी पर जितनी दूर चढ़ा जा सकता है वह उतनी दूर तक ऊपर गयी, किन्तु अब विधाता उस के प्रति विमुख हुए। जिस समय उस का हृदय आनन्द से उछल रहा था उसी समय सहसा उमापति के ग़ायब हो जाने की ख़बर उस के कान में पड़ी। सुख की अटारी टूट गयी। सुखसमुद्र-विहारिणी बालिका सहसा विषाद-सागर में गिरी। आशा की जड़ शिथिल हो गयी। फिर उस ने सुना उमापति समग्राम में भी नहीं हैं तब तो वह पगली सी हो गयी। जहांतक हो सका उस ने अपने मन का वेग रोका। उस का वैसा भाव देख लोग क्या कहेंगे, जाने पर मा बेशर्म समझेगी, इसी डर से मुक्तकेशी ने यथा साध्य मन का क्लेश दबा रखा। लोग जानते कि उस के मन में कुछ चिन्ता नहीं है। किन्तु इस घड़ी वह अकेली बैठी हुई है, इस से कुछ डरने का कारण नहीं है। अच्छा अवसर देख चिन्ता ने

एकाएक उस को ग्रास कर लिया। इसी से मुक्तकेशी इस घड़ी इतनी उदास है। सोच के मारे उस का मुंह सूख कर खोंठ हो गया है।

इसी समय उमापति ने उस कमरे में प्रवेश किया। मुक्तकेशी नीचे मुंह किये चिन्ता में डूबी हुई है, इस से वह उन का आना नहीं जान सकी। उस ने एक लम्बी सांस ले कर कहा, "प्राणेश्वर, उमापति! तुम कहाँ हो? तुम कहीं क्यों न रहो, सुख से और निरापद रहो। इस दासी की भाग्य में जो विधाता ने लिख दिया है वह तो होहीगा।" यह कह मुक्तकेशी ने सिर उठाया; ज्योंही माथा ऊपर किया त्योंही उस के मुंह का भाव बदल गया। उस पर आह्लाद की ज्योति छिटकी। उस ने देखा, सामने उस के हृदयेश उमापति खड़े हैं। प्यासी चातकी ने मानो स्वाति की बूंद पायी। मुक्तकेशी की निर्जीव देह में जीवन-सञ्चार हुआ। उमापति बोले :—

"मुक्तकेशी! मैं ने तुम्हारी बात सुनी है। मैं अबतक अन्धेरे में था; सोचता था कि कदाचित् तुम मुझे प्यार नहीं करतीं। आज वह सन्देह दूर हुआ। मुक्तकेशी! मैं कैसा सुखी हूं! तुम को जिस के सुख दुःख के लिये चिन्ता रहती है, उस का जन्म सार्थक है। तुम और सोच संकोच मत करो मैं तुम्हारा ही हूं।

प्रसन्नता से खिले फूल की भांति मुख किये मुक्तकेशी ने धीरे २ पूछा, "तुम इतने दिन कहां थे?"

उमापति ने थोड़े ही में उत्तर दिया।

मुक्त०—मा से भेंट हुई है?

उमा०—हुई है।

मुक्त०—वे हम दोनों को एक साथ बैठा जान क्या सोचती होंगी?

उमा०—प्रिये! दो दिन बाद जिस के साथ बात न करने पर लोग दोष देंगे, दो दिन पहिले उस से बात करने में हर्ज क्या है? जोहो, मैं आज घर जाऊंगा। तुम निश्चिन्त रहो, जल्द फिर आऊंगा। यह कह उमापति बाहर हुए। ब्राह्मणी से बिदा मांग, व्यस्त हो चल पड़े।

पञ्चम परिच्छेद

परिचय।

"नहीं है दखल बन्दों को खुदा के कारखाने में।"

——सबा।

उस के दूसरे दिन उमापति और नवकुमार उमापति की मा से बात चीत कर रहे हैं। पाठकों को मालूम है, चौथे हिस्से के उपसंहार में, नवकुमार को किसी ने पुकारा था। पुकारने वाले उमापति थे। रात के समय घर आ कर उमापति ने माँ से सुना कि आज सुबह में नवकुमार उन की खोज में जायंगे। इसी से झटपट उमापति नवकुमार को खबर देने गये।

इस समय वे दोनों एक साथ बैठ कर कितनी ही बातें कर रहे हैं। नौकर ने सम्वाद दिया, एक आदमी उन लोगों से भेंट करने के लिये बाहर खड़ा है। दोनों बाहर आये। उमापति ने देखा सामने दिलवर खड़ा है। उस को देखते ही उन्हों ने उसे तरीके से सलाम किया और कहा, "नवकुमार! इन्होंने ही मेरी जान बचायी थी; इन्हीं का नाम दिलवर है।"

नवकुमार ने दिलवर को सम्बोधन कर कहा, "आप ने हम लोगों का कितना उपकार किया है सो कहा नहीं जा सकता। हम लोग आप का नाम इष्ट मन्त्र की तरह जपा करेंगे"।

दिलवर ने कहा, "वह बात मत कहिए। मैंने जो कुछ किया है वह उपकार नहीं कहा जा सकता। लहू मांस की देह धर कर कौन वैसा किये बिना रह सकता है?"

उमापति ने नवकुमार को दिखला कर दिलवर से कहा, "महाशय! आप इन्हें नहीं जानते? ये मेरे बड़े हितचिन्तक बन्धु हैं। इन का नाम नवकुमार बन्द्योपाध्याय है।"

बड़ी देर तक सोच में डूब कर दिलवर ने कहा, "महाशय! आप कभी मेदिनीपुर गये थे?"

नव०—बहुत दिन हुए हिजली से घर आते समय रास्ते में एक रात मेदिनीपुर की सराय में ठहरे थे। क्यों यह किस लिए पूछते हैं?

दिल०—उस घड़ी आप के साथ एक स्त्री थी, मालूम होता है वह आप की स्त्री रही होंगी।

नव०—हां! वह सब आप ने कैसे जाना?

दिल०—वे सब बहुत बातें हैं, कहता हूं सुनिए। आप बड़े भले मानस हैं आप की स्त्री की चाल चलन और भी अच्छी है। उस दिन सांझ को एक पालकी जा रही थी, उस में आप की स्त्री थीं, थीं न? हम लोग दल के दल वहीं थे। सब डाकुओं ने मिल कर उस पालकी को छीन लेना चाहा। मैंने कहा पालकी ले कर क्या करोगे? देखते नहीं इस के साथ कुछ भी नहीं है। बे फायदे पालकी छीन कर क्या होगा? डाकू सब हम पर बिगड़े। उन सबों ने कहा, "तुम क्या नजूमी हो कि चटपट जान गए कि उस के साथ कुछ भी नहीं है?" यह कह सभी पालकी रोकने के लिए उठे, इसी बीच एक और सजी हुई पालकी आयी। इस में भी एक औरत ही थी। वह पालकी का दरवाज़ा खोल कर बैठी हुई थी। उस की शान शौकत की पोशाक देख डाकुओं का मन ठिकाने न रहा। उस वक्त उन सबों को रोके कौन? उन सबों ने बिना कुछ कहे सुने पालकी पर धावा किया और उस में जो कुछ था सब ले लिया। उस औरत को जान से नहीं मार कर सिर्फ़ कस कर बांध दिया।

नव०—(आश्चर्य से) ठीक कहते हैं। उस के बाद ही हम वहां आ पहुंचे थे।

दिल०—जी हां आप को आवाज़ से पहचान रहा हूं। शायद आप की स्त्री का नाम कपालकुण्डला है?

नव०—हां।

उमा० - वह क्या रईस ही का दल था?

दिल०—रहीम का गिरोह नहीं तो और क्या? उस का गिरोह सब जगह घूमता है। आज कल उस गिरोह के लिए जैसा कड़ा सरकारी हुक्म जारी हुआ है उस घड़ी वैसा नहीं था; जो हो, और भी सुनिये। उस के दूसरे दिन सुबह को राह में कपालकुण्डला की पालकी नज़र आयी। उस वक्त आप लोग घर आ रहे थे। रहीम ने हुक्म दिया, "पालकी रोक लो" उस वक्त तक आप की स्त्री के हाथ में एकाध गहना था। मैंने कहा, "अगर उस के गहने ला दूं तो पालकी रोकने की क्या ज़रूरत है?" उन सबों ने कहा, "अगर ला दे सको तो नहीं रोकेंगे" यह बात सुन मैं एक बड़ा गरीब भिखमंगा बना और पालकी के पास जा कर कुछ भीख मांगी। उन्हों ने कहा, "मेरे पास कुछ भी नहीं है"। मैं ने उन के हाथ का गहना दिखलाया। उमापति सुन कर चौंकोगे, एक हाथीदांत के डिब्बे में बहुतेरे क़ीमती जड़ाऊ गहने रखे हुए थे, वह सब और हाथ के कड़े तक निकाल कर उन्हों ने खुशी से मुझे दे दिये। मैं तो हक्का बक्का सा हो गया। इस के बाद मैं गहने ले कर चम्पत हुआ। डाकू सब मुझ पर बड़े खुश हुए। रहीम ने कहा, "ये सब गहने दिलवर को मिलेंगे" किसी ने इस में इनकार नहीं किया। उसी दिन से गिरोह में मेरी इज्ज़त बढ़ गयी। रहीम मुझे बहुत चाहने लग गया। बिना मेरी राय लिये कोई काम नहीं करता था। डाकू सब कहते थे दिलवर क्या जानता है! जो कुछ हो, आप की बीवी यह सब सुन कर बड़ी तअज्जुब होंगी। वे अच्छी तो हैं?

नवकुमार ने लम्बी सांस ले कर कहा, "उन की मृत्यु हो गयी।" उदासी भरी आवाज़ से दिलवर ने कहा, "उन का इन्तकाल हो गया?" मैं उन गहनों को हिफ़ाजत से रखखे हुए था कि फिर कभी भेंट होगी तो उन्हें लौटा दूंगा।

इन सब बातों को सुनते २ उमापति बड़ी देर से दिलवर के चेहरे की तरफ़ देख रहे थे। यह देख दिलवर ने कहा, "क्या देखते हो?"

उमा०—मुझे आप पहचाने हुए से जान पड़ते हैं। दाढ़ी वगैरह से

आप का भेष बदल गया है पर तोभी मालूम होता है कि मैं आप को जानता हूं।

दिलवर थोड़ा मुसकुराये। नवकुमार ने कहा, "हमलोग आप के बड़े [illegible] हैं। जो हो, पर ऐसे ऊंचे और साधुप्रकृति के आदमी हो कर भी [illegible] ऐसे डाकुओं के गिरोह में मिले, सो समझना मुश्किल है।

उमा०—मुझे जान पड़ता है कि आप डाकू नहीं हैं।

दिल०—(हंस कर) तब क्या हूं?

उमा०—आप भलेआदमी हैं। क्यों डाकुओं के गिरोह में आये, सो नहीं कह सकता।

नव०—आप क्या मुसल्मान हैं? बात चीत के ढंग से तो वैसा नहीं जान पड़ता।

दिल०—जी हां मैं मुसल्मान नहीं, हिन्दू-ब्राह्मण हूं।

नव०—ब्राह्मण! और मुसल्मान डाकू का साथ?

उमा०—तब आप का नाम दिलवर नहीं है, आप को अपना असली नाम बतलाना होगा। मालूम होता है कि मैंने आपको ठीक पहिचाना है। कण्ठस्वर मेरा अच्छी तरह से सुना हुआ है। नाम नहीं कहने से भी मैं—

दिलवर ने आंख में आंसू भर कर उमापति की बात काट कहा, "उमापति! जब पहचान गये हो तो छिपाने की चेष्टा नहीं करूंगा किन्तु सावधान! किसी से यह भेद खोलना नहीं। (नवकुमार से) महाशय मेरा नाम गोपालकृष्ण राय है—मैं उमापति का भाई हूं। यह भेद मैं जल्द नहीं खोलता पर जब उमापति के मन में सन्देह जन्मा तब सब बात साफ़ २ कहे बिना बड़ी क्षति होती।

उमापति की आंख से आनन्द के आंसू की धार दर २ बहने लगी। गोपाल ने उन की पीठ पर हाथ रखा और फिर तुरत ही उन का हाथ धर कर कहा, "भाई! कभी सोचा नहीं था कि फिर भी कभी ऐसा दिन आवेगा किन्तु भाई! इस घड़ी स्थिर होवो। मैं अब भी निर्व्विघ्न नहीं हो सका।

हूं। आंख के आंसू पोंछ डालो। देखो, कोई कुछ जानने न पावे नहीं तो फिर मुझे नहीं देखोगी।

उमापति ने झट आंखें पोंछ लीं। गोपाल ने फिर कहा, "मैं सब बात शुरू से कहता हूं। सुनने पर जानोगे क्यों इतना सावधान होने को कहता हूं। देखो कहीं कोई है तो नहीं? महाशय सुनिये, मैं लापता हुआ सो तो आप जानते हैं पर कैसे हुआ सो नहीं जानते। मैं वहीं से कहता हूं। मैं ज़रूरी काम से दूसरे गांव में जा रहा था। राह नाव की थी। रात को नाव एक गांव के पास थी, मैं प्रातः कृत्य करने के लिये तीर पर आया। तीर पर घना जङ्गल था—वह इतना घना था कि उस के भीतर क्या है सो नहीं जाना जा सकता था। मैं जिस समय वन के पास आया उस समय बन के भीतर से आदमी के गले की सांय सांय आवाज़ मेरे कान में पड़ी, इस घने जंगल में, ऐसे समय, कौन, कैसे आया और क्या कहता है यह जानने के लिए मेरे मन में बड़ा कौतूहल हुआ। मैं और पास जा कर सुनने लगा। जो कुछ सुना उस से मेरा होश ही हवास जाता रहा। वे बहुत बातें हैं उन का मतलब यही है कि कल्ह रात को डाकुओं ने पास के किसी धनी का सब कुछ ले कर उस को उस की स्त्री के साथ २ धधकती आग में जला दिया और उस के अनबोलते लड़के को ज़मीन में पटक कर मार डाला। इस बारे में वे अपनी २ बहादुरी दिखा कर आमोद, आह्लाद प्रकाश कर रहे थे। मेरी सारी देह कांप उठी। समझा ये सब बड़े कट्टर डाकू हैं। मैं हक्का बक्का सा हो कर वहीं बैठ कर सोचता और उन की और बातें सुनता था इसी समय एक डरावनी सूरत वाला डाकू आ कर मुझ पर टूटा और बोला, "तुम ने मेरी सब बातें सुनी हैं? सच बोलो"। मैंने कहा, "हां।" दूसरी बात न कह कर वह आदमी मुझे पकड़ कर ले चला। मैं भी लाचार बिना जीभ हिलाए उसके साथ चला। सोचा, उसके लिए हाथ के छूरेसे मुझे चोट पहुंचाना सहज है। वह मुझे दल में ले आया। एक ने पूछा, "यह कौन है?" वह आदमी रहीम था। जो मुझे ले गया था उस ने सब बातें कह

दीं। रहीम ने कहा, " उसे मार डालो " एक बार ही मेरे माथे पर दो तीन आदमियों की तलवारें चमचमाने लगीं। मैंने रो कर कहा, " मेरी एक बात सुन लो, तब जो अच्छा जान पड़े करना। " रहीम बोला, 'कहो' मैंने कहा, "मैंने तुमलोगोंकी सब बातें सुनी हैं सही किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस का भण्डा नहीं फोड़ूंगा"। रहीम बोला, "मुझे इस पर इतमाद नहीं"। मैंने कहा " मैं अब कभी बस्ती में न जाऊंगा। " तुम लोग जो कहोगे सो करूंगा। तुम्हीं लोगों का हो रहूंगा"। रहीम थोड़ी देर बाद बोला, " तुम को हम लोगों के साथ रहना होगा। हम लोगों की हांक दाब सहनी होगी। हम लोग जब जहां जांयगे तब तुम्हें भी वहां जाना पड़ेगा; हम लोगों का सा पहिनाव रखना होगा। अगर यह सब मानो तो जांबख्शी होगी "। मैंने लाचार हो कर वह सब शर्तें कबूल कीं। उसी दिन से मैं डाकू हुआ। मन में एक आशा रही कि शीघ्र ही किसी उपाय से इन का भण्डा फोर कर छूट जाऊंगा। पहले तो वे मुझे बड़ी तकलीफ़ देते थे। सब बोझ मेरे ही सिर थोपते, अपना भात मुझे खिलाने के लिए दिक् करते और सभी मुझ से घृणा करते थे। पर कुछ दिन बाद ख़ास कर उस दिन से जिस दिन मैंने बेतरद्दुद कपालकुण्डला के गहने ला दिये, मेरी तकलीफ़ बहुत घट गयी। उन सबों में किसी की भी बुद्धि तेज़ नहीं थी। मेरी सलाह से सहज ही बहुतेरे काम कर लेते इस से कुछ दिन में मेरी उन पर बड़ी हांक धाक जम गयी। मैं इस बीच अनायास ही भग कर घर आ सकता था, पर उस से बुरा छोड़ भला नहीं होने का था क्योंकि ज़ोर जुल्म कर के डाकुओं ने मेरा पता ठिकाना जान लिया था। मैं भाग आता तो बचता ही नहीं साथ २ मेरे सम्बन्धी भी जाते। इसी से मैंने भागने की कोशिश नहीं की। क्रम से मैंने डाकुओं की सब रीति-नीति अच्छी तरह जान ली। उन की रहन सहन से भली भांति अवगत हो गया। सोचा था इसी समय भाग कर झटपट विचारालय में सम्वाद दूंगा; पर उस में भी एकाध दिन की देरी होने से विपद होगी यही सोच मैं वह भी नहीं कर सका, इसी समय मैंने अपनी मुक्ति के लिये एक और उपाय

निकाला। बात ही बात में मैंने डाकुओं को कहा कि मेरा घर सप्तग्राम के पास वाले गोपालपुर में नहीं बरन् वीरभूमि में एक गोपालपुर नामक गांव है, वहीं है। क्रम से उन सबों ने मेरी इस बात पर भी पूरा विश्वास कर लिया। मुझे सभी मानने लगे। इसी बीच उमापति वाला मामला हुआ। मैंने तुम्हें अच्छी तरह पहचान लिया पीछे मुझे इस बात का बड़ा डर हुआ कि कहीं तुम मुझे पहचान न लो। पर तुम मुझे पहचान न सके। सोचा यही भागने का मौक़ा है। तुम्हें छुड़ा कर भाग आया हूं सही पर जब तक उन्हें नहीं पकड़ा दूंगा तब तक हम लोग निरापद नहीं हैं। सावधान, कोई कुछ जानने न पावे। एक ही दो दिन में मैं उन्हें पकड़ा देने का साहस रखता हूं। जब तक भण्डाफोर न होगा तब तक हम लोग निश्चिन्त नहीं होंगे "।

नवकुमार ने आश्चर्य से कहा, "भण्डाफोर करने में देर क्यों हो रही है?"

गोपाल०—हमलोगोंके भाग आने के बाद वे कहां गये इस का ठिकाना नहीं। मैं ने खोज कर देखा वहां वे सब नहीं हैं। कहीं क्यों न रहें मैं जल्द जान लूंगा। मैं इस घड़ी इतनी बात नहीं कहता पर आप लोग जब मुझे पहचान गये तब सब बातें कह कर सावधान नहीं कर देने से ख़राबी होती इसी वजह से इतना कहा है। जो कहा वह बहुत थोड़ा है इस के बाद अगर ऐसा दिन भगवान् दिखावेंगे तो एक २ दिन की बातें कहूंगा जिसे सुन आप लोगों को आश्चर्य होगा। उमापति! अब इस घड़ी विदा होता हूं मन में कुछ चिन्ता न लाना। भाई! भय क्या है? शीघ्र आऊंगा, किसी से कुछ कहना नहीं। महाशय! नमस्कार! इस वक्त तो अब चला। उमापति! घर पर सब मंगल तो है?

उमापति बोले, "सब जीते जागते तो हैं पर आप बिना सभी मरे से हो रहे हैं।"

गो०—भाई! दैव किसी के आधीन थोड़े हैं? विधाता दुःख देने को हैं तो कौन उसे रोकेगा? बस, अब चला। और बातें दूसरे वक्त होगी। सोच मत करो। बड़ी देरी हुई। यह कह उत्तर की अपेक्षा न

कार गोपाल उद्दिग्नास मे चले गये। उमापति ने उन से कितनी ही बातें को पूछना चाहा था पर वह हो नहीं सका। वे दोनों (उमापति और नवकुमार) चित्र लिखी पुतली की तरह बैठे रहे।

पञ्चम खण्ड समाप्त।

षष्ठ खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

रोगिनी के पास ।

"Causa latet visest notisima."*—ovid.

नवकुमार, उमापति, पद्मावती प्रभृति सभी सुख से दिन बिताने लगे। गर्मी के बाद वर्षा बीत गयी, वर्षा के बाद शीत भी बीता, शरद् के बाद हेमन्त भी चला गया—ये लोग सभी आनन्द से दिन काटते गये। यदि संसार में सुख है तो वे लोग सुख ही से कालातिपात करने लगे। पर संसार में जो सुख गिना जाता है वह कितने दिन ठहरता है? कौन कह सकता है कि वह चिर सुखी है? जो कहते हैं कि मैं (उन्हों) ने यह भी नहीं जाना कि दुःख किसे कहते हैं, हम लोग निश्चय कह सकते हैं कि उन्हों ने कभी सुख का मुंह भी नहीं देखा—वे यह भी नहीं जानते सुख किस चिड़िये का नाम है। सुख में उन्हें सुख नहीं है, वे दारुण दुःखी हैं। जिस ने जिन्दगी भर में मांस अथवा उसी प्रकार के अन्य किसी उपादेय द्रव्य के सिवाय और कुछ नहीं खाया उस को रसना उस के खाने से तृप्त नहीं होती—वह उस का उपादेयत्व नहीं जान सकता। अगर कोई शाकाहारी कभी एक दिन उसे खाय तो वह उस के उपादेयत्व अनुमान कर सकता है।

जगत में सभी कामों में सुख है, सभी कामों में सुख नहीं भी है। आज जो काम बड़े आराम का जान पड़ता है अगर वही काम दस दिन करना पड़े तो वह बड़ा कष्टकर प्रतीत होगा सुख का लक्षण स्थिर करना, अथवा किस में सुख है यह निर्णय करना, हम लोगों की सामर्थ्य से बाहर है। जगत् में सुख है कि नहीं सो भी हम लोग नहीं कह सकते। यह हम लोग अवश्य ही जानते हैं कि जिसे लोग सुख कहते हैं वह यह है—यह

---

* The cause is secret but the effect is known.

कारण अज्ञात है उस का फल प्रत्यक्ष है। अनुवादक।

नहीं। मनुष्य आशा-बन्धन में बंध कर क्रमशः सुख की चेष्टा में मारा मारा फिरता है, पर यह हस्तगत हो हो कर नहीं होता। मायामय मृगतृष्णा की तरह सुख दिखाई देता है पर पास नहीं आता। सुख की यही प्रकृति है। इस निदारुण यन्त्रणा पूर्ण-संसार में मनुष्य समय २ पर अन्यान्य सभी क्लेश कर विषयों को भूल कर आनन्द करता है। अगर कुछ सुख है तो हम लोग कहते हैं। वही आनन्द है। पर यही सुख कै घड़ी ठहरता हैं? जगत् में कौन सदा सुखी है? किस का हृदय एक दिन भी दुःखदण्ड से मथित नहीं होता? संसार विरागी, पुण्याश्रमी, यति तपस्वियों ने भी संसार में यन्त्रणा भोगी हैं। मा के पेट से निकलते ही कोई संन्यासी नहीं होता। संसार के विविध असहनीय क्लेशों को देख कर ही वे लोग सुख की आशा से संसार त्याग करते हैं इस में सन्देह नहीं। अतएव संसार में कोई सदा सुखी नहीं। रोग, शोक, अभाव, मान, यश और आकांक्षा प्रभृति नाना कारणों से आदमी सदा दुःखी रहता है। इन सबों से कभी आनन्द भी जन्मता तो वह बहुत देर तक आ नहीं ठहरता। नवकुमार प्रभृति सभी उसी क्षणिक आनन्द से आनन्दित थे; किन्तु आनन्द से चिरस्थायी होने का नहीं। उन लोगों के आनन्द में विघ्न पड़ा—पद्मावती बीमार हुई। चलिये पाठक, हम लोग देख आवें पद्मावती को क्या हुआ है।

पद्मावती बीमार हैं। चार दिन से वे बीमार पड़ी हैं। बीमार कुछ ऐसी वैसी नहीं है। ज्वर—पर विषम ज्वर है किस कारण पद्मावती एकाएक इस प्रकार कठिन ज्वर से पीड़ित हुईं सो दूसरा नहीं जानता, किस समय, क्यों पीड़ा हुई सो जानना सहज नहीं है। अवश्य ही किसी शारीरिक नियम का उल्लङ्घन हुआ होगा नहीं तो ऐसा क्यों होता? नवकुमार ने पद्मावती से ज्वर का कारण पूछा था किन्तु उन को सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। चिकित्सक ने आकर रोगिनी को देख मुँह लटका दिया। जाती बेर नवकुमार के कान में कह गये, "रोग का रंग अच्छा नहीं दीख पड़ता।" सुनने के बाद से नवकुमार चिन्तित हो गये, मुंह सूख गया।

ढाई पहर दिन चढ़ा होगा, पद्मावती का ज्वर उतर रहा है। वे छटपटाती और यन्त्रणा सूचक ध्वनि करती हैं। चार लौंड़ियां उन की सेवा सुश्रूषा कर रही हैं। धूप न आने पावे इसी लिये कमरे के सब दरवाज़े बन्द कर दिये गये हैं। सहसा एक दर्वाज़ा खुला। उस से नवकुमार भीतर आये। सब की नज़र उसी ओर चली गयी। पद्मावती ने भी करवट फेर कर देखा। नवकुमार की आंखों के साथ पद्मा की आंखें मिल गयीं, चार आंखें होते ही उन के होठों पर मधुर हंसी आयी। उनके चेहरे का भाव बदल गया। मानों जो कुछ क्लेश, यन्त्रणा थी वह उसी घड़ी दूर हो गयी। धीरे २ आ कर नवकुमार बीमार की सेज के पास बैठ गये। उन्हों ने देखा इन चार दिनों में पद्मावती बहुत दुबली हो गयी है—उन का रङ्ग पीला हो गया है। इन्दीवर नयन डबडबाये हुए हैं। पद्मावती ने नवकुमार की देह पर अपना एक हाथ दिया। एक हाथ से नवकुमार ने पद्मावती का प्रक्षिप्त हस्त धारण किया और दूसरा हाथ पद्मा के ललाट पर रख कर कहा,—"पद्मा! तुम्हारी देह से पसीना छुट रहा है। मालूम होता है तुम्हारा ज्वर उतर रहा है।"

पद्मा बोली, "होगा, पर बड़ी तकलीफ़ हो रही है।"

नवकुमार बोले "और दो एक दिन कष्ट सहना होगा फिर अच्छी हो जाओगी। बोलो क्या करूं?"

अब पद्मा नवकुमार के चेहरे की तरफ़ देख कर ज़रा हँसी। और कहा, "तुम से यह किस ने कहा कि मैं अच्छी हो जाऊंगी?"

नवकुमार ने कहा, "क्यों पद्मा, यह तो मामूली बीमारी है इस में डर क्या है?"

पद्मा ने कहा, "नवकुमार! डर तो नहीं है। डर कैसा? मृत्यु का? वह डर मुझे नहीं है। फिर भी आदमी को अपने शरीर की अवस्था स्वयं जितनी मालूम रहती है हज़ार बुद्धिमान् होने पर भी दूसरा कोई उतना नहीं जान सकता। नवकुमार! मेरी बीमारी सहज है और मैं जल्द अच्छी

हो जाऊंगी यदि ऐसी आशा किये हो तो उसे छोड़ दो।" नवकुमार ने एक लम्बी सांस ली।

पद्मावती ने कहा, "तुम दुःखित होते हो? सो तो मैं नहीं जानती थी। मैंने यह बात यही सोच कर कही थी कि तुम मर्द मानुस हो तुम लोगों में सहिष्णुता हम लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है; अगर जानती कि तुम उदास हो जाओगे तो कभी नहीं कहती। जो होने वाला है वह होगा उस के लिये उद्विग्न क्यों होते हो?

पद्मावती नवकुमार के मन का भाव ताड़ गयीं और उसी घड़ी से रोग यातना को यथासाध्य गोपन करने की चेष्टा करने लगीं। नवकुमार की ओर पद्मावती ने देखा उन का चेहरा सूखा और उदास है। बातचीत का सोता बदलने के लिये उन्होंने कहा, स्वामिन्! "मेरी तुम से एक प्रार्थना है।" उत्सुक हो नवकुमार ने पूछा, "क्या कहती हो? निःसंकोच कहो।"

पद्मावती ने कहा, "मैं ज्ञानहीना हूं नहीं जानती मैं जो कहूंगी वह कर्त्तव्य है कि नहीं। मैं जो कहती हूं उस को तुम्हीं विवेचना कर लेना। अगर वह करने योग्य हो तो करना, नहीं तो कुछ काम नहीं है।"

नवकुमार ने कहा, "अच्छा, वही सही। बात कहो क्या है?"

पद्मावती ने कहा, "मैंने बादशाह जहांगीर से प्रार्थना की थी कि इस ज़िन्दगी में एक मरतबः और उन से भेंट करूंगी। इस घड़ी वही इच्छा प्रबल हुई है। यदि आपत्ति न हो तो बादशाह को ख़बर भेजिये।" नवकुमार कुछ देर तक चुप रहे। युगपत् कई तरह की चिन्ता-तरङ्गों ने उन के हृदय-जलधि को आच्छन्न किया। उन्हों ने सोचा, "पद्मावती की यह इच्छा कुछ बुरी नहीं है। जिस को एक दिन पद्मा ने अपना मन दिया था उसे एक दम भूल जाना असम्भव है। पद्मावती का चित्त तो मैं जानता हूं। यद्यपि वह इस घड़ी आईने की तरह साफ है तौभी पूर्व्वस्मृति कहां जायगी? स्मृति-प्राबल्य से पद्मावती को ऐसी इच्छा हुई यह कुछ अनुचित नहीं है। फिर भी इस भेंट से हर्ज क्या है। पद्मा के मन में मालिन्य

जन्माना असम्भव है। तब फिर क्यों उस की बासना में व्याघात पहुंचाऊं। यही सोच उन्होंने कहा,

"पद्मा! यही बात! यह तो अच्छी बात है! अवश्यही आदमी ख़बर ले जायगा। किन्तु वे आवेंगे कि नहीं इस में सन्देह है।"

पद्मा०—आवेंगे। कैसे आवेंगे सो मैं कहती हूं। पत्र लिखना तो उस में लिख देना कि पद्मावती बीमार है। रुग्ण शय्या पर पड़कर वह चाहती है कि एकबार बादशाह से भेंट हो, पर वह चल फिर नहीं सकती। सुतरां बादशाह के अनुग्रह करने के सिवाय और कोई उपाय उस की इच्छा पूर्ण होने की नहीं है।

नवकुमार बोले, "वही होगा। यही सब बातें लिखूंगा।"

पद्मा०—नाथ! जितना ही जल्द सब काम खतम हो उतनाही अच्छा है। मैं आप से प्रार्थना करती हूं कि अगर यह बात तुम्हें पसन्द आयी हो तो देरी न करना ही अच्छा है। नवकुमार ने कहा, "मैं जाकर चिट्ठी लिखता हूं। अभी यह काम ख़तम कर डालता हूं।" यह कह नवकुमार पद्मा से बिदा हुए।

द्वितीय परिच्छेद।

व्याकुलचित्त से।

" मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्
विकृतिर्जीवित मुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठतेश्वसन्,
यदि जन्तुर्ननुलाभवानसौ ॥२॥
अवगच्छति मूढ़चेतसः
प्रियनाशंहृदि शल्यमर्पितम् ॥
स्थिरधीस्तुतदेवमन्यते
कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥२॥

———रघुवंशम्। "

पद्मावती को बीमार पड़े कितने ही दिन बीत गये उन की बीमारी की हालत दिन २ खराब हुई जाती है। आज सांझ को पूर्व्वोल्लिखित चिकित्सक पद्मावती को देख गये। थोड़ो ही देर में नवकुमार ने रुग्णा के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। जो कमरा पद्मावती के भली चङ्गी रहने के समय आनन्द की रश्मि से चकाचकाता था, जो कमरा पद्मावती के अध्ययन, रचना, चित्र कार्य्य प्रभृति काम करने का प्रियतम स्थान था, जहां पद्मा ने स्वीय प्रकृतपरिचय ज्ञानहीन स्वामी के हृदय में प्रेम सञ्चारित करने के लिए उन की विविध विनय, वाक्यों से खुशामद कर, अन्ततः उन का चरण धर कर रोदन किया था और उस काम में कृतकार्य्य न हो कर गर्व्व से आंखें तड़ेर कर खड़ी हो अपना परिचय दिया था, जिस जगह, बड़े कष्ट से पद्मा ने अपने स्वामी के प्रेमहीन विशुष्क हृदय को प्रेममय एवं सरस कर, उन्हें आलिङ्गन कर उन के हृदय को आनन्दाश्रु में गोते खिलाये थे, जिस प्रकोष्ठ में पद्मा ने अपने आराध्य नवकुमार के संग कई दिनों

तक स्वर्ग सुख अनुभव किया था, आज उसी प्रकोष्ठ—आनन्दमय प्रकोष्ठ में नवकुमार ने विषण्ण वदन से प्रवेश किया। उस प्रकोष्ठ की अब वैसी रौनक़ नहीं है। एक के हीन तेज होने से सभी तेजहीन हो गये हैं।

रुग्णा पलङ्ग पर सोयी हैं। पास ही काठ की चौकी पर एक शमादान जल रहा है, पर तौभी सब अन्धियाला सा जान पड़ता है*। नवकुमार जा कर रोशनी के पास खड़े हुए। उन के पैर की आहट रुग्णा के कान में पड़ी। उन्हों ने करवट बदली दोनों की चार आंखें हुईं। पद्मावती के मुख पर हंसी दीख पड़ी। पर वह हंसी उन की स्वाभाविक हंसी नहीं है। नवकुमार की तृप्ति के लिये इस अवस्था में भी पद्मा हंसी। नवकुमार ने पूछा, "पद्मावती! इस घड़ी कैसी हो"? बड़ी धीमी आवाज़ में पद्मावती ने कहा, "अच्छी हूं।"

इस जगह भी पद्मावती ने असल बात छिपायी। सुनने पर कहीं नवकुमार के दिल को चोट न पहुंचे। इसी से रोग किस प्रकार उन को देह गला रहा है सो उन्होंने प्रकट नहीं किया। नवकुमार सब समझ गये। चिकित्सक जिस समय पद्मावती को देख कर जा रहे थे उस समय उन से नवकुमार की भेंट हुई थी। उन्हों ने नवकुमार से कहा था, "रोगिनी की हालत बड़ी ख़राब है। कल हफ़्ता ख़तम हो गया, भय का दिन गया किन्तु इस सप्ताह में यदि विशेष यत्न न किया जायगा तो विपद होगी। कड़ी दवा दी है पर कुछ भी बीस से उन्नीस होता नहीं दीख पड़ता।"

नवकुमार पद्मा के सेज के पास बैठ गये। नजाने किस अस्वाभाविक शक्ति के बल से पद्मा उठ बैठीं। नवकुमार ने उन को धर लिया।

---

* इस का भाव निम्न लिखित कविता से मिलता है :—

Tender is the night,
And happy the green moon is on her throne
Clustered around by all her starry fays,
But hurl there is no light (अनुवादक)

पद्मा ने माथा हिला कर उन को छाती पर रख दिया। उन की एक आंख ढंक गयी, दूसरी आंख से वे नवकुमार के मुंह की ओर देखती रहीं। दोनों चुप; दोनों ही के हृदय में एक आंधी प्रवाहित हो रही थी। क्या है? उस वक्त मन में बातों का क्या ठौर ठिकाना था? नवकुमार शोक विकलित नेत्र से देखने लगे यह, जो सम्मोहिनी मूर्त्ति मेरे हृदय मन को प्रेम की डोरी में मज़बूती से बांधे हुई है वह चिरकाल के लिये विलीन हो जायगी। उन्हों ने और भी देखा, पद्मा के सुगोल नवनीत विनिन्दित कोमल गालों की वह शोभा दूर हो गयी है, उन पर जगह २ दाग़ पड़े हैं और वे पचक भी गये हैं। उन की आंख तले कालिमा छाये हुई है। होठों का रंग गुलाबी की जगह उजला हो गया है। उन की नारी-चरित्र-सुलभ गर्व पूर्ण समुज्ज्वल देह शोभा, जिस में उन की आत्मा की अमानुषी बुद्धि की ज्योति दिप्यमान थी,-इस घड़ी वैसी नहीं है।

नवकुमार की देह में रक्त बड़े वेग से बहने लगा वे अब और स्थिर नहीं रह सके। बड़ी व्यग्रता के साथ पद्मावती को धारण कर बार २ उन का मुंह चूमने लगे। क्लेश-संरचित मनोवेग शिथिल हुआ सुतरां नवकुमार की आंखों से दर २ आंसू की धारा गिरने लगी। नवकुमार की व्यग्रता देख पद्मावती ने ईषत् व्याकुलित स्वर से कहा, "रोओ नहीं; शङ्कित क्यों होते हो? न जाने परिणाम में क्या होगा इस का कुछ ठिकाना है? तुम्हारे संसर्ग से मेरा सब क्लेश दूर हो गया है मैं इस घड़ी पवित्र सुख भोग कर रही हूं। इस समय शोक त्याग करो।"

यह बात कहते २ पद्मा की आंखों से टपक कर कई बूंद आंसूओं ने नवकुमार की छाती भिंगो दी। नवकुमार ने उन्मत की तरह पद्मा के मुख की ओर देखा—विस्मय के साथ देखा पद्मा इस वक्त भी हंसने की चेष्टा करती हैं। पद्मा ने नवकुमार की छाती से अपना सिर उठा कर एक तकिये पर रख दिया। नवकुमार ने प्रचण्ड शोकाग्नि को बुझाने की चेष्टा की। पर वह क्या सहज है? बीच २ में एक लम्बी सांस, और अंगों का हिलना, हृदय के प्रचण्ड शोक-प्रवाह का परिचय देने लगा।

देर तक चुप रहने के बाद नवकुमार ने कहा, " पद्मा ! मनुष्य की यही गति है। अदृष्ट का यही भेष है ! यह घटना साधारण, सर्व्वव्यापी है, इस को कोई दया नहीं ! जो होना है वह होवे होगा, किस की सामर्थ्य है जो उसे रोके ? तुम्हारी पीड़ा इस घड़ी तक तो असाध्य नहीं हुई है। मन की अस्थिरता और व्याकुलता से मैंने जैसा उद्वेग प्रकाश किया है वैसा तो ज़रा भी कुछ चिन्ह नहीं दीख पड़ता। ईश्वर करें तुम्हारी बीमारी बढ़े नहीं ! ऐसा होने से तुम अवश्य अच्छी हो जावोगी। तुम्हारी बीमारी तो उतनी कुछ कड़ी नहीं है, डर किस बात का ? "

नवकुमार ने मन की बात नहीं कही। मन में जो समझ रखा था उसे पद्मा को ढाढ़स देने के लिये छिपा रखा।

पद्मा ने कहा " डर क्या है ? कुछ भी नहीं। बीमारी सहज हो या कठिन, उस से डरने से कैसे चलेगा ? मौत से डरने से क्या आदमी उस से छुट जाता है ? कभी नहीं। तब क्यों ? "

पद्मावती के मुंह से ऐसी साहस भरी बात सुन, नवकुमार का वैसा चञ्चल हृदय भी कुछ साहसी हुआ। प्रियजन का क्लेश देख हृदय में दारुण वेदना होती है परन्तु वह प्रियजन किसी अप्रतिविधेय विपद में पड़ कर यदि स्वयं कातर न हो और धीर धरे रहे तो अवश्य ही तज्जनित चिन्ता कुछ न कुछ कम हो जायगी इस में सन्देह ही क्या है ? विशेषतः विधाता के बनाये एक सुन्दर नियम सर्व्वदा संसार में विराजमान रहता है— मनुष्य ज्यों २ मृत्यु के निकट आता है त्यों २ मृत्यु का क्रम निम्न पथ खूब स्वच्छ और कोमल हो कर जाने के लिये सुविधा हो जाती है, एवं जैसे २ दिन २ यह प्रतीत होने लगता है कि देह नश्वर है त्यों २ कृतान्त (यम) की कराल भीषण मूर्त्ति मानो कमनीयता धारण करती है; अन्ततः जैसे थका बालक अपनी मां की गोद में सो जाता है उसी तरह आदमी अकातर भाव से यमपुरी की शरण लेता है। इसी चिरप्रतिष्ठित नियम के अनुसार पद्मावती के मुंह से वैसी साहसभरी बात निकली। पद्मावती की सभी बातों की नवकुमार मनहीमन बड़े गौर से आलोचना कर रहे थे, इसी समय दाई ने आकर खबर दी :—

"बहुत से लोगों को साथ लिए बादशाह आये हैं। नवकुमार चहक कर उठे और कहा,—"आये हैं ?"

पद्मावती ने कहा, "तुम जाओ।"

नवकुमार व्यस्तता के साथ पद्मावती के कमरे से बाहर आये।

—⋄⋄⋄—

तृतीय परिच्छेद।

उद्दीप्त प्रणय-पावक में।

I loved, I love you, for this love have lost
State, station, heaven, mankind's my own esteem.
And yet cannot regret what it hath lost,
So dear is still the memory of that dream."

—Byron.

तुझे था किया प्यार करता अभी मैं।
इसी प्रेम से नाश मेरा सभी है॥
हमारी बड़ाई, पद, स्वर्ग, जानो।
हुए नाश तो भी नहीं सोच लानो॥
अभी भी यही स्वप्न चिन्ता लगी है।
जिसी से हुआ नाश मेरा सभी है॥

—श्री रामप्रताप गुप्त।

बादशाह जहांगीर ने पत्र ही पढ़ कर समझ लिया कि पद्मा सख्त बीमार पड़ी हैं इस में सन्देह नहीं। पद्मावती ने कहा था कि वे मरती बेर फिर बादशाह से भेंट करेंगी। मरने का समय आये बिना उन्हें वह बात याद क्यों आती ? इसी से बादशाह आते समय अपने यहां के कई प्रसिद्ध हकीमों को संग ले आये। उन सभों ने आते ही नवकुमार के सुपुर्द

किये हुए चिकित्सकों से रोग की सब व्यवस्था जान कर एकमत हो पद्मा की चिकित्सा आरम्भ की। पर किसी से बीस से उन्नीस नहीं हुआ। आज दस दिन हो गये, इन दस दिनों में बीमारी न घट कर बराबर बढ़ती ही गयी। चिकित्सक लोग पद्मा की ज़िन्दगी से हाथ धो बैठे हैं। यह भयङ्कर बात सभी प्रिय जनों के कान में जाचुकी है। सभी मुर्दादिल, सुस्त और सूखे से हो रहे हैं। नवकुमार जहांगीर प्रभृति सब कोई सर्व्वदा रोगिनी की हालत की देख रेख करते हैं—वे लोग भी क्रमशः निराश होते जाते हैं।

सन्ध्या होने के कुछ पहले बादशाह जहांगीर बहादुर आकर रोगिनी के पलङ्ग के पास एक चारपाई पर बैठ गये। पद्मा बहुत ही कमज़ोर और दुबली पतली हो रही हैं। इधर चार रोज़ से जो ज्वर चढ़ा है सो न तो उतरता ही है और न बढ़ता है—सदा एकसा बना रहता है। चिकित्सक लोग सन्देह करते हैं कि जिस घड़ी वह ज्वर उतरेगा उसी समय पद्मा की मृत्यु हो जायगी। बादशाह ने धीरे से एक लम्बी सांस ली। पद्मा ने बादशाह के मुंह की ओर अपनी दृष्टि फेरी। बादशाह दुःखित हुए। एक समय जिस की दृष्टि से उनका हृदय नाच उठता था आज उसकी नज़र उन को बड़ी दुःखदायी जान पड़ी। उन का हृदय शोक से मथित होने लगा। उन्हों ने बड़े कष्ट से अपने मन का भाव छिपाया। दोनों ही निस्तब्ध-नीरव-चित्रार्पित पुतली की तरह हैं। बड़ी देर के बाद पद्मावती ने एक लम्बी सांस ले कहा, "बादशाह! मैं चली—इस जन्म भर के लिए चलती हूं। बहुत जल्द पापीयसी पद्मावती का पाप जीवन अन्धकार में अवश्य ही डूब जायगा। उस के लिए उपाय करना वृथा है। मैं ने जीवन की आशा छोड़ दी है—जीने का कोई काम नहीं इसी से मैं आई हुई मौत से डरती नहीं हूं; मुझे और कष्ट नहीं है। मनुष्य जीवन में जो सब वाञ्छ सुखसौभाग्य ईप्सित थे सो सब आप की अनुकम्पा से मैंने अच्छी तरह भोग किये हैं। किन्तु उन सबों में जब तक नया अनुराग रहता है तभी तक सुख मालूम होता है—तभी तक वह सब हमलोगों का अपना रहता है। अनुराग के दिन रहता है? अनुराग कम होता है, सुख भी दूर होता है। मैं आप से पहिले ही कह चुकी हूं—इस समय भी कहती

हूं उन सबों में ज़रा भी सुख नहीं है अगर होता तो मेरे सुख का हद हिसाब नहीं रहता। जिस में असल सुख है सो हतभागिनी उस घड़ी नहीं जान सकी। जब जाना और वह मिला, जब बीती हुई बातों के लिये निदारुण अनुताप से उस का हृदय मथित होने लगा। इस लिए यह अभागिनी संसार में सुख का मुंह नहीं देखसकी। सुख पाने के लिए मैं ने क्या २ नहीं किया है? कौन पाप बाकी रख छोड़ा है? जो कुछ किया सब सुख की चेष्टा और असीम भोगतृष्णा की निवृत्ति करने की इच्छा से। पर बादशाह आप से कहने में क्या, पाप के मारे मेरी देह, मन और प्राण जर्जर हुआ केवल इतना ही,—मैं सुखी कभी नहीं हुई। मैं क्या इसी समय सुखी हूं? नहीं, बादशाह! मुझे बड़ी तकलीफ़ हो रही है!!! क्यों पहले ही इस राह में नहीं आयी इसी पछतावे के मारे मेरा हृदय जल रहा है! वह जलन मिटने वाली नहीं। अगर वैसी होती तो मिटायी जा सकती। इसी से कहती हूं इस अभागिन को जीने का कोई काम नहीं। उसका मरनाही अच्छा है। वह शुभ घड़ी करीब है। सौभाग्य की बात यही है कि उस के लिए बहुत दिन इंतज़ारी नहीं करनी पड़ी। पापिन पद्मावती के पापी प्राण अब अधिक दिन पृथ्वी पर नहीं रहेंगे।"

यद्यपि पद्मावती ने इतनी बातें बहुत धीरे २ और बड़े अस्फुट स्वर से कहीं तो भी इतने ही से उन को थकावट मालूम हुई। वे चुप हो गयीं और ज़ोर २ से उसांसें लेने लगीं। बादशाह बहादुर ने सब बातें सुनीं—वे अपने को और रोक न सके। आंखें डबडबा आयीं, लंबी सांसें खींचने लगे। बड़े विकलस्वर से बादशाह ने कहा, "पद्मावती! मैं ने सोचा भी नहीं था कि तुम्हारे साथ आखिरी भेंट इस तरह बुरी हालत में होगी। तुम ने जो कुछ कहा वह घटे चाहे न घटे पर उसको याद आते ही सारी देह सिहर उठती है। क्या तुम नहीं जानती कि एक दिन मेरी देह, दिल और जान तुम्हारे ही हाथ में थी? बड़ी तकलीफ़ से दिल को पत्थर सा कड़ा कर के मैं ने तुम को तुम्हारे सुख की राह में जाने दिया था। पर पद्मावती कहो तो मैं किस तरह चुप रहूंगा? पद्मावती! हज़ार कोस दूर रहने पर

भी तुम मेरे भीतर ही हो। मैं तुम्हारा ही हूं। तुम्हारा मिज़ाज बदला है तो भी मैं तुम्हें अपने जी से हटा नहीं सकता।"

पूर्वस्मृति और अनुताप से बादशाह का हृदय दग्ध होने लगा। उन का बोलना बन्द हो गया। आंख से खरखर आंसू ढरकने लगे। घबराहट के साथ बादशाह ने पद्मावती का हाथ धर लिया। उन की आंख के आंसू से पद्मा की पतली बांह भींजने लगी। पद्मा ने व्याधि-विकलित कण्ठ से कहा, "बादशाह! आप की बात से पहले की सब बातें याद आगयीं। वे सब मानों आखों के आगे हो रही हैं। बादशाह! मेरा कलेजा एक दम पत्थर—पत्थर से भी कड़ा है। चलते चलाते मैं आप से अपने जी की बात कहती हूं सुनिये। इस घड़ी मुझे डर ही किस बात का है? जिस दुनिया को थोड़ी ही देर में छोड़ूंगी उस से और डर किस का? आप सुन कर क्या कहेंगे सो नहीं कह सकती। जो हो कुछ क्यों न सोचें आखीर वक़्त, मरन सेज पर, मैं खुद मुंह अपना गुनाह कबूल करूंगी। बादशाह! आप मुझे कितना प्यार करते थे सो कुछ मुझ से छिपा नहीं है। किन्तु बादशाह! झूठ मत जानियेगा, मैं पत्थर हूं, उस घड़ी उस अतुल्य प्रेम की एक कणिका भी मैं प्रतिदान नहीं करती थी। आप चौंकते हैं? जगत् में मुझ सी असती, कुलटा, गणिका, व्यभिचारिणी स्त्रियों की यही रीति है। उन का यही काम—यही व्यवहार है। ठगना ही उन लोगों का व्यवसाय है। आपने मेरे सन्तोष के लिए क्या नहीं किया था? किन्तु मैं पापीयसी हूं—मैं ने आप के साथ कैसा व्यवहार किया है? मैं ने स्वयम् असीम पाप किये हैं, तिस पर उस के साथ प्रतारणा भी मिला दी है, और आप को एवं और भी कई आदमियों को नियत प्रतारणा जाल में बांध कर पाप में डुबाया है। बादशाह सोच समझ कर देखिए, मेरे पापों का भी कुछ ठिकाना है? मेरी क्या गति होगी सो समझते हैं?"

यह कह पद्मा अब चुप हो गयीं। बड़ी देर तक सुस्ताकर पद्मा ने बादशाह के चेहरे की ओर देखा। उन की आंख डबडबा गयी-लम्बी सांस लेकर पद्मा ने कहा, "बादशाह! आप से जो कहूंगी उसे आप विश्वास नहीं

करेंगी—मेरी बात पर विश्वास क्यों करने लगे ? विश्वास न करने पर भी मैं वह कहूंगी क्योंकि आप के विश्वास करने, न करने से अब मेरा कुछ नफ़ा नुकसान नहीं है। जो बहुत जल्द सर्वदा के लिये मनुष्य राज्य छोड़ कर चली जायगी उसे मनुष्य के सन्तोष और विश्वास की क्या पर्वाह है ? बादशाह ! सुनिये सदिच्छारूपी आग के स्पर्श से पाषाण हृदय गलता है। बहुत दिन हुए इस दासी के हृदय में सदिच्छा प्रवेश कर चुकी है। इस पत्थर का कलेजा उस समय से गल कर कुछ आदमी सा हुआ है। उस समय मैं ने समझा आप के साथ कैसा खराब काम किया ; उस घड़ी समझा मैं पापियों से भी पापिन हूं। उस घड़ी मेरे जी की कैसी हालत थी सो समझाना मुश्किल है। पर तब तक मैं बहुत दूर आचुकी थी लौटना मुश्किल था और और भी कई कारण से मैं ने कलेजा बांध रक्खा। इतनी जल्दी मौत मेरा निस्तार करने न आती तो मैं कभी इस बात को ज़ाहिर न करती। जैसे हृदय में जन्मी थी वैसे ही हृदय ही में विला जाती। आज यह बात कहने से कोई क्षति नहीं होगी इसी से इसे ज़ाहिर किया है। जिस दिन हृदय थोड़े २ आदमियों के जैसा हुआ उसी दिन से आप को प्यार किये विना मुझ से रहा नहीं जाता था। स्वामी मेरे आराध्य देवता हैं। उनके चरणयुगल का ध्यान करते २ जीवन त्याग करूंगी यही मेरी इच्छा है। अपने आप मैं ने उन को अपने प्राण समर्पण किये हैं। उसी शुभ दिन से मैं स्वामी के चरणों का जी जान से ध्यान करती हूं, उन को पुण्य का सोपान समझती हूं और पापीयसी पद्मावती को हृदय का जहां तक प्रणय से उद्दीप्त होना सम्भव है, वहां तक उन से प्रेम किया है। पर बादशाह ! आप को भी भूल नहीं सकी। इस में यदि अधर्म्म हो तो मैं उस के लिए दुःखित नहीं हूं। सुख की बात है कि यह बात इस पाषाणी की मृत्यु के समय प्रकाशित हो गयी। और भी सुख की बात यह है कि एक दिन भी तुम्हारे साथ अथवा पास रहने की प्रवृत्ति नहीं हुई—मैं जानती थी इस में दुःख के सिवाय सुख नहीं है। आज सब बातें मैं ने खोल कर कह दीं—आज तुम भी सामने ही हो—चित्त बड़ा दुर्द्दमनीय हो उठा है—आज सोचती हूं तुम को कैसे छोड़ा था। ”

सुस्ताने के लिए पद्मावती चुप हो गयीं। जहां तक ज़ोर से हो सका था उन्हों ने यह बातें कही थीं इसी से ज्याद: थकावट मालूम हुई। बड़ी देर तक एकटक बादशाह की ओर देख कर अब बोलीं, "बादशाह मुझे क्षमा करो। यह पापिन तुम्हारे सामने बड़ी गुनहगार है। उस के कसूरों की गिनती नहीं है। इन में कौन २ का नाम लूं ? और क्या कहूं ? पाप के मारे कलेजा लोहे सा कड़ा हो गया है इसी से तुम्हारे साथ बात करने में मुझे लाज नहीं आती। मन में तो बहुतेरी बातें भरी हुई हैं पर अब और कुछ नहीं कहूंगी और कह भी नहीं सकती हूं। केवल एक बात है बादशाह ! इस दासी के सब अपराध क्षमा कीजिये।"

यह कह पद्मावती ने जहांगीर का हाथ धर लिया ; जहांगीर अनबोलती पुतली से हो रहे अन्तत: मन्त्रमुग्ध की तरह रोने लगे। पद्मा भी आंसू नहीं रोक सकीं। वे दोनों उसी तरह अनर्गल रोदन करने लगे। दोनों ही बाह्यज्ञानशून्य-संज्ञाशून्य हैं। उन की जिस समय ऐसी हालत थी उसी समय नवकुमार ने उस कमरे में प्रवेश किया। पद्मावती अथवा जहांगीर यह बात नहीं जान सके। नवकुमार ने उनका रंगढंग देखा बस चटपट रोगिनी के कमरे से बाहर चल आये।

चतुर्थ परिच्छेद।

सौहृद्य-संस्थापन।

"I may be your friend, and that perhaps,
When you least expect it." —Vicar of Wakefield.

जो आसन विपद् मुंह बाये नवकुमार को विभीषिका दिखा रही है वह अति भयानक है इस में सन्देह नहीं। नवकुमार जिस शंका के मारे दु:खी हो रहे हैं उसे कहना व्यर्थ है। पद्मावती के जीने की कोई उम्मेद नहीं यह वे समझ गये हैं, इसी से वे इस आगतप्राय अशुभ घटना के निमित्त नितान्त व्याकुल हो रहे हैं।

सम्प्रति पद्मा के साथ रहने से नवकुमार को अनुभव हो रहा था; वे सब दुःख क्लेश को लात मार इस सुख से उन्मत्त थे। पद्मावती के अपराध आदि की बात भूल गये थे। वही पद्मा इस प्रकार उन का हृदय अधिकृत कर, उन का मन मोह कर, विरक्ति का कारण होने के बदले आनन्द का मूल बन कर, इतने अल्प समय में अवनीधाम से एक बारही चली जायगी इसकी अपेक्षा दुःख की बात और क्या होगी?

पद्मावती और बादशाह को वैसी अवस्था में देख कर नवकुमार दूसरे कमरे में चले गये और बड़े उदास मन से कमरे में टहलने लगे। थोड़ी २ ठण्ढ पड़ रही है—तौ भी नवकुमार ने खिड़की के पास जा व्यग्रता के साथ उसका द्वार खोल दिया। जाड़े की रात की स्वाभाविक अंधियारी से आच्छादित लम्बी चौड़ी सरकारी सड़क दीख पड़ी। इस की बाद और कई छोटे २ घर अन्धियारी में ढेर के ऐसे दीख पड़ने लगे। उस के बाद ही बड़ा भारी प्रान्तर (पांतर) था। उस प्रान्तर के वृक्ष और रास्ते से सटे हुए घर सब जाड़े की रात की अंधियारी के कारण एक ही तरह की चीज़ जान पड़ने लगे। झरोखे के नज़दीक ही एक पलङ्ग रखी हुई थी, झरोखे की ओर मुंह किये नवकुमार उसी पर बैठ गये। जो कुछ देह में कपड़े थे सबों को उतार कर फेंक दिया। उस से भी देह ठंढी न हुई। अतः झरोखे के दरवाज़े में छाती अड़ा रखी। झरोखे की राह से फिर २ बहती हुई शीतल वायु आकर उन की छाती ठंढी करने लगी। पर उन को किसी तरह शीतलता नहीं मालूम हुई। उन्मत्त! क्या करते हो? यह क्या सहज ही ठण्ढी होगी? पानी दो, वर्फ दो अथवा जो कुछ जगत् में शीतल है वह सब ही क्यों न दो पर यह उत्ताप किसी से कम होनेवाला नहीं है। नवकुमार के चित की उस समय की हालत भयंकर थी। वे अनित्य जगत् की अनित्यता की आलोचना करते हैं। खिड़की की राह से घोर अन्धकार भेद कर, जहां तक दृष्टि जाती है वहां तक रोग, शोक और मरण इत्यादि नाना आकारों में घूमते हुए दीख पड़ने लगे। जिस समय नवकुमार अपने मन के ऊपर से प्रभुत्व खोकर बैठे थे उसी समय एक और आदमी उस कमरे में आया।

नवकुमार ने उस का 'विन्दुविसर्ग' भी नहीं जाना। आगन्तुक ने धीरे २ नवकुमार के पास आकर उन के कन्धे पर हाथ रखा। नवकुमार चौंके। उन्हों ने घबरा कर आगन्तुक की ओर देखा—देखा उमापति हैं। आगन्तुक उमापति ने कहा, "भाई! क्या सोच रहे हो? जो रुक नहीं सकती उस भावी घटना के लिये सोच करना मूढ़ों का काम है।"

नव०—नहीं भाई मैं वैसा मूढ़ नहीं हूं। मैं एक और ही सोच में पड़ा हुआ था। यह संसार अनित्य है—यहां कौन अधिक दिन रहेगा? आश्चर्य यही है कि मनुष्य इस तरह माया में फँसा हुआ है कि प्रति दिन शरीर की नश्वरता और जगत् की अनिश्चितता के सम्बन्ध में ढेर का ढेर प्रमाण पा कर भी उस के मन को बोध नहीं होता। यह देखो मेरे ही मन में घटना क्रम से यह बात कितनी ही बार उठी पर कभी दो दिन से अधिक मन में नहीं ठहरती।

उमा०—यह भगवान् का कौशल है। आदमी इस तरह माया में नहीं बंधे रहते तो जगत् की कैसी भयानक अवस्था होती सो कही नहीं जा सकती। जो हो, पद्मावती इस वक्त कैसी हैं?

नवकुमार ने उदासी भरी आवाज में कहा, "मैंने तो अभी उन्हें देखा नहीं है। भाई! अब क्या देखूंगा? पद्मावती की जीवनाशा सभी ने छोड़ दी है।" यह कह नवकुमार ने लम्बी सांस ली। इसी समय एक तीसरे व्यक्ति ने घर में प्रवेश किया। उन दोनों की नज़र उस आये हुए की ओर चली गयी और दोनों ने खड़े हो कर बड़े ही सम्मान के साथ आगन्तुक को अभिवादन किया। आगन्तुक स्वयं बादशाह जहांगीर थे। जहांगीर पास आ कर पलङ्ग पर बैठ गये और नवकुमार एवं उमापति से उसी आसन पर बैठने का अनुरोध किया। अगत्या वे संकुचित भाव से एक ओर बैठ गये।

जहांगीर ने नवकुमार से कहा, "हुजूर! आज आप से मैं कई एक बातें कहना चाहता हूं। उम्मीद है आप मेरी बातों से कुछ रञ्ज न लावेंगे। लुत्—पद्मावती की इस घड़ी जैसी हालत हो रही है सो तो

आप देखते ही हैं। इस ज़रूर होने वाली बात से आप का दिल टूट गया होगा इस में शक नहीं पर यह न जानियेगा कि इस बात से मुझे कोई तकलीफ़ न होगी। आप अक़्लमन्द हैं, समझदार हैं। सीधे मन से मेरी बातें सुनिए। लुतफुन्निसा—अब की बार पद्मावती के साथ मेरी कैसी जान पहचान थी वह आप कुछ न कुछ ज़रूर जानते होंगे ऐसी हालत में, उन सब बातों की याद आने से ज़रूर ही आप को पद्मावती से नफ़रत होगी। आप ऊंचे दिल के आदमी हैं इसी से वह सब बातें कहने की हिम्मत ...." इसी समय नवकुमार ने बादशाह की बात काट कर कहा, " आप व्यर्थ ही आशङ्का करते हैं। पद्मावती पर जो घृणा होनी थी सो पहले ही हो चुकी। इस समय, किसी बात से फिर पद्मावती के सम्बन्ध में मुझे मनो-मालिन्य नहीं हो सकता। इस में कुछ भी शक नहीं। पद्मावती और आप के बीच पहले जैसा भाव था सो मैं जानता हूं। उस के बाद पद्मावती से मुझे भेंट हुई थी। वह सब जान सुन कर भी जब मैंने पद्मावती से अपनी घृणा हटा ली तब फिर उसी बात से उस पर मुझे नया रञ्ज क्यों पैदा होगा ? "

बादशाह ने सन्तोष पूर्व्वक कहा, " अच्छा; आप का ऐसा ख़्याल है, इस से मैं ख़ुश हुआ। इस वक़्त कहने में कोई हर्ज नहीं—एक बार मेरा दिल एकबारगी पद्मावती के क़ाबू में था। लेकिन मौका पा कर सब कुछ होता है। पद्मा के पापी मन में भी वक़्त पा कर धरम की जोत छिटकी। तब पद्मावती ने अपने शौहर के साथ रहने का मज़ा लूटना चाहा। मैं उस की ख़्वाहिश के खिलाफ़ काम कर सकता था पर मैंने कई वजूहातों से उस की ख़्वाहिश में रुकावट नहीं पहुंचायी। पद्मा जिस दिन मुझ से विदा हुई वह कैसा बुरा दिन था! उस की बात में आप से क्या कहूं? जो हो, मैं ने दिल मसोस कर पद्मा को रुख़सत किया पर मन को रुख़सत नहीं कर सका। जिस के साथ थोड़े ही दिन पहले ऐसा लगाव था उस की फ़ुर्क़त में मैं जो एकबारगी मुसीबत-ज़द: होऊंगा यह कहना फ़ज़ूल है।"

नव०—उस के कहने का क्या काम है? मैं वह भली भांति अनुमान करता हूं।

बाद०—जो होना है उसे इस घड़ी कौन रोक सकता है? कैसा हू थिर या साबिर मिजाज़ क्यों न हो, ऐसी हालत में ज़रूर ही बेक़रार हो जायगा इस गाढ़ी मुसीबत में, इस उदासी के वक्त सिर्फ़ यही नफ़ा हुआ कि आप से देखा देखी और जान पहचान हुई। आप से मेरी खूब गाढ़ी जान पहचान हो यह मेरी दिली ख़ाहिश है। सोच कर देखिये मेरी यह ख़्वाहिश बेवजह नहीं है। हम दोनों ही पद्मावती की उल्फ़त की डोर में बन्धे हैं। हम दोनों में बराबर लगाव रहे क्या यह अच्छा और आसूदगी पैदा करने वाला नहीं होगा? और देखिये, पद्मावती दुनिये से रुख़सत हो रही है। उस का हाल जितना हम दोनों को याद रहेगा उतना और किसी को नहीं याद रहेगा। अगर हम दोनों दोस्ताना बर्त्ताव रखेंगे तो दिल को बड़ी आसूदगी होगी। मैं ने आप को एक चीठी लिखी थी; जान पड़ता है आप ने उसे पाया होगा।"

नवकुमार ने विनीत भाव से कहा, "जी हां, कई कारणों से, खास कर यह सोच कर कि क्या जवाब दूं मैं जवाब नहीं दे सका। उस के लिए मैं आप का क़सूरवार हूं।"

बाद०—चीठी का काम इस वक्त मुंह ही से चलेगा। चीठी में आप को थोड़ी सी जागीर देने की बात लिखी थी। आप उन पर राज़ी हैं कि नहीं यह जाने बिना वैसी कार्रवाई करना ठीक नहीं। पर आप अगर रज़ामन्दी दिखावेंगे तो मैं बड़ा खुश हूंगा।

नवकुमार ने बड़े सङ्कुचित स्वर से कहा, "मैं ने इस बारे में बहुत सोच विचार किया है। इस में अस्वीकार करने का तो कोई कारण नहीं है। यह अधीन तो ऐसी इज्ज़त पाने के क़ाबिल नहीं है। आप की मिहरबानी एक ऐसे पर हो रही है जो उस के क़ाबिल नहीं। जो हो, पर बादशाह की दी हुई नज़र को अस्वीकार करने की मेरी सामर्थ्य कहां!"

बाद०—मैं इस से बड़ा खुश हुआ। उम्मीद है हम लोगों की दोस्ती दिन २ बढ़ती जायगी। चलिए इस वक्त, मिजाज़ भी ठिकाने नहीं है। थकावट भी मालूम हो रही है—आराम किया चाहिए।

यह कह बादशाह उठ खड़े हुए। नवकुमार और उमापति उन के पीछे २ चले।

पञ्चम परिच्छेद।

निर्वाणोन्मुखप्रदीप।

" प्रतिरङ्क निषण्णयातया
करणापाय विभिन्न-वर्णया।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां
मृगलेखा सुषसीव चन्द्रमा: ॥ "

—रघुवंशम्।

यम पद्मा के जीवन नाश के लिये क्रमश: जिन सब उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं उन का पूरा हाल देना क्लेशकर है। हमलोग उस का उल्लेख न करेंगे।

ऐसा कोई दिन नहीं जिस दिन नवकुमार दिनमान का अधिकांश रुग्णा की सेज के पास न विताते हों, परन्तु किसी दिन सिवाय अधिकतर निराशा के, आशा का अङ्कुर भी हृदय में स्थान नहीं पाता।

देखते २ सत्रह दिन बीत गये। पद्मा की आज की हालत बड़ी भयङ्कर है। आज ही के दिन को चिकित्सकों ने पद्मा का शेष दिन स्थिर किया है। तीसरे पहर नवकुमार जब पद्मा के कमरे में गये तब पद्मा सोयी थीं। धीरे २ लौट आ कर नवकुमार बगल की एक कोठरी में गये। वहां एक हकीम से भेंट हुई। नवकुमार ने उन से कहा, " रोगिनी सोयी है। इस समय क्या नहीं देख आ सकते ? "

हकीम हुक्म बंगा लाने के लिये चले गये और थोड़ी ही देर में लौट आये। नवकुमार ने पूछा, "क्या देखा?"

हकीम०—जैसी नाड़ी की हालत है उस से तो मालूम होता है एक-पहर छः घड़ी रात जाते २ बीबी साहिबा काज़ा कर जायँगी।

नवकुमार ने एक लम्बी सांस ली। साथ ही उन की आंख से दो बूंद आंसू टपक पड़े। हकीम चला गया। नवकुमार बैठ कर अपने अदृष्ट की आलोचना करने लगे। पद्मावती की और अपने भाग्य की आलोचना करते हुए उन का हृदय फटने लगा। तौभी उस से मन हटाया नहीं जा सका। बड़ी देर बाद एक दाई ने आ कर खबर जनायी, "पद्मावती की नींद टूट गयी, नींद खुलने के साथ ही उन की बीमारी भी बहुत बढ़ गयी है।"

नवकुमार ने उस से कहा, "तुम जा कर हकीम को खबर दो मैं चलता हूं।"

नवकुमार शीघ्र ही रुगणा के कमरे में चले गये। जाते हुए उन के पैर कांपने लगे। छाती का धड़का बढ़ गया। दारुण भीति ने उन का हृदय अधिकृत किया।

प्रेम और स्नेह भरे हास्य के साथ पद्मावती ने नवकुमार के मुख की ओर देखा। नवकुमार पास जाकर बैठ गये, पद्मा ने थोड़ी देर बाद धीमी आवाज़ में कहा, "प्राणेश्वर!"—यह कह नवकुमार का हाथ धर लिया। बड़ी देर तक चुप रह कर बोलीं, "प्राणेश्वर! मैं ने तुम से कितनी बातें कहने का विचार किया था पर इस समय तो कोई भी बात नहीं याद आती। तुम ने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है, मैं उतने अनुग्रह के पात्र न थी। तथापि तुम ने मुझ पर अनुग्रह किया; उस के लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता दिखाना असम्भव है। उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। तुम मुझ पर अनुग्रह नहीं करोगे तो और कौन करेगा! तुम ने अपना कर्त्तव्य किया। पर मैं, अभागिन ने तुम्हारे सन्तोष के लिए कौन सा काम किया है?

कब तुम्हारे सुख की प्रति लक्ष रखा है ? तुम ने जो मेरे सब अपराध क्षमा किये उस से मेरा हृदय शीतल हुआ। तुम्हारे गुणों की सीमा नहीं है। पर मैं तो अब चली, तुम्हारे अनुग्रह का प्रतिदान करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। इस पापीयसी का तुमने जो कुछ हित किया है सो प्रतिदान पाने की इच्छा से नहीं—वह मेरे साध्य से बाहर भी है। पर मैं कर सकूं या नहीं पर तुम्हारे गुण का भगवान् अवश्य ही प्रतिदान करेंगे—वे अवश्य ही तुम्हारा मङ्गल करेंगे।"

कहते २ पद्मा की आंखों से कई बूंद आंसू टपक पड़े। दारुण मानसिक यातना के कारण नीचे माथा किये नवकुमार सब बातें सुन रहे थे। हठात् मस्तक ऊपर किया। दोनों की आंखें परस्पर मिल गयीं। नवकुमार आंसू न रोक सके। वे पद्मावती का हाथ अपनी आंख पर धर कर रोने लगे।

इसी समय चार हकीम वहां आ पहुंचे। उन्हों ने रोगिनी की हालत की जांच की। थोड़ी देर आपस में सलाह कर एक ने एक बर्त्तन में कोई तरल औषध रख कर पद्मावती के कानों कान कहा, "जल्द बीबी साहिबा के बेहोश होने का डर है। उस घड़ी उन को यह दवा पिलाइएगा हम लोग पास ही हैं, अगर इस दवा से कुछ फ़ायदा न हो तो खबर दीजिएगा।"

हकीम सब चले गये। नवकुमार ने प्रायः रुंधे कण्ठ से कहा, "प्रिये पद्मावती! मेरा भाग्य बड़ा ही खोटा है। मैं तुम को........"

पद्मावती ने वह बात न सुन कर कहा, "नवकुमार! मुझे बड़ी तकलीफ़ हो रही है। मालूम होता है और ज्यादे देर मुझे संसार में नहीं रहना होगा। मेरे हाथ पांव झन २ कर रहे हैं।"

चौंक कर नवकुमार पद्मावती को ग़ौर से देखने लगे। देखा पद्मा की भँवें चौड़ी हुई जाती हैं। आंख की तारा ऊपर टंगी जाती और मस्तक स्पन्दित हो रहा है। देखते ही देखते पद्मा संज्ञाहीन हो कर नवकुमार की ओर ढुलक पड़ी। नवकुमार ने बड़ी घबड़ाहट के साथ एक हाथ से

पद्मा का सिर पकड़ लिया और दूसरे हाथ से वही दवा ले कर पद्मा के मुंह में देने लगे। बड़े कष्ट, बड़े यत्न और बड़ी देर में थोरी सो दवा गले के नीचे उतरी। थोड़े ही देर में पद्मा के लोचनादि फिर वैसा ही हो गये। इसी समय बाहर से कई आदमियों के पैरों की आहट मिली। उसी क्षण बादशाह, उमापति और हकीम लोग वहां आ पहुंचे।

हकीम लोग रोगिनी की अवस्था देखने के लिए आगे बढ़े। भलीभांति जांचकर देखने पर थोड़ी दूर जाकर बादशाह के कान में बोले, "पूरे एक घंटे में फिर बीबी साहिबा बेहोश होंगी। वह बेहोशी दूर नहीं हो सकेगी। जहांतक हमें मालूम होता है उसी बेहोशी के साथ इन की हियात पूरी हो जायगी।"

जहांगीर लम्बी सांस ले रोगिनी के पास आये। पद्मावती कुछ देर तक उन के मुंह की ओर देखती रहीं। उन की आंखें डबडबाने लगीं। उन्हों ने कहा, "बादशाह! अन्त समय अब और आप से क्या कहूं? मेरी ज़िन्दगी खतम होती है—मैं हमेशः के लिये आप लोगों से विदा होती हूं। और मुझे याद मत कीजियेगा। अपनी मृत्यु से जब मैं आप ही दुःखित नहीं हूं तो आप लोग क्यों होंगे? पापिन को याद कर क्या सुख होगा?"

शोक-सन्तप्त स्वर में बादशाह ने कहा, "पद्मावती! बस और कोई बात उन के मुंह से नहीं आयी।

पद्मा०—बादशाह मैं कौन हूं? मैंने जगत् में पाप का सोता बढ़ाया है, जहांतक पाप की बढ़न्ती कर सकी—की। मैं पापिन हूं। पापिन को क्यों अपने मन में जगह दीजियेगा? मेरा नाम दुनिये से उठ जाना ही अच्छा है। किसी के हृदय में उस का चिन्ह न रहे, यही मेरी इच्छा है।"

बादशाह कोई उत्तर न दे सके। सभी चुप हैं—कौन क्या कहे? बड़ी देर तक चुप रह कर अब पद्मा बोलीं,

"क्रमश: मेरा कष्ट बढ़ता जा रहा है। बात कहते बड़ी तकलीफ होती है। कितनी बातें थीं इस घड़ी उन्हें कहना असम्भव है। मुझे मालूम होता है मानों मृत्यु ने मुझे ग्रास किया है। जो हो करो। जीवितेश नवकुमार! (चुप रहने के बाद) तुम्हें बहुत सी बातें कहूंगी (चुप) इस वक्त कह सकूंगी ऐसा तो नहीं जान पड़ता एक बात कहती हूं—इसे मेरा अनुरोध जानना। तुम कहो कि इस के बाद कपालकुण्डला के लिये यथासाध्य अनुसन्धान करूंगा। (चुप) यदि स्वीकार करो तो इस समय तो मृत्यु उपस्थित है तौभी इस अवस्था में भी थोड़ी शान्ति और सुख लाभ करूंगी। और कुछ कहना असाध्य है।"

पद्मा चुप हो गयीं। उन को बड़ा क्लेश मालूम हुआ। वे बड़ी कातर हो पड़ीं। नवकुमार ने आंख में आंसू भर कर कहा, "प्रिये! तुम्हारे सुख के लिये मैं विष तक खाने को तैयार हूं, यह तो बड़ी साधारण बात है।"

इसी समय सबों ने देखा पद्मा में पहले की तरह बेहोशी के लक्षण उपस्थित हैं। पद्मा ने बड़े कष्ट से कहा—"अब देर नहीं हैं। नवकुमार स्वामी! मुझे विदा दो। खतम हो गया-मैं जन्म भर के लिये............"

पद्मा का कण्ठ रूंध गया, और बात न आयी। व्यथित-हृदय नवकुमार ने भग्नकण्ठ से कहा, "भय क्या है?" यह कह पद्मा का सिर अपनी छाती से लगा लिया। पद्मा की संज्ञा उस घड़ी लुप्त हुई जाती थी। उन की आंखें झिपने लगी। तौभी वे ज़बर्दस्ती नवकुमार के मुंह की ओर देखती रहीं। एक ही क्षण बाद उन की वासना पराजित हुई—आंखें बन्द हो आयीं। अन्तिम समय भी आ पहुंचा।

'न—व' के सिवाय और कुछ कह न सकीं। जीवन के शेष लक्षण आ उपस्थित हुए। उन्हों ने उस क्षण कई बार अङ्गुली हिलायी। पर उस का अर्थ कौन कहे? उन्होंने स्वांस लेने के लिए केवल तीन बार मुंह बाया। प्राण-पक्षी ने देह-पिञ्जर त्याग किया। अविक्षत पवित्र भाव से पद्मावती के जीवन-नाटक के शेष अङ्क का अभिनय हुआ। बड़े यत्न से

पाये हुए आदर के धन—नवकुमार का नाम ही, उन के जीवन की शेष बात हुई। जीवनविहीन मस्तक सुखमय तकिये से खिसक पड़ा। सूर्य्यदेव अस्त हुए, वसुन्धरा का आलोक दूर हुआ, उस के साथ ही पद्मावती का जीवन प्रदीप भी बुझ गया। ज़िन्दगी भर में उन्होंने सुख नहीं पाया! सुख के लिए उन्होंने क्या नहीं किया? लगभग एक वर्ष से कुछ सुख से थीं। उस सुख का दिन आज खतम हो गया—उस के साथ सब ही कुछ विलुप्त हो गया।

षष्ठ परिच्छेद।

मोह।

He turned to the left—is he sure of sight,
There sat a lady youthful and bright.

—Byron.

पद्मावती की मृत्यु के प्रायः डेढ़ महीने बाद, कलनारगञ्ज से प्रायः दो कोस दक्खिन गंगा में एक नाव लौटती हुई दीख पड़ी। पूस का महीना—रात का समय—कन कनाती शीत और घोर अंधियारी है। मांझी सब जाड़े के मारे बड़े कातर हुए इस लिए नाव तीर पर लगा दी। भोर होते दो आदमी नाव से बाहर आये। एक नवकुमार और दूसरे उमापति थे।

उमापति ने कहा, "कल्ह अन्धेरी में नहीं मालूम होता था नाव कहां लगायी गयी, इस वक्त, देखता हूं ऊपर अच्छा गांव बसा है।"

इस बात के कहने के बाद दोनों नाव से उतरे और डेग फैलाते हुए आगे बढ़ने लगे। इसी समय एक स्नान करते हुए ब्राह्मण से उमापति ने पूछा, "महाशय, यह कौन गांव है?" ब्राह्मण ने कहा, "यशिपुर।"

"यशिपुर" सुनते ही नवकुमार कुछ चञ्चल हुए। वह भाव ज्यादे देर तक नहीं रहा। उसी क्षण सब कुछ भूल गये। क्रम से वे लोग एक पथ

पर आये। यही गांव में जाने आने की राह थी। रास्ते तक आने पर उन को गांव का भीतरी हिस्सा देखने की इच्छा हुई। विविध वार्त्तालाप में अन्यमनस्क हो कर दोनों बहुत दूर तक चले गये। सामने का एक घर उन को बहुत पसन्द आया। ऐसे छोटे गांव के लिए यह मकान गर्व्व-स्वरूप था। वे दोनों इस मकान को देखने लगे। नवकुमार की दृष्टि उस मकान की छत पर पड़ी। उमापति की नज़र उस समय दूसरी ओर थी। नवकुमार ने देखा—आलुलायित कुन्तला, एक परमा सुन्दरी युवती रमणी, एक मन से बगलवाले वन की शोभा देख रही है। उस के मुख का एक ही हिस्सा नवकुमार को दिखाई दिया। सहसा रमणी के मन में न जानें कौन सा दूसरा भाव उदित हुआ। उस ने वह जगह छोड़ दी। जाती वेर उस का सुचारु वदन नवकुमार को पूरा दीख पड़ा। और भ्रम बाकी न रहा। हृदय में आग सी लग गयी। उस आग की लहर, मनुष्य की क्या सामर्थ्य जो सहे! चेतना-शून्य नवकुमार की देह छिन्न-मूल पादप की तरह ज़मीन पर गिर पड़ी। सहसा उन का ऐसा भाव होते देख उमापति व्याकुल हुए। क्यों उन की ऐसी हालत हुई सो विना उन के होश में आये जानने का उपाय नहीं, और ऐसी हालत में उस प्रतीक्षा में रहना भी ठीक नहीं यह सोच वे नवकुमार की अचैतन्य-देह को नौका में ले गये।

उस दिन सांझ को नवकुमार की अचैतन्य-देह लिये हुए नौका नवद्वीप के नीचे आ लगी। इस बीच में होश ही नहीं हुआ यह बात नहीं है। बीच २ में होश हुआ था, पर वह चेतना क्षणस्थायिनी थी। इस बीच जो २ बातें उन्हों ने कहीं उमापति उन का मतलब नहीं समझ सके। नवकुमार की देह मथुरानाथ के घर लायी गयी वहां बड़ी २ चेष्टा से रात बीतते २ उन को होश हुआ। उस समय वे बोले,—"कपालकुण्डला हैं, मैंने उन्हें अपनी आंखों देखा है, इस में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। देर करने का कोई काम नहीं है; तुम लोग चलो मैं आजही वहां जाऊंगा। मुझे तुम लोग यहां क्यों ले आये?"

उमापति, मथुरानाथ, अधिकारी प्रभृति सब लोग यह सुन कर अवाक हो रहे और इस बात की अपेक्षा करने का भी उन को साहस नहीं हुआ। नवकुमार फिर सप्तग्राम जाने के लिए व्याकुल हुए पर उनका शरीर दुर्ब्बल रहने के कारण चार पांच दिन बाद जाने का निश्चय हुआ।

अधिकारी लगभग एक महीने से नवद्वीप में आये हैं। नवकुमार ने 'आज आवेंगे,' 'कल आवेंगे' करते करते इतनी देर लगा दी, लाचार हो अधिकारी उन की इंतज़ारी में ठहरे रहे। अपनी भवानी की पूजा करने के लिए वे बड़े उद्विग्न हो गये थे। इस समय जल्द जासकेंगे इस की भी सम्भावना नहीं है। नवकुमार के अच्छा हुए बिना और कपालकुण्डला के बारे में जो बात उठी है, वह एकबारगी अविश्वास्य और असम्भव होने पर भी, बिना उसका परिणाम देखे उन का जाना नहीं होगा इस वजह से वे भी कुछ दिन के लिए ठहर गये।

सप्तम परिच्छेद।

रहस्योद्भेद।

" Yet heavens are just-and time suppresseth wrongs. "
—Shakespeare.

" अन्त भले का भला। "

दो दिन बाद नवकुमार और उमापति मथुरानाथ के घर से सटे हुए रास्ते पर खड़े होकर नाना प्रकार की कथा-वार्त्ता में उलझे हुए थे। रास्ते से होकर बहुतेरे लोग जा रहे थे। सहसा उमापति ने कहा, " देखते हैं भट्टाचार्य्य महाशय हैं! ये कहां से आ पड़े ? "

नवकुमार बोले, " ये हैं कौन "

उमा०—मुक्तकेशी के पिता हैं।

भट्टाचार्य्य महाशय उन दोनों के पास आ गये। उमापति और नवकुमार ने उन को प्रणाम किया। सकपकाये हुए की तरह उमापति ने पूछा, " आप यहां कहां ? कुशल मङ्गल तो है न ? "

भट्टा०—सब कुशल ही कुशल है। एक काम के लिए मैं यहां आया हुआ था। वह काम हुआ नहीं अब घर जा रहा हूं। तुम यहां कैसे आये ?

उमापति ने नवकुमार को दिखा कर कहा, "ये हमारे बड़े हित हैं। हम लोगों का घर एक ही गांव में है। यहां इन को बहिन की ससुराल है। इन के बहनोई भी मेरे परिचयी हैं। भेंट मुलाकात करने के लिए आना हुआ था। हमलोग कल्ह ही घर को लौटेंगे। अच्छा हुआ, एक ही साथ जाना होगा।"

भट्टाचार्य्य सहमत हुए। सब घर के भीतर चले गये। भट्टाचार्य्य और अधिकारी जब आमने सामने हुए तब दोनों बड़ी देर तक एक दूसरे के मुख की ओर देखते रहे। एक दूसरे को पहिचाना हुआ सा जान पड़ा। सन्देह दूर होकर प्रतीति जन्मी। अधिकारी पागल के से होकर भट्टाचार्य्य के पांव पर गिर पड़े और बोले, "भाई साहेब! आप कैसे हैं? मैं ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि फिर भी आप से भेंट होगी।"

बूढ़े भट्टाचार्य्य ने डबडबायी आंखों से कहा, "हरिचरण—" यह कह अधिकारी को आलिङ्गन किया। उनकी आंखों से आनन्द के आंसू बहने लगे। मुंह से अपने मन के भाव को प्रकाट नहीं कर सके। क्रम से भीतर जितनी ही शान्ति होने लगी उतनी ही वे दोनों नाना प्रकार की बातें कहने लगे। नवकुमार और उमापति विस्मयाविष्ट और हतबुद्धि हो कर उन को देखने लगे। उनकी बातों का मतलब न समझ सकने के कारण वे आश्चर्यित होने लगे। अधिकारी ने कहा, "तुम लोगों को आश्चर्य होता है—हो सकता है। मैं तुम लोगों से सब बातें कहूंगा। सुन कर तुम लोग चौंकोगे। नवकुमार! मैं ने तुम से प्रतिज्ञा की थी एक दिन कपालकुण्डला का परिचय दूंगा। विधाता के अनुग्रह से आज वह दिन आया है। सुन कर तुम लोग भी अवाक् होवोगे भैया भी अवाक् होंगे। भाई जी! ज़रा सुस्ता लीजिए तो आप से वह बात कहूंगा।"

कौतूहली हो वृद्ध भट्टाचार्य्य ने उसी समय उस बात को कहने के लिए अनुरोध किया। सभी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। अधिकारी कहने लगे:—

"भाई साहब! मैं ने जीती जागती आप की लड़की को पाया था। और उस का लालन कर विवाह भी कर दिया था। अदृष्ट-दोष से सभी बनाबनाया बिगड़ गया। नवकुमार! यह जिन्हें देखते हो वे कपालकुण्डला के पिता और मैं इनका चचेरा भाई हूं। इस लिए हम दोनों हो तुम्हारे ससुर हैं।"—नवकुमार और भट्टाचार्य्य हतबुद्धि की तरह सब बातें सुनने लगे।—"मेरे साथ तुम्हारा इतना निकट सम्बन्ध है यह बात अबतक मैं ने नहीं कही उसके अनेक कारण हैं। सब सुन लेने पर जान सकोगे। भाई साहिब को जिस समय पहली कन्या हुई थी उस समय मैं घरही पर था। उस का नाम था 'पूर्णकेशी'। उसकी जिस समय दो बरस की अवस्था थी उसी समय मैं पलासी छोड़ हिजली में चला आया। हिजली की भवानी के चरणों में मैं ने कुछ दिन पहले ही से आश्रय लिया था। यह बात मैं ने किसी से भी नहीं कही थी। मैं हिजली की भवानी की सेवा करता हुआ वहीं रहता था। इसी बीच वह जटाजूटधारी कापालिक एक बालिका का हाथ धरे हुए मेरे पास ले आया। मैं ने बड़े विस्मय के साथ देखा, वह लड़की और कोई नहीं मेरी ही भतीजी थी। कापालिक ने कहा, 'मैं इसे समुद्र तीर से उठा लाया हूं। तुम इसे यत्न से रखो। इसके द्वारा अन्त में मेरा बड़ा काम होगा। मैं कब कहां रहता हूं इस का कुछ ठीक ठिकाना नहीं; विशेषत: संसारी की तरह लड़कों का लालन पालन तो मुझ से हो ही नहीं सकता। इसी से कहता हूं इस बालिका को अपने पास रखो। बोलो, क्या कहते हो?' मैं ने विचार कर देखा, यह लड़की मेरी अपनी है। मैं यदि इसका पालनपोषण करने में नाहुकर करूंगा तो कापालिक इसे समुद्र तीर पर वन में ले जायगा वहां इस की जान बचनी असम्भव है। यद्यपि मेरी संसार के प्रति ममता न थी तथापि स्नेह कहां जायगा? और कापालिक अगर जान जायगा कि मेरा इस से

साथ इतना नज़दीकी नाता है तो कभी इसे मेरे पास न रहने देगा। मेरे पास न रहेगी तो उस के बचने की भी आशा नहीं रहेगी। इन्हीं सब कारणों से मैं ने सब बातें छिपाकर उस से कहा, "आप की इच्छानुसार काम किया जायगा। लड़की को मैं ही रखूंगा।"

"कापालिक उसे मेरे पास रख कर चला गया। पर रोज़ आकर उसे देखता और उस की खोज खबर लिया करता था। इसी समय कापालिक ने बालिका का नाम कपालकुण्डला रखा। कपालकुण्डला मेरे सेवा सहाय से पलने और दिन दिन बढ़ने लगी। कपालकुण्डला उस निर्जन वन में कैसे आयी यह बात जानने के लिए मेरा मन उसे देखते ही व्याकुल हुआ था। पर क्या करूं? वह बात वहां मुझ से कौन कहे? कपालकुण्डला बालिका ही थी उस से पूछना ही व्यर्थ था। वह बात जानने के लिए मेरा स्वयम् घर पर आना भी मुश्किल था क्योंकि अबोध बालिका का जीना मरना मेरे ही ऊपर आ अंटका था। क्रम से कपालकुण्डला कुछ स्वाधीन हुई। मैं ने सोचा इस समय कुछ दिन के लिए यदि मैं बाहर जाऊं तो कपालकुण्डला की विशेष हानि न होगी। इस लिए कापालिक के आने पर मैं ने उन से कहा। "महाराज! बहुत दिन से मैं घर नहीं गया। यद्यपि घर पर मेरी स्त्री, पुत्र, परिवार, कोई नहीं है तौ भी समय २ पर जन्मभूमि को देख आने की सभी की इच्छा होती है। इसलिए मैं ने कल्ह घर जाना विचारा है, शीघ्र आऊंगा; जब तक न आऊं आप ही कपालकुण्डला की रक्षा कीजिएगा।" लाचार हो कापालिक ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया। भवानी के मन्दिर में एक और ब्राह्मण रहते थे, उन्हीं पर सब कामों का भार सौंप मैं चला गया। क्या सोचते २ मैं घर आया सो इस समय विस्तारपूर्व्वक कहने का कुछ काम नहीं है। घर आकर मैं ने देखा—आश्चर्य्य! भाई जी का घर ढेर होगया है वहां कोई भी नहीं है। पड़ोसियों से पूछने पर उन्हों ने कहा, "तुम्हारे भैया की जात मारी गयी है जात से काटे जाकर वे यहां से चले गये—कहां गये सो हम लोग नहीं जानते।" मैं ने फिर पूछा, 'वे तो बड़े सीधे सादे आदमी हैं; उन्होंने ऐसा कौन सा काम

किया जो जात से काटे गये ?' इसके जबाव में उन सबों ने कहा, 'उनके घर में फिरङ्गी घुसा था। म्लेच्छ का छूआ अन्न उन्होंने खाया है। फिरंगी उनकी बड़ी लड़की को ले गये हैं। मेरे मन का अन्धकार बहुत कुछ कम हुआ। मैं ने पूछा, 'अच्छा, उन्होंने म्लेच्छ का छुआ हुआ अन्न कैसे खाया?' इस बात से वे सब खीझे और बोले, 'सो हम लोग नहीं जानते, जो जानते हैं सो कहते हैं, सुनो। बहुत दिन हुआ फिरंगियों का एक दल जहाज़ में जा रहा था। वे सब हमारे गांव के नीचे लङ्गर डाल कर ऊपर चले आये। भगवान् की मर्ज़ी, वे डाकू सब तुम्हारे भाई के घर घुसे और उनका सब मालजाल लूट कर चलते चलाते उन की बड़ी लड़की को भी जहाज़ पर ले गये। थोड़ी ही दिन में जहाज़ खोल दिया गया। गांव में अफ़वाह उड़ी की फिरङ्गी सब तुम्हारे भाई को क्रिस्तान बना गये। यह बात सच है कि झूठ सो भगवान् जानें पर जो हो, तुम्हारे भाई इसी सबब से जात से निकाले गए। उन से सब कोई ठट्ठा करने लगे। ऐसी हालत में भी बहुत दिन तक वे यहां पर थे पर अधिक दिन यहां रहना व्यर्थ जान गांव छोड़ कर चले गये। अब वे कहां हैं 'उनका क्या हाल हुआ सो हमलोग नहीं जानते।' मैं सुनकर भौचक सा हो रहा। मैं जानता था भाई साहेब धीर-प्रकृति के मनुष्य हैं। बहुत दिन तक वे नवाब के यहां काम करते थे। जाल फ़रेब कर के गांव के लोगों का काम संवारना और अपने मालिक को हर्ज पहुंचाना उन की प्रकृति के विरुद्ध था। इसी से सब उन से रंज थे। किसी तरह वे उन को अब तक नीचा नहीं कर सके। अब मौक़ा पाकर उन सबों ने एका कर उन से इस तरह बदला लिया है। जो हो मैं ने भाई जी की टोह लेने की ठानी। इस फिराक में मैं ने बहुत जगह उनकी खोज की पर कुछ फल न हुआ। मैं जो हिजली में हूं यह बात भाई साहेब नहीं जानते थे, जगत् में कोई भी नहीं जानता था। जानते तो अवश्य मुझे ख़बर देते। जो हो, लाचार निराश होकर मैं भवानी के मन्दिर में लौट आया।

"मेरे आने में बहुत विलम्ब हुआ था। लौट आने पर मैं ने देखा कापालिक कपालकुण्डला को समुद्र-तीर पर बन में ले गये हैं। कपाल-

कुण्डला ने इस समय ठीक योगिनी का वेश बना लिया था। यहां और तरह के कपड़े और गहने मिल ही नहीं सकते थे। उस समय उस की उमर केवल ७ वर्ष की थी। सौन्दर्य्य बढ़ने में जो कुछ प्रयोजनीय है कपाल-कुण्डला की देह में वह सभी था। इस योगिनी-वेश में सज्जित होकर उस की कितनी शोभा हो गयी थी सो कह कर प्रकट नहीं किया जा सकता। वनाधिष्टात्री देवी की तरह वन वन घूमना उस का स्वभाव होगया। पास वाले वन का कोई स्थान उस से बाकी न रहा। वह प्रतिदिन किसी न किसी समय मेरे पास आती थी। मैं उसे देख बड़े कष्ट से अपने मन का वेग रोकता था। उस के लिए मुझे बड़ी चिन्ता होती थी। तन्त्रमताचारी दुरन्त कापालिक जिस मतलब से उस का यत्न से प्रतिपालन करता था वह मुझे मालूम था। सुतराम् कपालकुण्डला को उस के हाथ से छुड़ाने के लिए मैं बड़ा व्याकुल हुआ।

"पिता क्या है, माता क्या है, मैं क्या हूं, कापालिक कौन है, घर कहां है, मैं यहां क्यों आयी, इन सब बातों का कपालकुण्डला को तनिक भी ज्ञान नहीं था। इस लिए वह इस बारे में मुझ से कोई बात नहीं पूछती थी। पीछे कहीं कपालकुण्डला के मन में उन सब बातों के लिए चञ्चलता न जन्मे इस लिए मैं ने वे सब बातें छिपा रखीं। वह भी रहस्य उद्भावन न कर सकी। उसके जानते वह वनही संसार था सारी दुनिया मानो उसी थोड़ी सी जगह भर में है। उसी समुद्र-तीरस्थ वन, उसी वेला-भूमि तथा उन सब हिंस्र जन्तुओं और उस कापालिक आदि ही को लेकर सारी दुनिया बनी है। इसी को सब कोई दुनिया कहते हैं। सरला-बालिका और कुछ नहीं जानती थी। इस लिए वह कभी चिन्तित नहीं होती थी। कापालिक बीच २ में एकाध विपद में पड़े हुए लोगों को धर कर लाता और बलि देता था। जब कपालकुण्डला को यह बात मालूम हुई तब उस ने आपही समझा कि हम लोगों को छोड़ और लोग भी संसार में हैं; और कापालिक के बध के ही लिए बनाये जाकर किसी जगह रखे गये हैं। कापालिक अपने प्रयोजन के अनुसार एक एक को लाकर बलि

देता है। एक दिन प्रसङ्गानुसार कपालकुण्डला ने मुझ से पूछा, 'कापालिक के बलि देने के लिए आदमी कहां रहते हैं?' उस की बात से मुझे हंसी आयी। मैं ने उस को यथासम्भव थोड़ी २ संसार की बात बतलायी। जहां तक वह उसकी समझ में अंट सकता था मैं ने समझाया कि क्यों कापालिक उसे इतने यत्न से पाल पोस रहा है। कपालकुण्डला सब सुन कर विस्मया-विष्ट और भीत हुई। सतीत्व-रत्न जो नारी जाति का प्रधान अलङ्कार है यह मैं ने उसे समझा दिया था। वह अपनी अवस्था के लिए चिन्तित हुई। उत्कण्ठा के साथ बोली, 'क्या होगा? मैं कैसे छूटूंगी?' मैं ने कहा, 'यहां से भाग जाने के सिवाय और उपाय छूटने का नहीं है; उस में बड़ी बाधा है। तुम भवानी की आश्रिता हो, घबराओ नहीं। भवानी अवश्य ही तुम्हारी रक्षा करेंगी'।

"इसी समय कपालकुण्डला के भाग जाने का सुयोग हुआ था, उत्तर देश से भेंट करने के लिये मेरे एक शिष्य आये। कपालकुण्डला ने उन के साथ भाग जाने की इच्छा प्रकाशित की किन्तु मुझे वह सङ्गत नहीं मालूम हुआ। पर पुरुष के साथ भेजने को मेरे जी ने न चाहा। भवानी की जो इच्छा होगी वही होगा किसी की क्या मजाल जो उस में उलट फेर करे। मैंने उस के साथ कपालकुण्डला को नहीं जाने दिया। कपालकुण्डला की उमर उस समय बारह बरस की थी। इस से उस ने यौवन में पैर रखा। वन में वनकुसुम की तरह उस की अतुल-शोभा आप ही आप विकसित होने लगी। वह मेरे बड़े क्लेश का कारण हो उठी। सोते, जागते, स्वप्न देखते, हर घड़ी कपालकुण्डला की कल्याण-कामना के सिवाय और कोई बात मेरे मन में नहीं समाती थी। मैं उस को ले कर बड़ा चिन्तित हो गया, परिणाम में कपालकुण्डला के अदृष्ट में क्या होगा यह सोच कर मुझे बुखार लग जाता था—खून सूख जाता था।

"स्वभावतः स्त्रियों का मन दूसरों का दुःख देख कर पसीजता है। कापालिक जो बीच २ में विपन्न पथिकों को पकड़ कर बलि देता था इस से कपालकुण्डला बड़ा क्लेश पाती थी। कुछ दिन बाद से नवकुमार

नसीब के फेर से कापालिक के चँगुल में फँसे। कपालकुण्डला उस समय अनेक यत्न से उन की रक्षाकर मेरे पास भाग आयी। मैं ने देखा, इस घटना से कापालिक कपालकुण्डला पर बड़ा बिगड़ेगा। और उस पर गहरी विपद् आ सकती है। मैंने सोचा जिन की कपालकुण्डला ने प्राण-रक्षा की है वे अवश्य ही इस की भी रक्षा करेंगे। परिचय पूछने पर मैं ने जाना नवकुमार अच्छे ब्राह्मण और कुलीन हैं। प्रसङ्गवश विवाह की बात चलाने पर ये कापालकुण्डला के साथ व्याह करने पर राज़ी हुए। मैं ने बड़े आनन्द के साथ यथासम्भव शास्त्रानुसार देवी के मन्दिर में नवकुमार को कापाल-कुण्डला को दान कर दिया। भाईसाहब! ये नवकुमार वन्द्योपाध्याय आप के दामाद हैं।

भट्टाचार्य्य इतनी देर तक ज्ञानशून्य हो कर अधिकारी की बातें सुन रहे थे। इस समय रोते हुए वे नवकुमार को आलिङ्गन करने के लिये अग्रसर हुए। इसी वक्त, अधिकारी उन्हें सुस्थिर कर कहने लगे :—

"दूसरे दिन नवकुमार, कापालकुण्डला को ले कर चले आये। इस समय कपालकुण्डला की उमर सत्रह वर्ष की थी। मैं पहले से कुछ निश्चिन्त हुआ। सोचा एक न एक दिन कपालकुण्डला 'सुख क्या है' यह बात जान जायगी पर एक बारगी उल्टा हुआ। जो कुछ सोचा था वह सब एक भी नहीं हुआ।"

यह कह ब्राह्मण लड़के की तरह रोने लगे। कुछ देर बाद अपेक्षाकृत शान्ति लाभ कर अब अधिकारी ने कहा,—

प्राय: छ: महीने हुए भवानी का मन्दिर छोड़ कर आया हूं। आने के एक बरस पहले मैं सपने में देखा करता मानो भवानी, महेश-मोहिनी सिंहवाहिनी रूप से मेरे सिरहाने खड़ी हो कर कहती हैं, 'वत्स! तुम्हारा कलेजा ऐसा पत्थर सा क्यों हो गया? तुम्हारी कपालकुण्डला संसार में कितना कष्ट पा रही है। तुम वह देखते नहीं हो, क्यों?' इतना ही कह कर देवमाता अन्तर्हित हो जातीं। मेरी नींद टूट जाती, मैं थर थर कांपने लगता था। काम में बझे रहने के कारण मैं शीघ्र भवानी के

इच्छानुसार कार्य्य नहीं कर सका। काम से फुर्सत पाते ही मैं कपालकुण्डला की खोज में चला आया। सप्तग्राम में आया, वहां नवकुमार नहीं थे। पता लगाने पर मालूम हुआ वे सब परिवार ले कर नवद्वीप अपने बहनोई मथुरानाथ के घर गये हैं। मैं नवद्वीप चला आया। यहां नवकुमार के मुंह से सुना अभागिनी कपालकुण्डला पानी में डूब गयीं।"

भट्टाचार्य्य महाशय को अपनी कन्या के सम्बन्ध में एक नयी आशा का सञ्चार हुआ था। अधिकारी की सब बातें सुन कर उन की वह आशा निर्म्मूल हो गयी। उन के मन में बेहद शोक भर आया। बड़ी देर बाद थोड़ी शान्ति लाभ कर भट्टाचार्य्य ने कहा,—

"वह नहीं है यह तो मैं बहुत दिन से जानता हूं। मन में कभी भरोसा भी नहीं किया था कि कभी उसे पाऊंगा किन्तु बच्ची जो इतने दिन जीती थी और सज्जन के साथ व्याही जा कर मेरे इतना नज़दीक आगयीथी और मैं उसे एक बार भी नहीं देखसका यह बड़े दुःख की बात है। पर हजार दुःख होने पर भी आज मेरे आनन्द का दिन है क्योंकि मैं ने असम्भावित उपाय से भाई और दामाद को पाया है। बेटा नवकुमार! मेरी कन्या तुम्हारी घरनी हुई थी। उस के अदृष्ट में जो इतना बदा था वह बड़े विस्मय की बात है। मैं ने आज तुम को पाकर बड़ा आनन्द लाभ किया।"

सम्प्रति किस प्रकार—किस भाव से—नवकुमार ने कपालकुण्डला को देखा था सो उन्हों ने अधिकारी और भट्टाचार्य्य महाशय को कह सुनाया। उस विषय में दूसरे का सहस्र सन्देह रहने पर भी नवकुमार को तनिक भी सन्देह नहीं रहा। भट्टाचार्य्य इस बात से उतना कुछ आनन्दित नहीं हुए। उन्होंने कहा, "जिस के जीवन में एक बूंद भी सुख नहीं था, अभागी जो जल में डूब गयी, अब असम्भावित उपाय एवं ईश्वर के अनुग्रह से पुनर्जीवन लाभ करेगी यह एक दम दुराशा है। अच्छा, इसी रास्ते घर जाना होगा। तुम्हारे मन में सन्देह जन्मा है। एक बार देख लेना।" यह कह उन्होंने एक लम्बी सांस ली।

थोड़ी देर बाद अधिकारी ने पूछा, "अपना घर छोड़ने के बाद से आप कहां, किस प्रकार, रहते हैं यह जानने को मेरी बड़ी इच्छा होती है।"

भट्टाचार्य्य बोले, "तुम ने जो सुना है बात असल वही है। एक तो मेरे ऊपर वह विपद् पड़ी तिस पर गांव वालों ने मुझे जात से बाहर कर दिया। और मुझ से कितनी ठट्ठेबाज़ी करने लगे सो मैं तुम से क्या कहूं। इन्हीं सब कारणों से मेरे मन में बड़ी घृणा जन्मी। वहां एक दण्ड भी ठहरने की इच्छा न हुई; पर क्या करूं? कहां जाऊं? किस का आश्रय ले कर इन सब यन्त्रणाओं से छुटकारा पाऊं? सप्तग्राम के पास गोपालपुर गांव में मेरे एक आत्मीय हैं। मेरी सहायता से वे सरकारी काम में भर्त्ती हुए थे और क्रमशः अपनी असाधारण बुद्धि के प्रभाव से बड़े ऊंचे दर्जे पर पहुंच गये। उन का नाम हरिहर है। वे इन्हो उमापति के मामा हैं। यद्यपि मैं उन की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् नहीं हूं और उन का कुछ वैसा भारी उपकार भी नहीं किया तौभी अपनी सुजनता और बड़प्पन की वजह वे मुझ में गुरु की तरह भक्ति और श्रद्धा करते हैं। अपने गांवभर में हरिहर अद्वितीय धनी, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं इसलिये समूचा गांव उन के वस में था। मैं ने उन के पास जाना कर्त्तव्य स्थिर किया। उन्हीं को सलाह से मैं क्रम से गोपालपुर आ कर छिपी तरह से रहने लगा। हरिहर के यत्न से यहां सभी मुझ पर श्रद्धा करने लगे। पलासी का कोई आदमी यह नहीं जान सका कि मेरा क्या हुआ अथवा एक व एक मैं कहां चला गया। मेरी जो कुछ कमाई थी सो फिरङ्गी लुट ले गये थे इसलिये मैं एकबारगी छूछा हो गया। थोड़ी ज़रज़मीन थी उसे बेंच कर जो कुछ थोड़ा बहुत धन मिला उसी से थोड़ा खर्च कर गोपालपुर में रहने लायक एक मकान ख़रीदा। बाकी हरिहर ने कारबार में लगा दिया। उसी की आमदनी से हमलोग जीने खाने लगे। मेरे अनुरोध से हरिहर ने मेरी खोयी हुई लड़की की बड़ी खोज ढूंढ़ की पर कुछ फल न मिला। घर बार छोड़ने के कुछ दिन बाद मुझे एक और कन्या हुई थी, उस का नाम मुक्तकेशी है।

" क्रम से मुक्तकेशी व्याहने योग्य हुई पर उस के व्याह में बड़ी अड़चन आ पड़ी। मेरे बारे में पूरा हाल जाने बिना कौन मेरी लड़की लेगा? बहुत खोज करने पर पलासी के लोगों से पूछेगा वे कभी अच्छा न कहेंगे इसी वजह से हरिहर की सम्मति और परामर्श के अनुसार उस के विवाह में विलम्ब हुआ। सम्प्रति विधाता की अनुकम्पा और मुक्तकेशी के शुभादृष्टवश इन्हीं उमापति के साथ उस का व्याह ठीक हुआ है। मैं ने आप मंझोले में विवाह करदेने का सङ्कल्प किया है। इस देश में हमलोगों के दो एक जाति कुटुम्ब हैं सो तुम जानते हो। पीछे यह सुन कर कि मैं जात से काटा गया हूं वे मुझ से कहीं घृणा न करने लग जायँ इसी डर से आज तक मैंने उन से भेंट भी नहीं की और कुछ हाल चाल भी नहीं दिया। अब मुझे वैसी चिन्ता नहीं है। लड़की के व्याह की चिन्ता उस दिन्ता का प्रतिविधान हुई, डर कैसा? उन सबों से सब कुछ कह सुन कर घर जाता हूं। रास्ते में विधाता की इच्छा से तुम लोगों से भेंट हो गयी। जो मन में सोचा न था। जिस की कभी आशा न थी आज वही सब हुआ है। भाग्य में जो कुछ दुःख बदा था वह हुआ अब क्या जाने भगवान् के मन में क्या है। नवकुमार के मन में जो सन्देह हुआ है वह यद्यपि असम्भव और अघटनीय है तौभी घर जाने का रास्ता यही है—कल तुमलोग घर जाओगे—यह सन्देह भी दूर करते चलना। "

इन्हीं सब बातों में वह दिन युगपत् आनन्द और शोक के साथ बीता।

अष्टम परिच्छेद ।

सुसम्वाद ।

" क इप्सितार्थं स्थिर निश्चयंमनः । "

—कुमार सम्भवम् ।

दूसरे दिन सवेरे ही सबों ने डेरा डण्डा उठाया और ठीक समय पर यशोपुर पहुंचे। थोड़ी ही देर में वे लोग ज़मींदार रामदास राय के घर की ओर चले। वहां जा कर उन लोगों ने जो सुना उस से सभी हताश हो गये। सुना कि रामदास राय परिवार समेत तीर्थ करने गये हैं। उन के घर पर कोई नहीं था उन की ज़र ज़मींदारी का काम संभालने के लिये उन के मैनेजर वहीं रहते थे। इस सम्वाद को सुन कर दूसरों को पीड़ा हुई हो अथवा नहीं पर नवकुमार बड़े व्यथित हुए।

और लोगों को जिस बात का विश्वास नहीं हुआ था और जिस की उन लोगों ने आशा न की थी उस के न होने से उन लोगों को उतनी कुछ मनःपीड़ा नहीं हुई किन्तु जो व्यक्ति किसी सुख के परिणाम के सम्बन्ध में स्थिर निश्चय था उस के न होने से उस को जो घोरक्षोभ होगा इस में सन्देह क्या है? नवकुमार इस सम्वाद को सुन कर बड़े ही दुःखित हुए। कपालकुण्डला हैं और खोज करने से मिलेंगी इस आशा को किसी ने अपने मन में जगह नहीं दी थी—किसी ने इस बात का विश्वास नहीं किया था इस लिये उन को कुछ नया क्षोभ नहीं अनुभूत हुआ किन्तु नवकुमार ने निश्चय जाना था कि कपालकुण्डला हैं। अगर अपनी आंखों देखी बात को आदमी विश्वास करता है तो नवकुमार कपालकुण्डला के जीती रहने के बारे में स्थिर निश्चय करेंगे? सुतराम् इस खबर को पाकर नवकुमार जो बड़े दुःखित हुए यह कहना बाहुल्य मात्र है।

ज्यादा देर तक वहां फ़ज़ूल ठहर कर क्या होगा यही सोच सब लोग लौट चलने के लिये तयार हुए। नवकुमार ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया। सबों ने उन को व्यर्थ समय बरबाद करने से मना किया।

नवकुमार ने कहा,—"मैं इस बारे में अच्छी तरह पता लगाये बिना नहीं जानेका। आप लोगों को काम हो तो चलेजाइये। मैं नहीं जाऊंगा।"

वे लोग अब नवकुमार से आशा सुनी फ़जूल समझकर बोले, "तब इस घड़ी क्या करोगे, करो।"

नवकुमार उन लोगों को साथ ले कर रामदास के कार्य्याध्यक्ष के पास गये। कर्म्माध्यक्ष जाति के कायस्थ, बूढ़े बुद्धिमान् और विज्ञ हैं। ब्राह्मण को आया देख कार्य्याध्यक्ष उठ खड़े हुए और भक्तिभाव से प्रणाम कर उन लोगों को बैठने को कहा। सब किसी के बैठ जाने पर कर्म्माध्यक्ष एक बगल बैठ गये।

नवकुमार ने उन से पूछा, "आप का नाम? सर्कार!"

कर्म्मा०—मेरा नाम श्रीमधुसूदन वसु है।

नव०—आप ही इस ज़मींदारी का काम काज करते हैं?

मधु०—बाप दादे सब इसी अन्न से पले हैं। इस घड़ी आप लोगों का किस लिये शुभागमन हुआ है?

नव०—धीरे २ कहते हैं न। इस समय मालिक कहां हैं?

मधु०—दो दिन हुए मालिक स्त्री को ले कर तीर्थ करने गये हैं। बालबच्चा न रहने के कारण ज़र जायदाद की ओर उतना कुछ मन नहीं देते। प्रायः इस तरह चले जाते हैं।

नव०—वे केवल स्त्री को ले कर गये हैं और कोई साथ नहीं है?

मधु०—और एक ब्राह्मण की लड़की उन के साथ है। वह मालिक मालकिनी दोनों की स्नेह-पात्री है। वे उसे एक क्षण भी आंख की ओट नहीं होने देते। और कोई लड़काबाला नहीं रहने के कारण वह उन लोगों को प्राण के समान है। वस्तुतः उसे प्यार किये बिना रहा नहीं जाता।

नव०—उस की उमर क्या होगी? उस की चाल चलन कैसी है?

मधु०—उस की उमर अनुमान २२ वर्ष की होगी। चालचलन की

और क्या कहें? वैसा धीर शान्त, निर्म्मल स्वभाव जगत् में और किसी का है कि नहीं उस में सन्देह है। पर उस के जी में सुख नहीं है। वह सदा जिस उदासभाव से रहती हैं उसे देख कर दुःख होता है। खलता, कपटता किसे कहते हैं सो वह नहीं जानती। मालकिन उसे पगली कह कर पुकारती हैं। यहां वह इसी नाम से जानी और बुलाई जाती है।

नव०—आप लोगों ने उसे कहां पाया?

मधु०—मालिक उसे ले आये थे। सुना है कर्त्ता महाशय एक बार नाव पर चढ़े चले आते थे। बड़े सवेरे त्रिवेणी में प्रातः स्नानादि करने के लिये नाव से उतरे। वहां गंगा-पुलिन में उन्मादिनी को मृतप्राय देह पड़ी देखी। वे विस्मय के साथ स्त्री का असामान्यसौन्दर्य्य और जीवित सा विकृत भाव देख रहे थे इसी समय उन को मालूम हुआ, वास्तव में रमणी अब भी जीती है। चट पट आदमी जन बुला कर उन्हों ने बड़ी सेवा, यत्न से जिलाया और घर में ला कर लड़की की तरह यत्न और स्नेह के साथ पालन करने लगे।

नव०—उस का पहले का हाल कुछ जानते हैं?

मधु०—मालिक, मालकिन और हम उस का पूर्व्व परिचय जानते हैं। और कोई कुछ नहीं जानता। किन्तु क्षमा कीजिये हम वह सब नहीं कह सकते। इस के लिये हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं। जो कुछ कहा है उन्मादिनी उतना भी कहने देना नहीं चाहती तौभी आप लोग ब्राह्मण हैं—विदेश से आये हैं इसी से इतनी बातें कही हैं। इस के आगे और कुछ हम नहीं कह सकते।

नवकुमार ने लरखराती आवाज़ से कहा, "मैं आप की प्रतिज्ञा का भङ्ग करना नहीं चाहता। आप जो नहीं कहेंगे वह मैं कहता हूं। आप लोग जिसे उन्मादनी कहते हैं उस का पहले नाम कपालकुण्डला था; यह नाम उस की बाल-रक्षक कापालिक का रखा हुआ था। सप्तग्राम निवासी दुर्वृत्त, पापी नवकुमार उस का स्वामी है—"

इसी समय बोस बाबू ने बात काट कर कहा, "आप का नाम क्या है ?"

नवकुमार ने विचलित कण्ठ से उत्तर दिया, "मेरा नाम क्यों पूछते हैं ? मेरा नाम जगत् में जितना ही छिपा रहे उतना ही अच्छा है। मैं ही वह घोर नारकी नवकुमार हूं। मैं भलेमानसों के बराबर बैठने लायक नहीं हूं! कापालकुण्डला है यह बात निश्चय हुई अब देर नहीं सही जाती। बोस बाबू कहिये कापालकुण्डला कहां है ? मैं उस के सामने अपना प्राण त्याग करूंगा।"

कोई भी आंसू न रोक सका। असम्भव आशा प्रायः सफल हुई। हृदय में आनन्द उछल पड़ा। किसी को क्या सामर्थ्य जो आंसू रोक सके ?

बोस बाबू ने नवकुमार से कहा, "महाशय, घबराइये नहीं। निश्चय कापालकुण्डला हैं; आज नहीं दस दिन बाद ही आप को उन से भेंट होवेगी।"

नवकुमार ने कहा, "महाशय! इतने दिन जानता था कापालकुण्डला नहीं है तोभी वह दुःख प्राणों ने सहा है पर इस समय एक घड़ी भी सहना पहाड़ हो रहा है। आप कहिये वे लोग पहले किस तीर्थ में जायंगे। मैं अभी उन का पीछा करूंगा।"

मधु०—वे लोग, पहले श्रीकाली माता का दर्शन करने के लिये कालीघाट जायंगे ऐसा ही विचार है।

नव०—मैं चलता हूं। जैसे हो, बिना कापालकुण्डला से भेंट किये अब मैं अन्न पानी नहीं ग्रहण करूंगा। आप बैठें, मैं चलता हूं।

सब लोग इस प्रस्ताव में एक मत हुए और उठ खड़े हुए।

मधु०—आप लोग थके मांदे हैं। थोड़ी देर ठहर कर आराम कर लेते तो अच्छा होता।

अधिकारी ने कहा, "हमलोग कायमनोवाक्य से आप को आशीर्वाद देते हैं। आप के हमलोग चिरकाल तक कृतज्ञ रहेंगे। अगर

भगवान् दिन दिखावेंगे तो आप से अनेक बार भेंट होगी। इस घड़ी रोक टोक मत कीजिये।"

मधुसूदन ने सब को प्रणाम किया। सब लोग आशीर्वाद दे कर विदा हुए।

नवम परिच्छेद।

बीती बातों की चिन्ता।

" Thou art too good, and I indeed unworthy,
Unworthy of so much virtue. "
—Ottway.

अत्युत्तम तुम श्रेष्ठ लखाहीं। मैं अयोग्य इतने गुण काहीं।

आज पूस की संक्रान्ति—त्रिवेणी जनाकीर्ण हो रही है। आज गङ्गा स्नान कर मुक्ति लाभ करने की आशा से नाना देशों के लोग आ कर इस स्थान को कलरव से पूर्ण किये हुए हैं। आये हुए लोगों की प्रयोजनीय वस्तुओं की जरूरत मिटाने के लिये साथ ही साथ अनेक दूकानें बैठी हैं और उन के आश्रय के लिये अनगिनित फूस से छाये हुए झोंपड़े बनाये गये हैं। गङ्गा का किनारा और बीच का भाग नावों से भरा है। कितनी नाव आती है उस का निर्णय कौन करे? इसी समय जिस नाव पर नवकुमार आदि थे वह आ पहुंची। पाठक गण जानते हैं कल उन लोगों ने यशोपुर से यात्रा की थी। कल उन लोगों ने खाया पीया नहीं था। इसलिये आज यहां उतर कर उन लोगों ने गंगा स्नान और भोजन करना चाहा। बाजार में उन लोगों ने रहने के लिये दो मकान ठीक किये। उस के बगल में और भी बहुतेरे भरे पूरे और सूने घर थे। बीच से रास्ता था। रास्ते के दोनों बगल उसी तरह के घरों की कतार थी। एक आदमी उन लोगों के बगलवाले मकान को अधिकार किये हुए था।

नवकुमार के मन की अवस्था बड़ी शोचनीय है। आशा, भीति, आशङ्का, लज्जा और आनन्द उन के हृदय में पर्य्यायक्रम से उपस्थित हो कर किस प्रकार विलीन हो जाते हैं उस का वर्णन करना दुस्साध्य है। संसार आशा की माया से घिरा हुआ है। मनुष्यमात्र का हृदय आशाराशि से परिप्लुत है। बड़े दुःख के समय भी आशा सुख की बात सुनाती है और सुख अनायास-लभ्य जान पड़ता है। मनुष्य दुर्दमनीय वेग से उस ओर लपकता है। जादूगरनी आशा ने नवकुमार के कान में भी, अपना मन्त्र फूंका। आशा के दिगन्तव्यापक तेज पंखों पर चढ़ कर कभी उन का मन कपालकुण्डला का निष्कलङ्क हास्यमय बदनचुम्बन करने लगा, कभी उन (कपालकुण्डला) के चरणों तले पड़ कर अपना दोष स्वीकार कर क्षमा मांगने लगा और कभी आलिङ्गन में बद्ध हो कर विगत दुःखों की बात की आलोचना करने लगा। दूसरे ही क्षण आशा ने अपनी ठगपनी को छोड़ा। इसी समय पीछे कपालकुण्डला को न पा कर आशङ्का से उन का हृदय व्यथित हुआ। प्रेममयी क्षमामयी के सामने वे कैसे बात करेंगे और कैसे अपनी निष्ठुर नीच दृष्टि को उस की दयामय पवित्र दृष्टि के साथ मिलावेंगे, यह चिन्ता उन को बहुत ही म्रियमाण और लज्जित करने लगी। कभी यह अपार आनन्द कि कपालकुण्डला जीती हैं—आज हो या दश दिन बाद हो उन से भेंट होवेहीगी—उन के मन को नचाने लगा। इन सब विषयों की आलोचना करते हुए कपालकुण्डला के सम्बन्ध की सारी बातें उन की स्मृतिपथ पर खिंच गईं। उस नये मेघ के से नील समुद्र के तीर पर वन में जिस एड़ीतक लटकती हुई केशराशिवाली रमणी-रत्न को देख कर उन को चित्रित पुत्तली अथवा देवी का भ्रम हुआ था, वह याद आयी। "पथिक! तुम पथ भूल गये हो?" वीणाविनिन्दित सुमधरस्वर से कपालकुण्डला ने, पहली भेंट के समय नवकुमार से यह बात कही थी, वह भी याद आयी। इस समय मानों वह स्वर, वह बात, फिर कानों में गूंज उठी। चारो ओर मानों उसी ध्वनि की द्विगुणतर प्रतिध्वनि होने लगी। कपालकुण्डला के सम्बन्ध में कितनी बातें उन को याद आयीं उनका ठिकाना

नहीं। प्रति दिन—प्रति मुहूर्त्त की बात याद आने लगी। दीर्घनिश्वास के साथ अस्फुट स्वर से नवकुमार ने कहा,—"हाय! वह कपालकुण्डला आज कहां है? मैं कैसा नराधम हूं! ऐसी हितकारिणी का सुखसम्वर्द्धन करना तो दूर रहा, मैं ने उस को बेहद क्लेश दिया है। कपालकुण्डला मरी नहीं।"

मरी नहीं यह बात याद आते ही उस से कितनी बातें करनी होंगी इस का ख्याल हुआ। इसी समय अपने असद् व्यवहार के लिये उन्हें संकोच हुआ। सोचा, "कपालकुण्डला का चरित्र सरलता-पूर्ण है। राग, द्वेष प्रभृति किसी हीनवृत्ति ने उस के हृदय में जगह नहीं पायी है। मैं उस के सामने बहुतेरे दोषों का दोषी हूं सही पर तौभी कपाल-कुण्डला मुझे क्षमा करेगी। नहीं क्षमा करेगी तो मैं उस का पैर पकडूंगा किन्तु वह सन्देह निष्प्रयोजन है। कपालकुण्डला मुझे नहीं क्षमा करेगी यह असम्भव है। उस का स्वभाव मेरे सा नीच नहीं है। वह मेरे ऐसी दुराचारी नहीं है। रमणी का हृदय दया से पूर्ण रहता है—विशेषत: कपालकुण्डला का हृदय। मेरे कपालकुण्डला के बीच लाख योजन का अन्तर है। प्रेम तो दूर रहे, मैं उस से बात चीत करने योग्य भी नहीं हूं। कपाल-कुण्डला स्वर्गीयादेवी और मैं घोर नारकी हूं। मैं किस मुंह से उस के आगे खड़ा हो कर क्षमा मांगूंगा? क्या कहूंगा? मेरा अपराध ही क्या है? मैं कपालकुण्डला का पैर धर कर अकपट चित्त से समस्त अपराधों को स्वीकार करूंगा। उस के पांव आंखों के आंसू से धोऊंगा। क्षमा न करेगी तो इस जिन्दगी का अन्त कर दूंगा। कपालकुण्डला का ध्यान करते २ जलती आग में यह जीवन त्याग करूंगा। कपालकुण्डला की क्षमा पाये बिना जीवन धारण कर क्या होगा? नवकुमार एकान्त में बैठ कर इस प्रकार आलोचना कर रहे हैं। कपालकुण्डला से बातचीत करने के लिये कितनी ही बातें सोच रहे हैं—कितने ही भाव उन के मन में पैदा हो रहे हैं। आज वे अधिक देर तक एक जगह नहीं ठहर सकते हैं। उन की गम्भीर प्रकृति पर आश्चर्यिक चञ्चलता ने अधिकार

किया है। किसी काम में उन का मन नहीं लगताहै। अत्यन्त चित्त-ग्राही व्यापार में भी वे अपनी मन को नहीं बांध सकतेहैं। मन की यही प्रकृति है—एक ही बार दो विषयों में वह निविष्ट नहीं हो सकता।

दशम परिच्छेद।

मिलन।

"उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम्।"
—अभिज्ञानशकुन्तलम्।

जिस जगह बैठ कर नवकुमार वैसी चिन्ता में मग्न थे उस जगह उन्हें बहुत देर तक बैठना अच्छा न लगा। उमापति को बुलाया। दोनों घर की खिड़की से बाहर आ कर पीछे वाले एक आम के पेड़ की छाया में बैठे। वहां और कोई आदमी जन नहीं था। उस स्थान को इस घर का प्राङ्गण भी कह सकते हैं। आंगण को तीनों ओर कांटकुश की टट्टी लगी थी। एक ओर एक दूसरे का घर था। यही पटपर (पर्त्ती) ज़मीन उस की पिछवाड़ थी। पिछले हिस्से में एक खिड़की भी थी। नवकुमार और उमापति उसी घर से सटे हुए वृक्ष की छाया में बैठ कर बातचीत करने लगे। नवकुमार ने कहा, "देखो न भाई! मैं ने झूठी आशा को हृदय में स्थान नहीं दिया था। मैं ने अपनी आंखों देखा था इसी से उस बारे में मैं इतना दृढ़ था।

उमा०—जो होने का नहीं वही होगा। यह हमलोग कैसे जानें? तुम ने देखा था ठीक, पर हमलोग उस बात पर पूर्ण विश्वास नहीं कर सके। सोचा था वह तुम्हारे मन की भ्रांति होगी। ईश्वर की इच्छा से वही इस घड़ी सच हुआ।

नव०—जो हो, भाई! थोड़ी ही देर में कपालकुण्डला से भेंट होगी सही पर मेरा मन उस से भी शांत नहीं होता। कितनी चिन्ताएं आ कर

मन में उठती हैं वह तुम से क्या कहूं? कपालकुण्डला ने जीवन में जितने कष्ट पाये उन का कारण मैं ही हूं। वह जिस समय लड़कपन में वन में थी, नहीं जानती थी कि कष्ट किसे कहते हैं—आप ही आप हंसती खेलती वन २ फिरा करती थी। मैं ने उस से विवाह कर संसार में ला उसे कष्टसागर में डुबाया। उसी घड़ी से उस के कष्ट का सूत्रपात हुआ। और एक दिन भी उस ने नहीं जाना कि सुख किस जानवर का नाम है। अन्तत: मेरे लिये उस की अकालमृत्यु तक हो गयी थी। फिर नितान्त भवानी-परायणा होने के कारण भवानी ने अनुग्रह कर उसे पुनर्जन्म दान किया—इस में सन्देह नहीं। मैं सोचता हूं शायद कपालकुण्डला इस समय सुखस्वच्छन्दता से होगी फिर मेरे साथ मिलन होने पर वह विपद्-क्लेश में पड़ेगी, मेरी फूटी किस्मत की वजह वह भी दुःख भोगेगी।

उमा०—क्या तुम ने मधुसूदन की बातों से नहीं जाना कि कपाल-कुण्डला के मन में चैन नहीं है?

नवकुमार ने अपने मन में कहा, "हाय! कब वह दिन आवेगा जब फिर कपालकुण्डला से भेंट कर सकूंगा।"

उमा०—नवकुमार! तुम दो दिनों से एक प्रकार निराहार ही हो। क्या तुम्हारे खाने के लिये कुछ लाऊं?

नवकुमार ने कुछ जवाब न दिया। उमापति चले गये। नवकुमार ने देखा आम के पेड़ की शाखा पर दो पक्षी बैठे हुए हैं। हठात् एक उड़ कर नीचे आया, इसी समय दूसरा भी नीचे उतर आया। एक उन में आहारान्वेषण करने लगा, दूसरा भी वैसाही करने लगा, पहिले ने आंखें बड़ी २ कर शब्द किया—प्रतिध्वनी की तरह दूसरे ने भी शब्द किया। एक उड़ कर पेड़ की डाल पर बैठ गया, दूसरा भी साथ २ जा कर वहीं बैठा। यह देख नवकुमार ने एक दीर्घनिश्वास लिया। एवम्विध विहङ्गमचरित्र देख कर उन के हृदय में कैसे विषाद का उदय हुआ सो वेही जानते होंगे।

शून्य दृष्टि की प्रकृति के अनुसार नवकुमार चारो ओर दृष्टि संचालित करने लगे। सहसा उन की पार्श्वस्थगृह के क्षुद्रवातायन (खिड़की) की ओर गयी। देखा वहां एक प्रस्फुटित कमल रखा है। एक ही क्षण बाद उन्हों ने चौंक कर देखा वह एक रमणी का वदन-कमल है। उन्हों ने उस पद्ममुखी को पहिचाना। और वहां से नज़र नहीं हटी। अङ्ग प्रत्यङ्ग कांपने लगा। संज्ञा लुप्त हुई।

" कपालकुण्डला।"

वह नाम ज़ोर से उच्चारित कर नवकुमार मूर्च्छित हो गये। इसी समय रमणी का वदन वातायन के द्वार से हट गया। तुरत ही वह सुन्दरी, जहां नवकुमार की संज्ञाशून्य देह पड़ी हुई थी वहां जल्दी से आ कर, नवकुमार की शुश्रूषा करने लगी। उस की आंखों से गिर कर आंसू हतचेतन के वदन को आर्द्र करने लगे। जैसे घोर काले बादलों के बीच स्वर्गीय अग्नि क्षण ही क्षण प्रकाशित होती है उसी तरह आलुलायित आगुल्फलम्बित निविड़-कृष्ण चिकुरजाल के ऊपर रमणी स्थिर सौदामिनी की तरह शोभा पाने लगी। वह अपना आंचर नवकुमार को हवा के लिये झलने लगी। क्रम से नवकुमार के मुंह पर चैतन्य के लक्षण दीखने लगे। उन्हों ने आंखें खोल दीं। तब भी सुन्दरी की आंख से आंसू गिर रहे थे। नवकुमार ने उन्मत्त की तरह उठ कर सुन्दरी के पैरों पर गिर कर कहा,—

" प्रिये! कपालकुण्डले!! कहो!!! कहो, मुझे क्षमा किया? मैं तुम्हारे आगे बहुत अपराधी हूं सही तौ भी तुम को मुझे क्षमा करना होगा। मैं घोर नारकी हूं—मैं ने तुम को अशेष कष्ट दिया है। मेरे स्पर्श से तुम्हारी पवित्र देह कलुषित होगी। मृण्मयी! तुम यदि मुझे क्षमा न करोगी तो मैं यह पापी जीवन नहीं रखूंगा।"

नवकुमार रोने लगे। उन के मुंह से और बात नहीं आयी कपाल-कुण्डला ने नवकुमार का हाथ पकड़ उठा कर कहा,—

" स्वामी ! तुम्हारा अपराध क्या है ? तुम रोते क्यों हो ?

भवानी के मन में जो था सो हुआ। मेरे भाग्य में जब दुःख था तब तुम क्या करोगे ? विधाता की इच्छा से हम दोनों फिर मिले। इस समय रोते हो क्यों ? "

वीणा जिस प्रकार अपनी मधुर ध्वनि से सुननेवाले के मन को बेहाल कर देती है इस वाक्य ने भी उसी प्रकार नवकुमार को मोहित कर लिया। उन्हों ने सुना वही स्वर है ! उसी स्वर ने मानों आज मधुमय हो कर उन के हृदय को अधिकृत किया। उन्हों ने देखा वही कपालकुण्डला है !!! नवकुमार ने कपालकुण्डला को आलिङ्गन कर लिया। कब तक वे उस अवस्था में रहे यह किसी ने नहीं जाना।

इसी बीच उमापति वहां आ पहुंचे। किसी ने उन्हें देखा नहीं। उमापति ने कपालकुण्डला को पहिचाना,—पहले तो उन्हें स्वप्न सा जान पड़ा पीछे सन्देह दूर हो गया। उन्हों ने चटपट जा कर भट्टाचार्य्य, अधिकारी और मथुरानाथ को यह सुखमय सम्वाद दिया। सब लोग दौड़ आये—आनन्द की सीमा न रही। अधिकारी बार २ कपालकुण्डला का मस्तक सूंघने लगे। सभी की आंखों से आनन्द के आंसू ढरकने लगे। बूढ़े भट्टाचार्य्य कपालकुण्डला को देख एक ही साथ रोने और हँसने लगे। अधिकारी ने कपालकुण्डला को उन्हें पहचनवा दिया और कपालकुण्डला के साथ उन का जो सम्बन्ध था वह भी कह सुनाया। आंख से आनन्द के आंसू गिराती हुई कपालकुण्डला ने पिता और पितृव्य (चाचा) को प्रणाम किया। क्रम से अधिकारी ने उसे कई भीतरी भेद बतलाये। थोड़ी ही देर में रामदास राय खबर पा कर वहां आ पहुंचे। एक २ कर सब बातें आदि से अन्त तक सुन कर बोले,—

" इस बालिका की तरह सती भूमण्डल में दूसरी नहीं है। यह मेरी अपनी लड़की सी है। उन्मादिनी ! तुम परायी होकर भी मेरी अपनी हुई थी—तुम्हारे ऊपर मेरी बड़ी ममता हो गयी थी। इस समय तुम मेरी अपेक्षा अधिक अपनेत लोगों के निकट पहुंची हो। ईश्वर की कृपा से

तुम सुख स्वच्छन्दता से रहो—चिरायुष्मती होवो। मैं तुम्हारा सुख देख कर सुखी होऊंगा। अतएव मा! मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारी ससुराल चलूंगा।"

सभी प्रसन्न हो गये—मानों संसार में निरानन्द का नाम ही नहीं रहा। बड़े आनन्द के साथ सभों ने सप्तग्राम की यात्रा की।

चिरदुःखिनी कपालकुण्डला इतने दिन बाद, इतना कष्ट सहने के अनन्तर पति, पिता, माता, बहन इत्यादि से मिली, लड़कपन में माता पिता की पूर्णकेशी, वन में अपने पालनेवाले कापालिक की कपालकुण्डला, स्वामी की मृण्मयी और रक्षक रामदास राय की उन्मादिनी पुनः आनन्द को प्राप्त हुई। ग्रन्थकार भी कपालकुण्डला के इतिहास के इस छिपे हुए भाग को पाठकों को भेंट कर विदा हुए।

उपसंहार ।

जिस उद्देश्य से ही यह छोटा सा ग्रन्थ लिखा गया था वह सिद्ध हुआ तौभी पर्दा गिराने के पहले ग्रन्थ के भिन्न २ पात्रों के सम्बन्ध में दो एक बातें कहे बिना निश्चिन्त रह जाना ग्रन्थकार के लिये उचित नहीं है ।

कहना व्यर्थ है कि कुछ ही दिनों में उमापति और मुक्तकेशी का व्याह हो गया । ये सब सुसम्वाद पहुंचा कर श्यामा ससुराल से बुला ली गयी । मुक्तकेशी के विवाह से ले कर अनेक दिन बाद तक हेममयी पिता के घर रही ।

इन सब घटनाओं के कुछ दिन पहले दिलवर अर्थात् गोपालकृष्ण डाकुओं का झगड़ा फोड़ कर घर आ कर पिता माता से आ मिले । राजा की आज्ञानुसार रहीम को फांसी हुई । गोपाल ने कहा हुआ ईनाम और सरकारी कचहरी में ऊंचा दर्जा पाया ।

अधिकारी कई दिनों तक तप्तग्राम में रह कर आनन्द संभोग कर फिर हिजली चले गये । अभीष्ट सिद्ध होने के कारण श्यामा प्रभृति को अपार आनन्द हुआ ।

"सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
चक्रवत् परिवर्त्तन्ते, दुःखानि च सुखानि च ॥"

इति श्रीः ।

अशुद्धि संशोधन ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध ।
८	२	स	से
१०	२२	प्रेमाकांक्षणी	प्रेमाकांक्षिणी
११	२०	पाप	पाप से
१२	२६	पूछो	पूछा
१५	२२	देगी	देना
१८	१८	यथेठ	यथेष्ट
"	२४	आशय	आश्रय
२१	२	उसे	०
"	८	प्रवला	अबला
२७	१४	उस	उन
"	१९	तौभी	तभी
३५	१२	उस	उन
३८	१५	करूंगी	करूंगा
४२	२२	का	के
४६	१०	केश	वेश
"	२०	निन्द्रतावस्था	निद्रितावस्था
४७	१	दूंगा	दूंगी
"	१६	फटा	फट फटा
"	१९	भीतर	भीत
४८	१२	को	के
५३	७	स्वठ	स्वष्ट
५५	१८	वाद विक्षेप	पाद-विक्षेप
५६	८	तो	तो दूर
५६	१०	समान्य	सामान्य
५७	१२	को	के
२	६	रूप	—ग
६७	७	सकती	सकता
"	१६	को	की
६९	१	समय	नौबत
"	५	अनश्चित	अनिश्चित
७१	१८	को	के
७३	२०	उपर्युक्त	उपयुक्त
७७	११	क्षमाशाली	क्षमताशाली
"	१८	साधारण	असाधारण
"	२२	वैसी	वैसे
७८	१७	दरीद्र	दरिद्र
७९	१२	अज्ञितीया	अद्वितीया
"	१४	प्रकोष्ट	प्रकोष्ठ
"	१८	सोङ्क चितं	सङ्कोचितं
८०	५	चाहता था	चाहा था
"	१४	कितने	कितनी
८३	१८, १९	खुब सूरत	खूब सूरत
८६	२१	होगा	होंगी
९०	१०	जितना	जितनी
९१	२७	चाहती	चाहती हूँ
९२	४	रहें	रह
९२	२२	को	के
९८	१५	उस	उन
१०१	८	इतनी	इतने
"	२२	उस	उन
१०३	१४	सुख	सुख को
"	२४	अभागिनी	अर्द्धभागिनी
१०४	८	तुम्हारी	तुम्हारे
१०५	१४	किरणों	किरणें
"	२४	पुरषी	पुरीष

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	१२	विलनी	विलीन
१०८	१०	इतनी	इतना
१११	२६	कापालिक	०
११२	४	संदेह	सदेह
१२२	८	शुवह	सुवह
१३१	५	दुघष	दुर्द्धर्ष
"	१४	को धरने को	को धरने के
१३४	४	दिल	दिलवर
१३६	२६	सुर्यत्ताप	सूर्य्यताप
१३८	१६	उन	जन
१४१	४	जपर	ऊपर
१५४	१४	आ	०
"	१५	से	तो
१५७	६	को	का
१५८	१८	सञ्चारति	सञ्चारित
१५९	२१	के सेजको	को सेज के
१५९	२७	hurl	here
१६०	४	हैं	कहें
"	१२	दिप्यमान	दीप्यमान
१६१	४	आसाध्य	असाध्य
"	१९	के वनाये	का वनाया
१६५	१	पैर	मेरे
१६६	२०	को	के
१६७	२१	आसन	आसन्न
१६८	१	अनुभव	सुखअनुभव
१७१	१९	उन	उस
१७८	१९	के	को
१७३	१५	रुगणा	रुग्णा
१७४	१५	पद्मावती	नवकुमार
१७५	२	थोरी	थोड़ी
"	३	वैसा	वैसे
१७९	२	अपेक्षा	उपेक्षा
१८४	६	वनाधिष्टात्री	वनाधिष्ठात्री
१८८	२२	लुट	लूट
१८९	१२	हुई	हुआ
१९०	२२	करेंगे ?	क्योंनहीं करेंगे)
१९९	२	उन को	उन की दृष्टि